अध्यात्म की ओर...

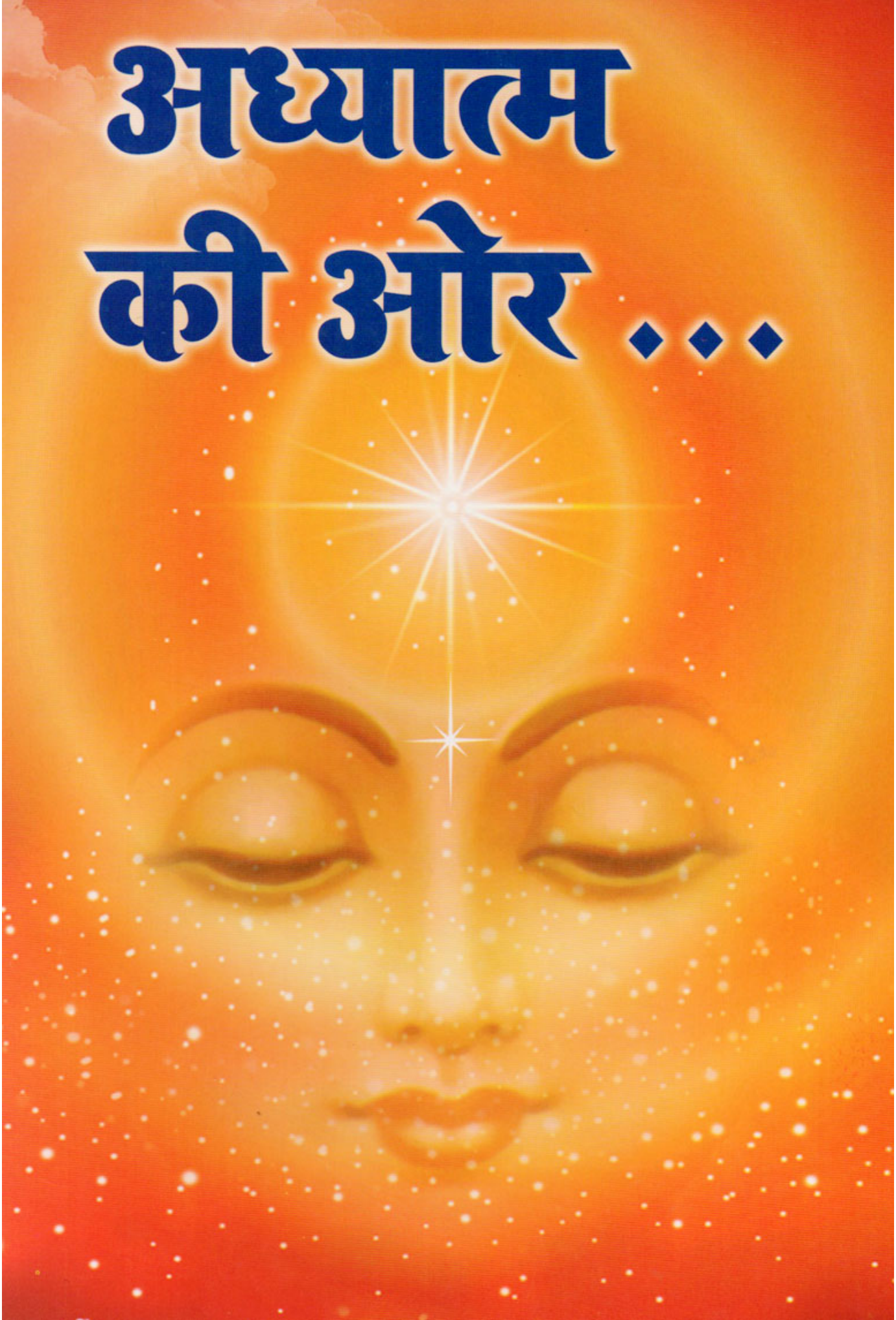

अध्यात्म की ओर...

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन, आबू पर्वत

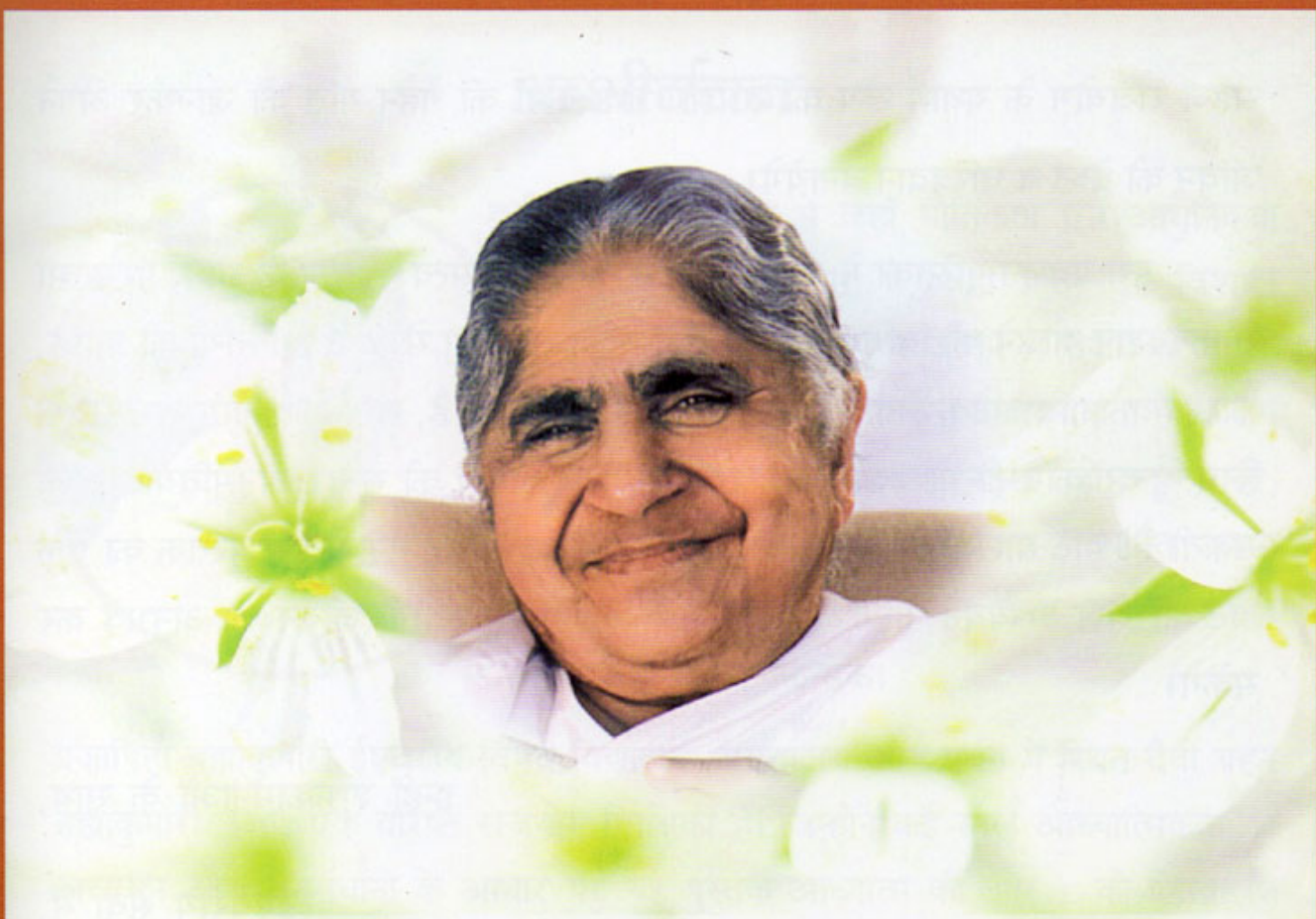

दो शब्द

योगेश्वर सर्व आत्माओं के परमपिता निराकार परमात्मा शिव ने अपने साकार माध्यम प्रजापिता ब्रह्मा बाबा द्वारा जो सर्व मनुष्य आत्माओं को पावन सतोप्रधान बनाने हेतु सहज ज्ञान और सहज राजयोग सिखाया है, उसे बहुत सरल शब्दों में अनेक उदाहरणों एवं रुचिकर कहानियों के साथ व्यक्त करने व जन-जन को सहजयोगी बनाने की विशेष सेवा करने का सौभाग्य राजयोगिनी ब्रह्माकुमारी उषा बहन को प्राप्त है। आपने सतत् विचार सागर मंथन करते हुए ज्ञान योग के अनेक गुह्य विषयों को हृदयस्पर्शी बनाकर अपनी सरल मधुर वाणी द्वारा व्यक्त करके उसे प्रकाशित करने का एक अनोखा एवं सराहनीय प्रयास किया है।

आशा है योग के गहन विषयों पर आधारित इस प्रवचनमाला की पुस्तक द्वारा पाठकगण

सहज राजयोग के यथार्थ रूप को समझेंगे तथा कर्मों की गहन गति को जानकर अपने जीवन को श्रेष्ठ व चरित्रवान बनायेंगे।

इस प्रवचन पुस्तिका में आत्मा एवं परमात्मा की सत्य पहचान के साथ, परमात्मा से कनेक्शन जोड़ने की विधि, कर्मों की गुह्य गति, राजयोग से अष्ट शक्तियों की प्राप्ति, काल चक्र आदि अनेक विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है, साथ-साथ योग अभ्यास के लिए सुन्दर कॉमेन्ट्री भी प्रकाशित की गई है जिससे योग की सुन्दर अनुभूतियां की जा सकती हैं। यदि पाठकगण रोज़ एकान्त में बैठ, शुद्ध पवित्र मन से इस पुस्तक का एक पाठ भी रोज़ अध्ययन करेंगे तो थोड़े समय में ही सहजयोगी जीवन का अनुभव कर सकेंगे।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ,

ईश्वरीय सेवा में,
बी. के. जानकी
मुख्य प्रशासिका, ब्रह्माकुमारीज़

आशीर्वचन

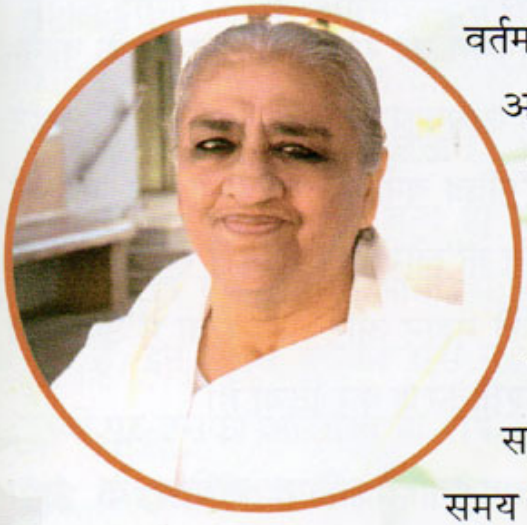

वर्तमान समय विश्व में जहाँ भौतिकता एवं आधुनिकता अपनी चरम सीमा पर है, वहाँ प्रति दिन विशाल चुनौतियों के कारण मनुष्य जीवन में तनाव बढ़ता ही जा रहा हैं। समय की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम ऐसे कौशल एवं विधियाँ सीखें जो सरल हों, तर्कयुक्त एवं वास्तविक हों, जिससे व्यक्ति अपना सशक्तिकरण कर परिस्थिति में ऊँचा उठ कर सही समय पर सही निर्णय कर सके।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय, मुख्यालय आबू पर्वत में स्थित दैवी बहन ब्रह्माकुमारी ऊषा, एक वरिष्ठ राजयोग शिक्षिका है। जिन्होंने कई साल आध्यात्मिकता का अध्ययन और अनुसंधानो के आधार पर यह पुस्तक आध्यात्म की ओर... को लिखा है। उनकी सरल, स्पष्ट शैली का वर्णन ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि एक कहानी है। जो एक बार कोई पढ़ना शुरू करते हैं तो अंत तक उसमें लीन रहते हैं। इस किताब में चिन्तन के लिए भरपूर आत्मिक भोजन है। ब्रह्माकुमारी उषा नें एक गूढ़ विषय को सरल बोध कथाओं के द्वारा समझना आसान कर दिया है।

मैं संस्तुतिपूर्वक उन सबको कहना चाहती हूँ जो जीवन में व्यवहार और परमार्थ के आधार पर अपना जीवन सफलता पूर्ण जीना चाहते हैं एवं व्यवहार कुशल होकर सबके साथ रहते भी श्रेष्ठ कर्म करना चाहते हैं तो यह विचार वरदान सिद्ध होंगे। मेरी शुभकामनायें ब्रह्माकुमारी उषा के साथ हैं कि इस सुन्दर कार्य से सबकी सेवा हेतु प्रगति करती रहें।

इन्हीं शुभभावनाओं के साथ,

दैवी बहन,
बी.के. हृदयमोहिनी
संयुक्त मुख्य प्रशासिका, ब्रह्माकुमारीज़

प्रस्तावना

भारत के आबू पर्वत शिखर से पवित्रता और रूहानियत की सुगन्ध को विश्व के कोने-कोने में ले जाने वाली ब्रह्माकुमारियां भौतिकता के अंधकारमय विश्व के लिए लाइट हाऊस हैं। 'ओम् शांति' के मंत्र के जयघोष और 'पवित्र बनो - योगी बनो' के नारे की गूंज भिन्न-भिन्न धर्म, भाषा, रंग, जाति और संस्कृति के लोगों को रूहानी स्नेह के बंधन में बांध कर नई दैवी सतयुगी सृष्टि की पुनर्स्थापना की महान् और श्रेष्ठ सेवा में उपस्थित ब्रह्माकुमारीज़ ने सही मायने में आध्यात्मिकता का वैश्वीकरण कर दिया है।

भारत की गौरवमयी स्वर्णिम संस्कृति और अद्भुत वैज्ञानिक संयोग के साथ ब्रह्माकुमारीज़ को संयुक्त राष्ट्र संघ की गैर सरकारी संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त होने का गौरव प्राप्त होने के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् (ECOSOC) में सलाहकार होने का सम्मान प्राप्त है एवं यह यूनीसेफ का भी सक्रिय सदस्य है।

आज विश्व के 138 देशों में जिन ब्रह्माकुमार व ब्रह्माकुमारियों ने आध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से अगाध विश्वास तथा अमिट आशा का संचार किया है उनमें ब्रह्माकुमारी राजयोगिनी बहन उषा जी के ओजस्वी मन की विराट तथा श्रेष्ठतम मनन शक्ति का फल है यह महान् प्रेरणाप्रद ग्रंथ जिसमें आत्मा, परमात्मा, राजयोग, सृष्टि चक्र अथवा कालचक्र तथा कर्मों की गुह्य गति जैसे गहरे विषयों को कहानियों के नवीन प्रयोग के माध्यम से जिस ताज़गी, जिस नवीनता तथा अजेय सम्मोहन की सृष्टि की है वह मानव के लिए चिरन्तन वरदान है जो मानव मन में विस्मृत मौलिक अनादि-अविनाशी सौन्दर्य को पुनः सुरजीत कर देते हैं।

वैज्ञानिक उन्नति के कारण एक ओर मानव को अत्यन्त विकसित सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, मानव की पहुँच चाँद और मंगल ग्रह तथा स्पेस तक हो गई है, दूसरी ओर आतंकवाद, नक्सली हिंसा, साम्प्रदायिक दंगों, पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानवता के

अस्तित्व पर आने वाले संकट से आज का विश्व बार-बार दहल जाता है।

मानव इतना स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित तथा भोग-लालसा से पीड़ित हो चुका है कि उसके पास जीवन सम्बन्धी कोई श्रेष्ठ दृष्टिकोण तथा विश्व-कल्याण सम्बन्धी कोई सक्रिय गम्भीर योजना का अभाव दिखाई देता है। आज का मनुष्य केवल देह की इकाई बन कर रह गया है, उसके हृदय के द्वार बन्द हो गए हैं, उसका आध्यात्मिक एवं चेतनात्मक विकास अवरुद्ध हो गया है, वह भीतर से खाली है, उसके मन में सच्चा सुख और सच्ची शांति नहीं है, इन सबसे बढ़कर ऐसे महाघातक ध्वंसात्मक शस्त्रों को जन्म दे रहा है जिससे पृथ्वी पर उसका अस्तित्व ही शेष न रहे। नैतिक संकट तो आपातकाल जैसा बन चुका है। ऐसे में राजयोगिनी ब्रह्माकुमारी उषा बहन जी द्वारा लिखी गई यह पुस्तक एक दिव्य औषधि की तरह मन की समस्त क्लांति को मिटाकर उसे नवीन आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न करती है। इसके अध्ययन से व्यक्ति चेतना के उच्चतम सोपानों में विचरण करते हुए शाश्वत प्रकाश पुंज सर्वोच्च सत्ता परमात्मा के साथ का अनुभव करते हुए सुख, शांति और आनंद की अनुभूति करते-करते पावनता की राह पर चलते-चलते अपनी मंज़िल पा लेता है।

डॉ. हरदीप सिंह,
शोध निदेशक एवं ऐसोसिएट प्रोफेसर,
परास्नातक हिन्दी विभाग,
सतीशचन्द्रधवन सरकारी कॉलेज,
लुधियाना

अमृत सूची

1	प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय – एक अनोखा विद्यालय	11
2	अपने आध्यात्मिक अस्तित्व की पहचान	29
3	परमात्मा के सत्य स्वरूप का रहस्य उद्घाटन	85
4	राजयोग का आधार, विधि एवं विभिन्न अवस्थाएँ	115
5	कालचक्र का रहस्य	153
6	कर्मों की गुह्य गति	189
7	राजयोग द्वारा अष्ट शक्तियों की प्राप्तियाँ	231
8	जीवन में आध्यात्मिकता की आवश्यकता	265

भारत सारे विश्व का प्रकाश
स्तंभ है, तीर्थ राज आबू से
सारे संसार में आध्यात्मिक
प्रकाश फैलेगा।

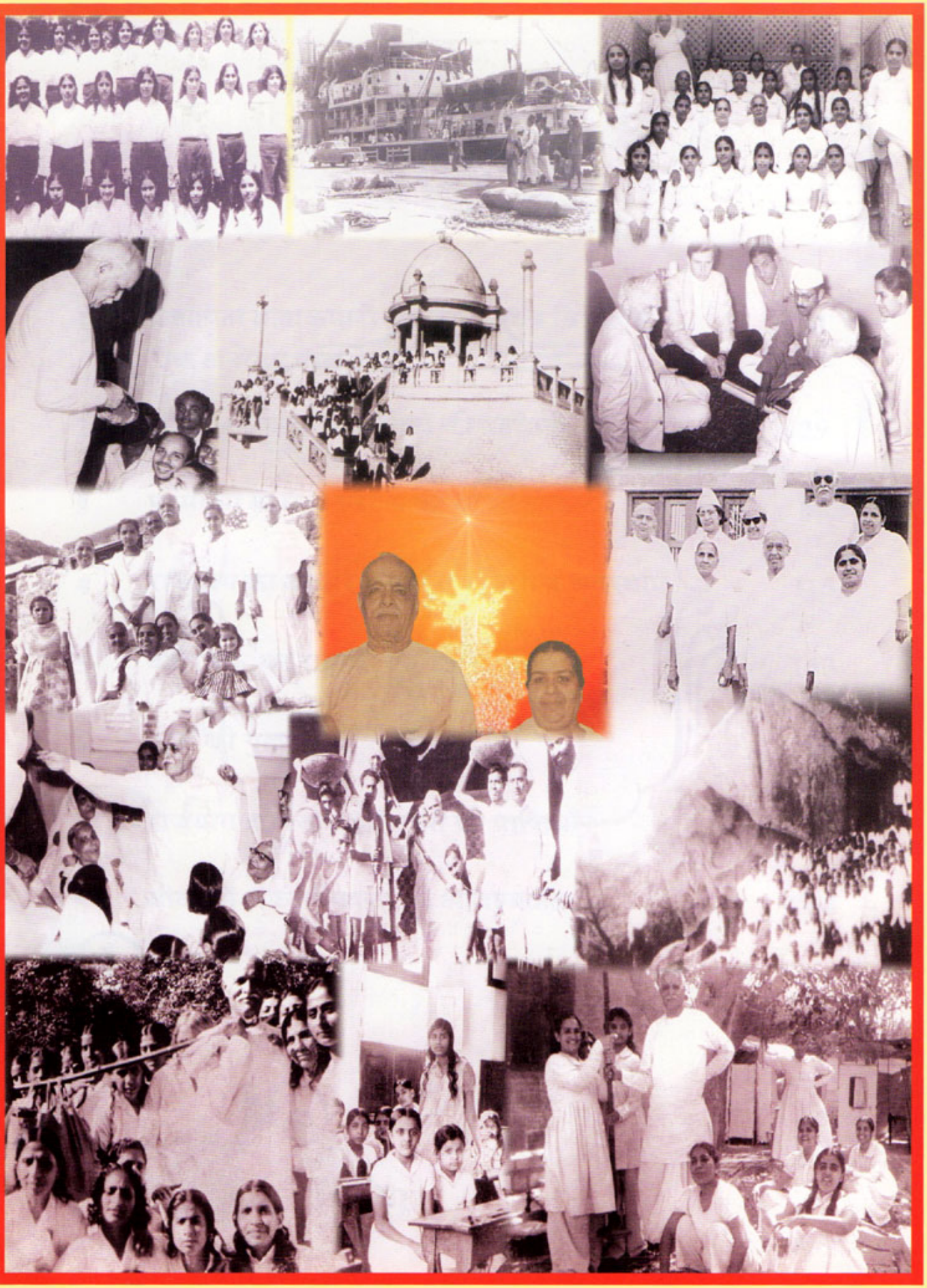

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय – एक अनोखा विद्यालय

यह एक अद्भुत सत्य है कि स्वयं निराकार ज्योतिबिंदु परमपिता परमात्मा 'शिव' ने 1936 में हैदराबाद सिंध में, एक साधारण मनुष्य तन का आधार लेकर प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की स्थापना का कार्य किया। उनका नाम दादा लेखराज था, वे समाज में बहुत सम्मानित हीरे जवाहरात के व्यापारी थे। उनका जीवन भक्ति-भाव से परिपूर्ण था। प्रतिदिन गीता का पाठ करके ही वे अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करते थे। परमात्मा ने उन्हें दिव्य अनुभूति एवं दिव्य साक्षात्कार कराया जिनसे उनके जीवन में एक महान परिवर्तन आया और वे विश्व परिवर्तन के लिए निमित्त बने। इस तरह वे परमात्मा द्वारा चुने गए एक अनमोल रत्न बने और विशेष कार्य के लिए उन्होंने स्वयं को तैयार किया। धीरे-धीरे परमात्मा ने उनके मुख कमल से आध्यात्मिक ज्ञान देना शुरू किया और उनके घर में ही सत्संग होने लगा। जब काफी लोग आने लगे तब उनके मन में विचार आया कि आध्यात्मिक संस्कार तो छोटे बच्चों में भरने ज़रूरी हैं क्योंकि वही आने वाले सुन्दर भविष्य के आधारमूर्त बनेंगे। उन्होंने 1937 में कराची में एक बोर्डिंग स्कूल खोलने का संकल्प किया। इसके लिए उन्होंने 5 बहनों का ट्रस्ट बनाया और अपना तन, मन, धन, सम्बन्ध और सम्पूर्ण सम्पत्ति को समर्पित कर दिया। वह छोटा-सा बोर्डिंग स्कूल धीरे-धीरे एक विश्वविद्यालय के विशाल वटवृक्ष का रूप लेने लगा। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की पहली मुख्य प्रशासिका मातेश्वरी जगदम्बा सरस्वती को नियुक्त किया गया। भारत-पाकिस्तान के विभाजन के बाद 1950 में पिताश्री

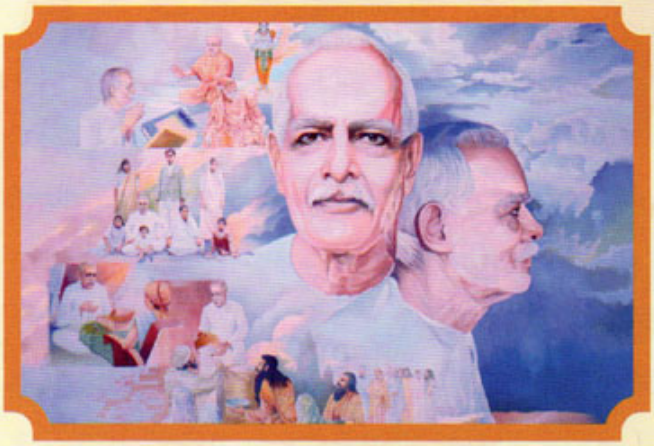

जी को परमात्मा का दिव्य संदेश प्राप्त हुआ कि भारत अविनाशी भूमि है और आने वाले समय में भारत सारे विश्व के लिए आध्यात्मिक प्रकाश स्तम्भ बनेगा क्योंकि यहां से ही आध्यात्मिक प्रकाश की किरणें सारे विश्व में फैलेंगी। इसलिए इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के मुख्यालय को भारत में स्थानान्तरण करने के लिए अरावली की पहाड़ियों में स्थित माउण्ट आबू को चुना गया क्योंकि माउण्ट आबू का विशेष आध्यात्मिक महत्व है। शास्त्रों में भी इस स्थान का विशेष महत्व वर्णन किया गया है, कहा जाता कि 'आबू' नाम माँ अर्बुदा देवी, माँ सरस्वती का ही दूसरा नाम है। यह भी यादगार है कि अरावली की पहाड़ी में ब्रह्माजी ने सरस्वती को वेदों का ज्ञान दिया था।

यह भी माना जाता है कि आबू की गुफाओं में कई ऋषि-मुनियों ने तपस्या की हुई है और अत्री ऋषि एवं सती अनसुईया ने भी यहां तपस्या की है। कहा जाता है कि अरावली की पहाड़ी में पाण्डवों की अंतिम तपस्या पूरी हुई थी। ऐसी अनेक आध्यात्मिक गाथाओं का

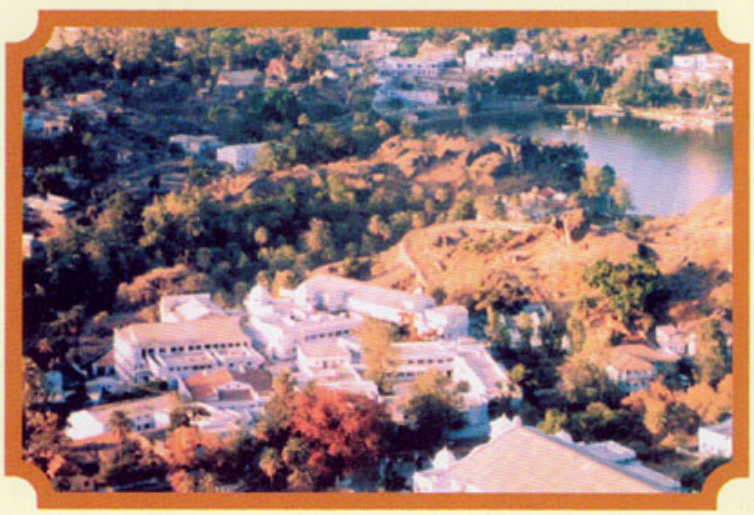

वर्णन शास्त्रों में है। निराकार परमात्मा ने भी अरावली की वादियों में तपस्या के पावन स्थान 'मधुबन' का निर्माण किया और 1950 से लेकर 1969 तक यही पिताश्री जी की कर्मभूमि रही। यहां परमात्मा ने पिताश्री जी के द्वारा अविनाशी रुद्र ज्ञान यज्ञ की स्थापना की।

यह एक अनोखे प्रकार का यज्ञ है, जिस यज्ञ के द्वारा मनुष्यों के संस्कार परिवर्तन का दिव्य कार्य होने लगा और जैसे कहा जाता है कि 'नर ऐसी करनी करे जो नर नारायण बने' और 'नारी ऐसी करनी करे जो श्री लक्ष्मी बने' अर्थात् इस अलौकिक यज्ञ के द्वारा

मानव का दिव्यीकरण करने का अनुष्ठान रचा गया। दुनिया में लोग वातावरण या स्थान का शुद्धिकरण करने के लिए यज्ञ रचते हैं। लेकिन इस रुद्र यज्ञ में कोई स्थूल सामग्री को स्वाहा नहीं करना है अपितु स्थूल सामग्री के सूक्ष्म भाव को जीवन में धारण करना है।

हवन का अर्थ है ज्ञान का हवन और जिसमें ईश्वरीय याद रूपी योगाग्नि प्रज्जवलित करनी है अर्थात् यह योग अग्नि समान है जिसमें तीन चीज़ों को स्वाहा किया जाता है, जौ इस तन का प्रतीक है, तिल सूक्ष्म है इसलिए मन का प्रतीक है और घी द्रव्य है जो धन का प्रतीक है। कहने का भाव यह है कि मानव अपने जीवन में जो पाप-कर्म करता है तो इसका कारण मानव द्वारा अपने तन, मन, धन का नकारात्मक प्रयोग करना है। जैसे कभी वह तन द्वारा बुरी आदतों के वश हो गलत कर्म करता है।

मन में बुरे विचार करता है और धन बुरे रास्ते पर व्यय करता है या बुरी आदतों को पाल लेता है। इस ज्ञान और योग रूपी हवन में बुरे कर्म कराने वाले बुरे संस्कार को स्वाहा कर तन का शुद्धिकरण किया जाता है, नकारात्मक विचार करने वाले बुरे स्वभाव को स्वाहा करके मन का शुद्धिकरण और बुरी आदतों को स्वाहा करके धन का शुद्धिकरण किया जाता है। इस तरह ज्ञान और योग की शक्ति से तन, मन, धन का शुद्धिकरण और श्रेष्ठ संस्कारों को दिव्यीकरण हो जाता है। इसे **राजस्व अश्वमेध अविनाशी रुद्र गीता ज्ञान यज्ञ** कहा जाता है क्योंकि **राजस्व** अर्थात् स्वराज, भावार्थ कि जिस यज्ञ से आत्मा अपनी कर्मेन्द्रियों पर स्वराज्य प्राप्त करती है।

अश्वमेध अर्थात् घोड़ा भावार्थ मन जो घोड़े के समान चंचल है उसकी चंचलता को इस यज्ञ में स्वाहा करना है। यह **अविनाशी रुद्र** (परमात्मा शिव) द्वारा सच्ची **गीता का ज्ञान यज्ञ** रचा गया है। कहने का भाव है कि **अविनाशी रुद्र परमात्मा शिव ने जो गीता ज्ञान यज्ञ रचा है उसमें मन रूपी घोड़े की चंचलता को स्वाहा कर अपनी कर्मेन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है।** श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है कि सभी यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ, ज्ञान यज्ञ है जिससे महान पापात्माओं का भी उद्धार हो जाता है। गीता में भगवान ने अर्जुन को अपनी गृहस्थी या ज़िम्मेदारी या कर्त्तव्य को छोड़ने के लिए नहीं कहा लेकिन अपनी कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके श्रेष्ठ कर्म करने के लिए प्रेरित किया।

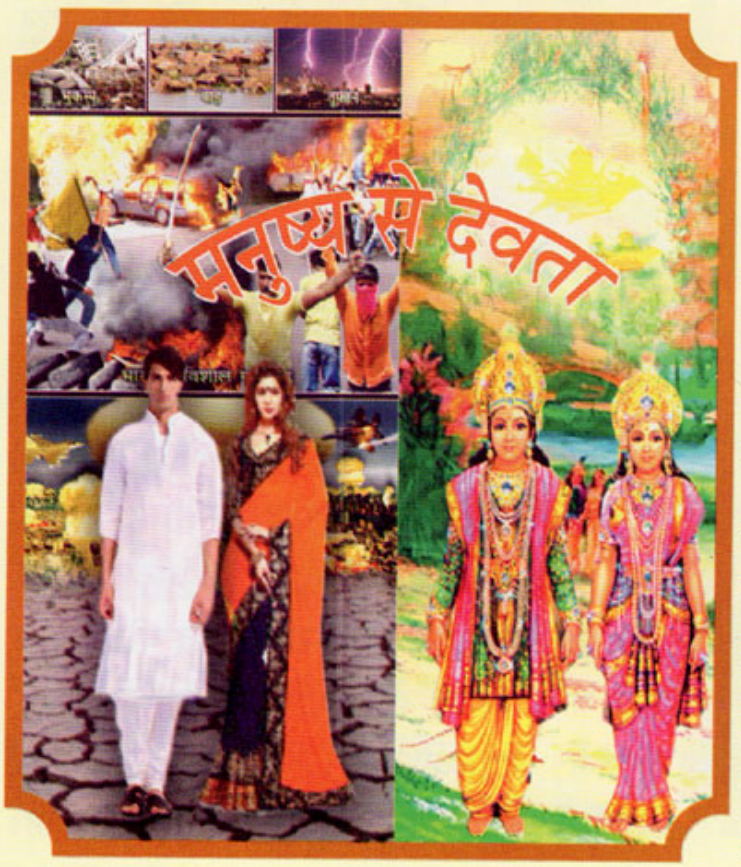

कहा जाता हैं कि कर्म ऐसे श्रेष्ठ हों जो नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी बन जाएं। श्री लक्ष्मी - श्री नारायण भी गृहस्थी थे और आज का मानव भी गृहस्थी है परन्तु दोनों के गृहस्थ में बहुत अंतर है। श्री लक्ष्मी - श्री नारायण के गृहस्थ को सच्चा गृहस्थाश्रम कहा जाता था और आज का गृहस्थ जंजाल है। इस अविनाशी रुद्र ज्ञान यज्ञ के द्वारा गृहस्थ जंजाल को गृहस्थाश्रम में परिवर्तन करने के लिए ही भगवान आकर राजयोग सिखाते हैं।

स्वयं ईश्वर द्वारा स्थापित विश्व का

एक मात्र विद्यालय होने के कारण ही इसे ईश्वरीय विश्व विद्यालय कहा जाता है। विद्यालय अर्थात् जहां कोई अंधश्रद्धा की बात नहीं है लेकिन हर बात की यथार्थ समझ प्राप्त होती है। दूसरा, विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सामने एक लक्ष्य होता है कि इस पढ़ाई द्वारा क्या बनना है। जैसे मेडिकल कॉलेज़ में पढ़ने वाले विद्यार्थी के सामने यह लक्ष्य रहता है कि उसे डॉक्टर बनना है। वकालत पढ़ने वाले के सामने यह लक्ष्य रहता है कि उसे वकील बनना है, ऐसे ही ईश्वरीय विश्व विद्यालय में आध्यात्मिक पढ़ाई पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सामने यह लक्ष्य रहता है कि उसे अपने जीवन में संस्कारों का दिव्यीकरण करके नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी बनना है। तीसरा, इसे विद्यालय भी कहा गया है क्योंकि जैसे अन्य विद्यालयों में विभिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं वैसे इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय में भी मुख्य रूप से चार विषय पढ़ाये जाते हैं: आध्यात्मिक ज्ञान, सहज राजयोग या मेडिटेशन, दिव्य गुणों की धारणा और ईश्वरीय सेवा।

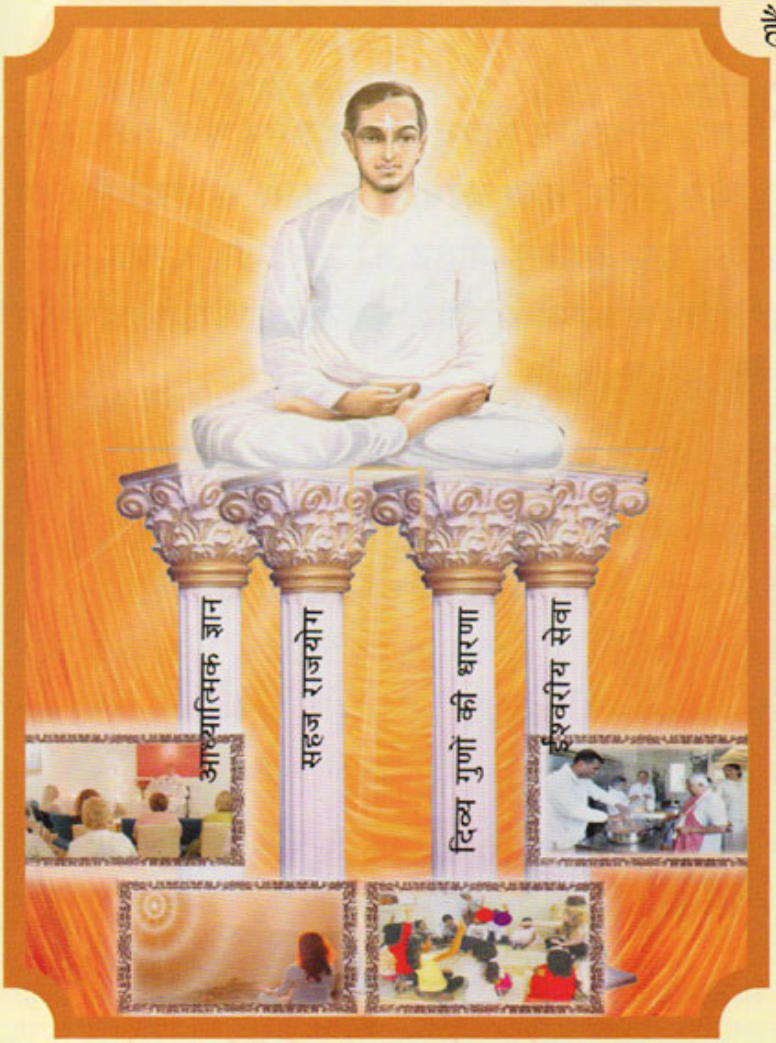

1.**आध्यात्मिक ज्ञान :-** इसके अंतर्गत आत्मा का यथार्थ ज्ञान, परमात्मा का सम्पूर्ण परिचय, कर्मों की गुह्य गति का ज्ञान, समय की गुह्य गति का ज्ञान आदि अनेक आध्यात्मिक सिद्धांतों का स्पष्टीकरण किया जाता है। उसकी उपयोगिता एवं जीवन में आत्मसात करने की विधि को स्पष्ट किया जाता है। इससे जीवन से कुरीतियों का उन्मूलन किया जा सकता है। इस पढ़ाई का लक्ष्य यही है कि मनुष्यों को यथार्थ आध्यात्मिक समझ देकर उसके जीवन में सकारात्मक जीवन जीने की कला सिखाते हुए उसके जीवन को श्रेष्ठ दिशा देना।

2. सहज राजयोग या मेडिटेशन :- इसमें ध्यान की यथार्थ विधि स्पष्ट की जाती है जिससे व्यक्ति अपने जीवन में एकाग्रता को विकसित कर सके, क्योंकि किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए एकाग्रता की बहुत आवश्यकता होती है। मनुष्यों की यही तो सबसे बड़ी शिकायत रहती है कि मन बहुत चंचल है और एकाग्र नहीं होता। राजयोग मन को सकारात्मक सोचने की कला सिखाकर मन को मित्र बनाने की कला सिखाता है।

3. दिव्य गुणों की धारणा:- यह विषय प्रैक्टिकल विषय है। आज मनुष्य में जिन गुणों का या मूल्यों का ह्रास हो गया है और जीवन काम क्रोधादि विकारों से ग्रस्त है, उन मूल्यों को कैसे वापस जीवन में लाकर इस अमूल्य जीवन को मूल्यवान बनाया जाए। दिव्य गुणों की धारणा से व्यक्ति के जीवन में अच्छे संस्कारों की समृद्धि आती है जिससे एक सभ्य समाज का निर्माण होता है।

4. ईश्वरीय सेवा:- आज दुनिया में अनेक प्रकार से समाज सेवा का कार्य चलता है लेकिन जैसे एक व्यक्ति एक पेड़ के पत्ते-पत्ते को पानी देता है तो वह पेड़ सूखता ही जाता है। कारण यही है कि उसने जड़ों को पानी नहीं दिया। इसी प्रकार आज की समाजसेवी संस्थाएँ अनेक प्रकार की चीज़ें देकर बाह्य रुप से सेवा करती हैं लेकिन फिर भी व्यक्ति के जीवन में गरीबी बढ़ती ही जाती है क्योंकि आज व्यक्ति के जीवन में पैसे की गरीबी नहीं है लेकिन अच्छे संस्कारों की गरीबी है, श्रेष्ठ चरित्र की गरीबी है। ब्रह्माकुमारीज़ राजयोग मेडिटेशन द्वारा उनमें शक्ति भरकर उनकी कमज़ोरियों को मिटाने की सेवा करती हैं, जिससे व्यक्ति अपने जीवन में सशक्त बन सके।

मातेश्वरी जगदम्बा सरस्वती एवं पिताश्री जी के अव्यक्त होने के पश्चात परम श्रद्धेया दादी प्रकाशमणि जी इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की दूसरी मुख्य प्रशासिका बनीं और उनके नेतृत्व में इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति होती रही। सन् 2007 तक विश्व के 130 देशों में ब्रह्माकुमारीज़ की शाखायें स्थापित हुई। सन् 2007 में पवित्रता की प्रतिमूर्ति दादी प्रकाशमणि जी के अव्यक्त होने पर आदरणीया पूज्यनीय दादी जानकी जी वर्तमान समय में इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की मुख्य प्रशासिका हैं और अतिरिक्त मुख्य प्रशासिका परम श्रद्धेया आदरणीया दादी हृदयमोहिनी जी हैं। वर्तमान समय आपके ही नेतृत्व में इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की सेवायें लगभग 138 देशों में चल रही हैं।

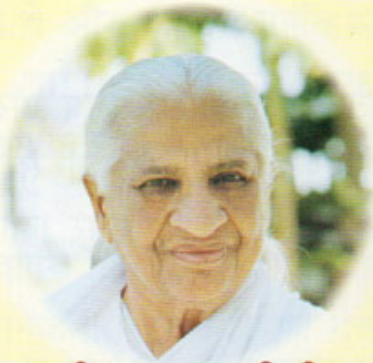

दादी प्रकाशमणीजी

दादी जानकीजी

दादी हृदयमोहिनीजी

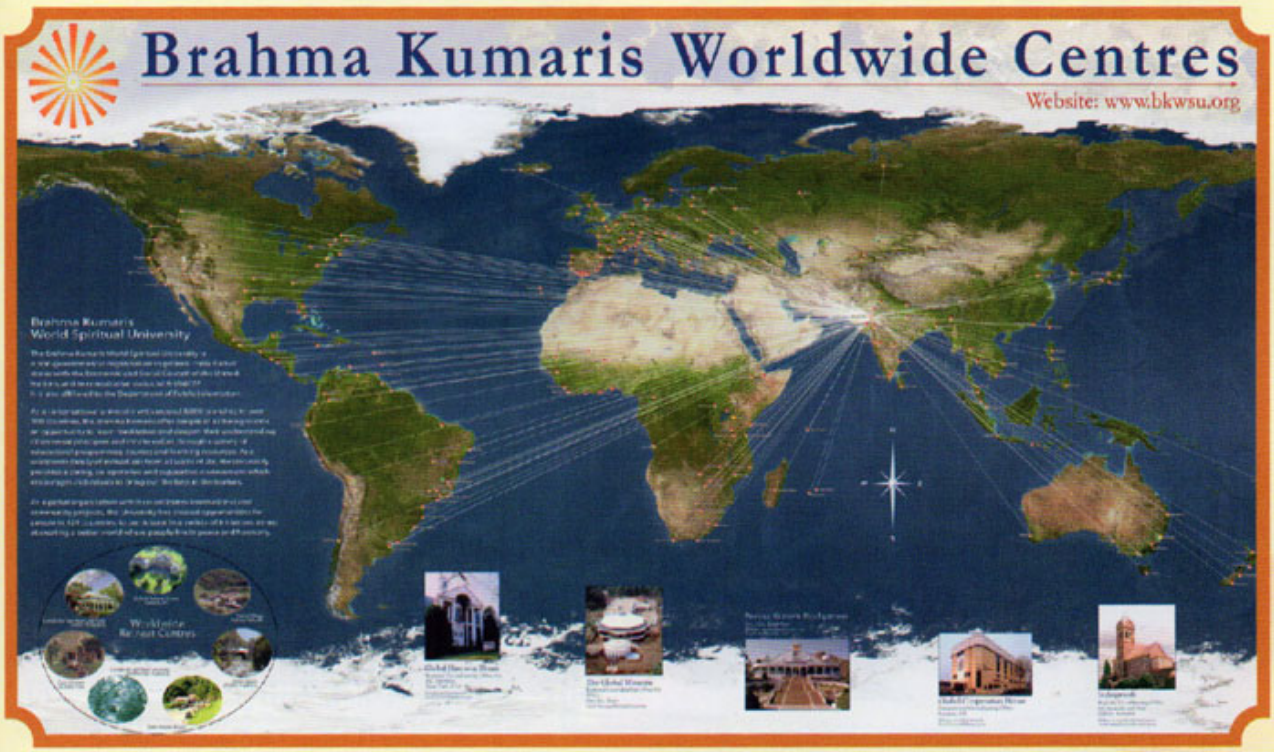

माउण्ट आबू के विभिन्न परिसर :

ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के मुख्यालय माउण्ट आबू में विभिन्न परिसर आवश्यकता के हिसाब से बने हुए हैं। इसमें सर्वप्रथम है पाण्डव भवन का परिसर जो पिताश्री जी की कर्म भूमि रही है, दूसरा परिसर ज्ञान सरोवर है, तीसरा परिसर ग्लोबल अस्पताल और चौथा शांतिवन परिसर है।

1. पाण्डव भवन परिसर : - यह भारत में संस्था का प्रथम परिसर है जो 1951 में आबू पर्वत पर स्थापित किया गया। यह परिसर सबसे पुराना नक्की झील के पास बना हुआ है। यही पिताश्री जी की कर्मभूमि, तपस्या भूमि रही। जहां पिताश्री जी ने हर कार्य स्वयं करके सभी को प्रेरणा दी थी। यही वह स्थान है जहां मातेश्वरी जगदम्बा सरस्वती और पिताश्री ब्रह्माबाबा आध्यात्मिक पुरुषार्थ द्वारा

सम्पूर्णता को प्राप्त कर अव्यक्त हुए। यहां मुख्य चार धाम बने हुए हैं जहां सभी ब्रह्मावत्स बड़ी श्रद्धा से आते हैं और अपनी मनोकामनायें पूर्ण होने का अनुभव करते हैं। पहला है पिताश्री जी का कमरा जहां उन्होंने तपस्या की थी, दूसरा, बाबा की झोपड़ी है जहां बैठ ब्रह्मा बाबा सभी से मिलते थे और पत्र लिखते थे, तीसरा है हिस्ट्री हॉल जहां निराकार परमात्मा शिव, ब्रह्माबाबा के माध्यम से ज्ञान के अमृत वचन उच्चारण

करते थे और चौथा है शांति स्तम्भ जहां ब्रह्मा बाबा का अंतिम संस्कार किया गया। शांति स्तम्भ के चारों और उनके जीवन के प्रेरक वचन के रूप में महावाक्य लिखे गये हैं जो देश-विदेश के अनेक लोगों को प्रेरणा देते हैं। यही वह स्थान है जहाँ से मूल आधार स्वरूप

बहनों का संगठन (जो अब दादियां कहलाती हैं) समस्त विश्व की संस्थागत कार्यवाहियों का संचालन करता है। पाण्डव भवन, जहां प्रारंभ में बहुत ही लघुस्तरीय सामान्य व्यवस्था थी, वहाँ अब बहुत उच्च स्तर के भवन, सभा-गृह व विशाल आवासीय व्यवस्थाओं का प्रावधान है। ओमशांति भवन में तीन हज़ार लोगों के बैठने की व्यवस्था है तथा 400 सम्पूर्ण समर्पित भाई-बहनें यहाँ रहकर सारी व्यवस्थाओं का कुशलतापूर्वक संचालन करते हैं ताकि आगन्तुक मेहमानों को लेश मात्र भी असुविधा न हो। सम्माननीय दादियों के मार्गदर्शन में किये गये सारे प्रबन्ध आध्यात्मिक वातावरण से ओतप्रोत हुए प्रतीत होते हैं जिससे सारे विश्व में पाण्डव भवन का नाम बड़ा ही प्रसिद्ध हो गया है।

2. ज्ञान सरोवर परिसर:- यह परिसर इस संस्था की एकेडमी फॉर ए बेटर वर्ल्ड (Academy for a Better world) के रूप में जाना जाता है। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय पाण्डव भवन से चार कि.मी. की

दूरी पर 35 एकड़ क्षेत्र में फैला एक अत्यंत रमणीक पहाड़ी स्थल है जो बहु उद्देशीय भवनों को समाये एक आध्यात्मिक प्रशिक्षण स्थान है। यह स्थान प्रकृति की नैसर्गिक छटाओं से भरपूर मनोहारी मनभावन पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यह ग्रामीण परिवेश में

एक अत्यंत आधुनिक भवन-समूह है जिसमें नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों व सिद्धांतों सम्बन्धी प्रशिक्षणों का आयोजन किया जाता है। यहां समय प्रति समय विभिन्न प्रभागों द्वारा सम्मेलनों, संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन होता रहता है। देश-विदेश के प्रतिष्ठित व्यक्ति यहां आकर आध्यात्मिक ज्ञान का लाभ लेकर अपने जीवन में उसका समावेश करने की प्रेरणा प्राप्त करके जाते हैं। लगभग

1600 लोगों के बैठने योग्य एक आधुनिक सभा-गृह, 13 प्रशिक्षण एवं संगोष्ठी कक्ष तथा 500 लोगों की आवासीय सुविधा से युक्त इस स्थान में एक आध्यात्मिक कला दीर्घा भी है जिसमें भारत तथा विश्व की अनेक

संस्कृतियों को चित्रों, मॉडल्स, लेज़र शो, प्रकाश व ध्वनि के द्वारा दर्शाया गया है। यही स्थान है जहां सौर ऊर्जा (solar energy) का पहला प्रयोग किया गया था। एकेडमी में सौर ऊर्जा का प्रयोग पानी गरम करने, भोजन पकाने तथा विद्युत उत्पादन में किया गया है जो परिसर के वातावरण को स्वच्छ रखने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

3. ग्लोबल अस्पताल (Global Hospital & Research Centre):- संस्था की पहल पर वर्ष 1991 में एक उच्चस्तरीय आधुनिक सर्वांगीण स्वास्थ्य सेवाओं के लक्ष्य से स्थापित इस अस्पताल का संचालन एक पुण्यार्थ न्यास तथा ब्रह्मकुमारीज़ के सदस्यों के सहयोग से होता है। चिकित्सालय का बाह्य रोगी विभाग - सामान्य औषधि एवं शल्य क्रिया, बाल चिकित्सा, स्त्री रोग चिकित्सा, नेत्र चिकित्सा, कान-नाक-गला विभाग, दंत चिकित्सा एवं हृदय चिकित्सा आदि 15 चिकित्सा विभागों से सुसज्जित है। यह

रोगी की जाँच के लिए अनेक सुविधाओं से पूर्ण है तथा भौतिक चिकित्सा, होमियोपैथी, आयुर्वेद व अन्य चुम्बकीय चिकित्सा आदि भी उपलब्ध है। कहने का भाव है कि सभी प्रकार की चिकित्सा प्रणाली उपलब्ध है जो एक ही छत के नीचे मरीज़ों को प्रदान की जाती है। चिकित्सालय सभी ज़रूरतमन्द लोगों का उपचार करता है चाहे वे स्वयं खर्च वहन कर सकते हैं या नहीं। सभी बाह्य रोगियों को निःशुल्क परामर्श दिया जाता है तथा लगभग 75 प्रतिशत रोगियों का उपचार निःशुल्क होता है। ग्रामीण इलाकों के रोगियों के

लिए विशेष रूप से 30 शैय्यायें आरक्षित हैं। यहाँ मेडिटेशन एवं मेडीकेशन (Meditation and Medication) के सन्तुलन से किसी भी बीमारी का इलाज सहज हो जाता है, इसके प्रयोग भी किये जाते हैं। यह अस्पताल कई प्रकार की सेवाएँ गांव वालों के लिए निःशुल्क उपलब्ध कराता है। जैसेः-

1. Village outreach programme
2. Eye camps
3. Cleft camps
4. Drug de-addiction camps
5. Diabetes camps
6. Reversing coronary artery disease project

ऐसे अनेक कार्यक्रम चलाये जाते है साथ ही कई मोबाईल वैन द्वारा गांवो में सारा दिन रह कर मरीज़ों का इलाज किया जाता है।

4. शांतिवन परिसरः- यह परिसर संस्था का सबसे बड़ा परिसर है। आबू पर्वत की तलहटी में, आबूरोड रेलवे स्टेशन से सात कि.मी. दूर शांतिवन परिसर लगभग 62 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ है। यहां का मुख्य आकर्षण इसका सबसे बड़ा ऑडिटोरियम डायमण्ड जुबली हॉल है, जिसमें एक साथ लगभग बीस हज़ार लोग बैठ कर किसी भी कार्यक्रम का लाभ ले

सकते हैं। यहां 15000 लोगों के लिए आवासीय सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त एक 1600 लोगों के बैठ सकने योग्य सभा-गृह, दस परिसंवाद-कक्ष, दो योगानुभूति कक्ष। कमल के आकार में बना हुआ ध्यान कक्ष तपस्या धाम भी है, साथ ही 'ओम् आर्ट गैलरी'

बनी है जिसमें मॉडलों के साथ आध्यात्मिक ज्ञान को स्पष्ट किया जाता है। इसी परिसर में ईश्वरीय विश्व विद्यालय की मुख्य प्रशासिका दादी प्रकाशमणि जी की याद में, प्रकाश स्तम्भ बना हुआ है। यहां विशेष आधुनिक तकनीक से बनाया हुआ रसोई घर है जिसमें स्वच्छता के साथ एक ही समय पर लगभग चालीस हज़ार व्यक्तियों का खाना मात्र दो घंटे में तैयार हो जाता है। इसी परिसर के पास ही पचास एकड़ की ज़मीन पर विश्व का सबसे बड़ा सोलार प्रोजेक्ट तैयार हो रहा है जिससे यह परिसर अपनी बिजली 24 घंटे उत्पन्न करने की क्षमता रखेगा। इस परिसर में सारा साल कार्यक्रम चलते रहते हैं, 6 मास तक जो ब्रह्माकुमार और ब्रह्माकुमारीज़ की शाखायें सारे विश्व में हैं उनकी उन्नति अर्थ कार्यक्रम रखे जाते हैं और बाकी के 6 मास जो लोग राजयोग सीखने के इच्छुक होते हैं उनके कार्यक्रम रखे जाते हैं। शांतिवन परिसर के निकट ही मनमोहिनीवन कॉम्पलेक्स, एक आवासीय परिसर है जिसमें आधुनिक उपकरणों से युक्त नव-निर्मित गॉडलीवुड स्टूडियो स्थित है। इसमें तीन हाई टेक स्टूडियो हैं। इन स्टूडियोज़ के द्वारा लाईव शो, डॉक्यूमेन्ट्री फिल्म, टॉक शोज़ आदि कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

आबू पर्वत में संस्था के रमणीक स्थानों में पीस-पार्क तथा विश्व नव-निर्माण आध्यात्मिक-संग्रहालय (नक्की झील के पास) भी महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल हैं।

आबू पर्वत के तलहटी में शान्तिवन परिसर के समीप ही नव निर्मित आनंद सरोवर परिसर है जो अपने आप मे

नव शिल्पकला से सुसज्जित भवनों का स्थल है यहां हर प्रकार से रहने और भ्रमण करने की सुविधा उपलब्ध है। यह

स्थान ठीक पहाड़ के नीचे स्थित है इसलिए इसे देखने वाले अपने के बहुत रोमांचित अनुभव करते है। यह पर लगभग पच्चीस सौ लोगों के रहने का प्रबन्ध है।

राजयोगा एज्युकेशन एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन :-

ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की सहयोगी संस्था के रूप में राजयोगा एज्यूकेशन एंड रिसर्च फाउण्डेशन की स्थापना की गई, जो समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों के लिए सेवाओं का विस्तार कर रही है। विभिन्न क्षेत्र के लोगों की आशाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संस्था द्वारा 19 प्रभागों की स्थापना की गई है जो निम्नलिखित हैं:

1. प्रशासक प्रभाग (Administrators Wing)
2. कला और संस्कृति प्रभाग (Art & Culture Wing)
3. व्यवसाय और उद्योग प्रभाग (Business & Industry Wing)
4. शिक्षा प्रभाग (Education Wing)
5. न्यायविद् प्रभाग (Jurist Wing)
6. मीडिया प्रभाग (Media Wing)
7. चिकित्सा प्रभाग (Medical Wing)
8. राजनीतिज्ञ सेवा प्रभाग (Politicians' Service Wing)
9. धार्मिक सेवा प्रभाग (Religious Service Wing)
10. ग्रामीण सेवा प्रभाग (Rural Development Wing)
11. समाज सेवा प्रभाग (Social Service Wing)
12. वैज्ञानिक और इंजीनियर प्रभाग (Scientists & Engineers Wing)
13. महिला प्रभाग (Womens Wing)
14. युवा प्रभाग (Youth Wing)
15. सुरक्षा प्रभाग (Security Service Wing)
16. यातायात (भूतल परिवहन) प्रभाग (Transport Wing - Road & Railways)
17. वाययान और जलयान प्रभाग (Shipping, Aviation & Tourism Wing)
18. खेल प्रभाग (Sports Wing)
19. स्पार्क प्रभाग (SpARC Wing)

इन विभिन्न प्रभागों के माध्यम से मनुष्य की आंतरिक शक्तियों के विकास तथा शाश्वत सिद्धांतों को शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों के द्वारा सीखने का सुअवसर प्रदान करती है। यह संस्था लोगों को आत्मीय सहयोग एवं प्रेरक वातावरण प्रदान कर उनके जीवन की गुणवत्ता को ऊँचा उठाने का प्रयास कर रही है। उसके लिए विभिन्न प्रभागों के द्वारा विभिन्न पाठ्यक्रमों को तैयार किया गया है, जैसे :-

1. सकारात्मक चिंतन की कला	(The Art of Positive thinking)
2. स्व-प्रबन्धन कला	(The Art of Self Management)
3. तनाव-प्रबन्धन	(Stress Management)
4. सदा सुखी रहने की कला	(The Art of Happy living)
5. आध्यात्मिक क्षमता का विकास	(Enhancing Spiritual Quotient)
6. सकारात्मक जीवन शैली	(Positive lifestyle)
7. नेतृत्व कला	(Leadership skills)
8. व्यसन मुक्ति	(Drug De-Addiction)

ऐसे अनेक कार्यक्रम विभिन्न वर्ग के लोगों के लिए तैयार किये गये हैं और समय प्रति समय विभिन्न सम्मेलनों, संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं के द्वारा इन आध्यात्मिक पहलुओं का समावेश कैसे किया जाए उसकी चर्चा की जाती है।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय की मूलभूत आध्यात्मिक शिक्षा राजयोग मेडिटेशन को सात दिन के कोर्स के रूप में सिखाया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में राजयोग के पाठयक्रम के व्यवस्थित विवेचन का प्रयास किया गया है।

मैं कौन हूँ की पहेली
हल करो तो जीवन
की सर्व समस्यायें
हल हो जाऐंगी।

मैं कौन हूँ?

अपने आध्यात्मिक अस्तित्व की पहचान

संसार में मनुष्य ने अभी तक जितनी भी तरक्की की है - चाहे विज्ञान के क्षेत्र में अथवा तकनीकी क्षेत्र में, चाहे कम्प्यूटर में, चाहे गणित में या अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, या किसी भी क्षेत्र में, ये उपलब्धियां उसने तब प्राप्त की हैं जब मानव ने बाह्य जगत को समझने की प्रक्रिया में अपने मन को बाहरी वस्तुओं पर एकाग्र किया। विचारोत्तेजक प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने के खोजपूर्ण प्रयासों से ज्ञान-विज्ञान के अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ।

बाह्य संसार जितना विशाल है, उतना ही भीतरी संसार भी विशाल है, लेकिन यह अंतर्जगत (inner space) पूरी तरह से गुप्त है। मानव को बाह्य जगत को जानने में हज़ारों वर्ष लग गये, लेकिन भीतर का अंतर्जगत इतना विशाल है कि अभी तक मानव ने उसे अंश मात्र भी नहीं समझा है। इस अन्तर्जगत को समझने में भारत का प्राचीन राजयोग हमारा सरल और सही मार्गदर्शन करता है। अंतर्जगत को समझने का आधार इस पहेली को सुलझाने से प्राप्त होता है कि - 'मैं कौन हूँ?' अब तक 'स्व' की वास्तविक्ता को हमने समझा नहीं है। इसीलिए आज संसार में सबसे बड़ा संकट 'स्व' की पहचान का संकट (identity crisis) है। व्यक्ति अपनी वास्तविक पहचान को भूला हुआ है और इसलिए कार्यान्वयन अक्षमता (Implementation paralysis) है अर्थात् 'आत्मा' की वास्तविक पहचान न होने से वह अपनी क्षमता को, शक्ति को कर्म में नहीं ला पाता।

सदियों से यही कहा गया है कि अपने आप को जानो, अपने आप को पहचानो (Know thy self, Realise thy self)। बाह्य स्वरूप से हम अपने आप को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। आत्मा के बारे में यही माना जाता है कि वह शरीर में एक चैतन्य शक्ति है, जो शरीर को चला रही है। शरीर हड्डी मांस का एक पिंजड़ा है। जब आत्मा इस शरीर को छोड़ देती है तब शरीर मुर्दा हो जाता है। आत्मा अजर-अमर-अविनाशी शक्ति है। आत्मा का कभी विनाश नहीं होता। यह सारा ज्ञान तो हमारे पास है, फिर जानने के लिए शेष क्या बचा है?

आध्यात्मिकता की आवश्यकता

वर्तमान समय में मनुष्य कई बार यह सोचता है कि हमारे जीवन में आत्मा के ज्ञान की

क्या आवश्यकता है? क्या आत्मज्ञान की या आध्यात्मिकता की इस आधुनिक जीवनशैली में कोई उपयोगिता है? कोई प्राप्ति है? क्या इस ज्ञान से हमारी वर्तमान समस्याओं का हल प्राप्त हो सकता है? मानव आध्यात्मिकता में रुचि तभी लेगा जब उसे यह निश्चय हो जायेगा कि इससे बहुत बड़ी प्राप्ति होगी। वास्तव में 'स्व' की यथार्थ पहचान अथवा आत्मज्ञान एवं आध्यात्मिकता की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि उससे मनुष्य अपनी सभी उलझनों एवं समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकता है।

इस संबंध में 'महाभारत' का यह प्रसंग द्रष्टव्य है कि अनेकों युद्ध अकेले जीतने वाला वीर योद्धा अर्जुन महाभारत युद्ध के समय विषादग्रस्त और अवसादग्रस्त (nervous & depressed) होकर कायरों की भांति अपने शस्त्र छोड़कर बार-बार भगवान से निवेदन करने लगा कि वह युद्ध नहीं करना चाहता। क्या तब उसे अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं था? जब भगवान उसके साथ थे और उसकी विजय निश्चित थी, तो क्या उसे भगवान पर भरोसा नहीं था? उस समय भगवान ने उसे कौन-सा ज्ञान दिया जिससे वह अपने विषाद से मुक्त होकर युद्ध के लिए तैयार हो गया? भगवान ने सर्वप्रथम उसे आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा आत्म निश्चय में स्थित किया और स्वधर्म का परिचय देकर उसकी अनंत शक्ति को उजागर करने की विधि बताई जिससे वह एक सच्चा कर्मयोगी बनकर हर चुनौती का सामना सफलतापूर्वक कर सके।

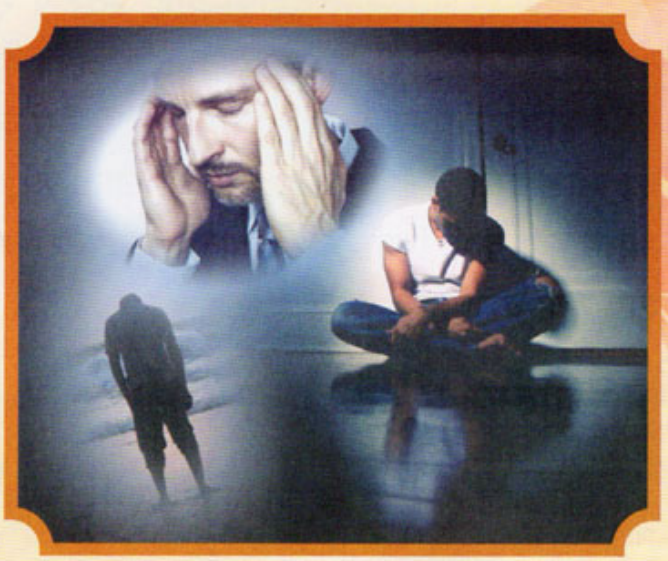

आज जीवन भी एक संघर्ष है, जहां हर वक्त मनुष्य को युद्ध करना पड़ता है। जीवन के कई संघर्षों को तो वह पार कर जाता है लेकिन जीवन की कई चुनौतियों के सामने वह अर्जुन की तरह विषादग्रस्त, तनावग्रस्त, निराश, उदास, हिम्मतहीन एवं दिलशिकस्त हो जाता है, जिसको आज के युग में डिप्रेशन कहते हैं। वह बार-बार भगवान

से अपनी प्रार्थना में कहता है कि 'हे प्रभु! आखिर यह संघर्ष कब तक?' ऐसी विषादपूर्ण मन:स्थिति के समय यह आध्यात्मिक ज्ञान, आत्मज्ञान उसके मन का भय एवं तनाव दूर करके उसे निर्भय और शक्ति सम्पन्न बनाता है।

दुविधा में जकड़ा मानव भी अर्जुन की तरह 'क्या करूँ, क्या न करूँ' के पशोपेश में पड़ जाता है। परमात्मा द्वारा सिखाया गया राजयोग जितना अर्जुन के लिए उपयोगी था उतना ही वह आज के तनावग्रस्त मानव के लिए भी उपयोगी है। आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा मनुष्य स्वयं की आत्मशक्ति को पहचान कर और उसके प्रयोग से वह कई प्रकार की समस्याओं का हल करके अपने मन को तनाव और भय से मुक्त कर सकता है। वह अपने जीवन में नई आशा की किरण लिए उमंग उत्साह के साथ जीवन को सकारात्मक दिशा दे सकता है। **राजयोग से वह अपनी आंतरिक शक्तियों को उजागर कर आत्म विश्वास से हर चुनौती का सामना कर सकता है।**

राजयोग

'राजयोग' पर विचार करने से पूर्व 'योग' शब्द पर विचार करना आवश्यक है। योग का सरल अर्थ है जोड़, सम्बन्ध या मिलन। जिस प्रकार वियोग का अर्थ अलग होना होता है, उसी प्रकार 'योग' का अभिप्राय मिलन या सम्बन्ध जोड़ना है। मानव जीवन में योग निरंतर चलता है । जैसे जब किसी के जीवन में भौतिक उपलब्धियां होती हैं तब कहा जाता है कि इसके जीवन में **भौतिकयोग** है। जब कोई व्यक्ति बहुत परिश्रम करता है और उसे प्राप्ति नहीं होती और फिर अचानक समय आने पर उसे सफलता मिल जाती है तो इसे **समय का संयोग** कहा जाता है। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति से समय पर मदद मिल जाती है तो कहा जाता है कि उसके **सहयोग** से यह कार्य संभव हो गया। जब हमारा सम्बन्ध अपने इष्ट देव या देवी के साथ होता है और जीवन में वह इष्ट देव या इष्ट देवी की कृपा हो जाती है तो इसे **दैवी योग** कहते हैं ।

इस प्रकार **'योग'** व्यक्ति के जीवन में निरन्तर चलता है। विद्यार्थी का जब पढ़ाई से योग होता तभी वह पढ़ सकता है, किसी व्यक्ति का जब अपने कर्म से योग होता है तब वह उस कार्य को कुशलतापूर्वक करके सफलता प्राप्त कर सकता है, इसलिए गीता में कहा गया है 'योगः कर्मसु कौशलम्'।।

'राजयोग' एक सर्वश्रेष्ठ योग है। सर्वश्रेष्ठ इसलिए क्योंकि **'सर्वश्रेष्ठ हस्ती'** के साथ योग है, यानि आत्मा का परमपिता परमात्मा के साथ योग है। दूसरा, इसकी **विधि भी**

सर्वश्रेष्ठ है, जहाँ हम स्वयं को श्रेष्ठ आत्मभाव की स्थिति में स्थित करके अपने मन-बुद्धि को परमात्मा पर एकाग्र करते हैं। तीसरा, इसकी **प्राप्ति भी सर्वश्रेष्ठ** है, जहाँ हम परमात्म सकाश से सर्व शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान ने अर्जुन को कहा था कि इस राजयोग से मैं तुम्हें राजाओं का राजा बना दूंगा। राजाओं का राजा अर्थात् पहले अपनी कर्मेन्द्रियों पर राज्य प्राप्त करना और जिसने अपनी कर्मेन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त किया होगा, वह अपने मन को भी सहज वश कर सकता है, और तभी कहा गया है मन जीते, जगत जीत।

''एक कहानी के अनुसार एक बार एक व्यक्ति बहुत गरीब था। उसके पास एक बंजर जमीन का टुकड़ा था जिस पर कोई फसल नहीं उगती थी। वह थोड़ा काम करके और कुछ कर्ज़ा लेकर अपने परिवार को पालता था। एक दिन उसे कोई काम भी नहीं मिला और सभी ने उसे कर्ज़ा देने से भी इन्कार कर दिया। वह सोचने लगा, अभी क्या करूं, अपने परिवार को कैसे पालूं... अपनी गरीबी के एहसास से वह बहुत दुःखी होकर सोचने लगा कि क्या यह भी कोई जीवन है, इससे तो मर जाना ही अच्छा है। और वह मरने के तरीके सोचने लगा... इतने में उसने देखा कि कुछ लोग उसकी तरफ आ रहे हैं। उन्होंने पास आकर उस गरीब से पूछा - 'भाई, यह ज़मीन किसकी है ?' गरीब ने कहा कि यह उसकी ज़मीन है। तब उन्होंने कहा, देखो हमारे अनुसंधान से पता चला है कि इस ज़मीन के नीचे तेल है, अगर तुम हमें खुदाई करने दो और पता लगाने दो, उसके लिए हम तुम्हें भाड़ा दे देंगे। उस गरीब ने कहा, वैसे भी यह बंजर ज़मीन कोई काम की नहीं है आप खुदाई करके मुझे भाड़ा दे दो। उन्होंने ड्रिलिंग किया तो पता चला कि सचमुच उसके नीचे इतना तेल है कि प्रतिदिन अस्सी हजार बैरल तेल निकल सकता है। वे लोग बहुत खुश हुए और इस गरीब से कहने लगे – देखो अगर तुम हमें यह जमीन बेच दो तो हम तुम्हें लाखों रुपये देंगे। जब उस गरीब के हाथ में पैसे आये तो वह सोचने लगा कि थोड़ी देर पहले मुझे अपनी गरीबी का एहसास हो रहा था और अपनी गरीबी को कोस रहा था और

अपने जीवन को खत्म करने की सोच रहा था क्योंकि मुझे यह पता नहीं था कि जिस ज़मीन के टुकड़े पर मैं खड़ा हूँ उसके नीचे इतना धन है।''

ठीक इसी प्रकार आज हर इन्सान आध्यात्मिक रूप से गरीब है और इसलिए दु:खी होकर सोचता है कि क्या यह भी कोई जीवन है। आखिर जीवन का मतलब क्या है? भगवान ने यह दुनिया क्यों बनाई? क्यों हमें ऐसी दुनिया में भेजा? ऐसे अनेक सवाल उसके मन में पैदा होते हैं क्योंकि वह यह नहीं जानता कि उसके भीतर भी अनंत क्षमता और अनेक शक्तियाँ हैं, जिससे उसका जीवन बहुत सुन्दर मधुबन बन सकता है, सिर्फ उसे अपने भीतर जाकर अपनी शक्ति, क्षमता और ऊर्जा को पहचान कर जीवन में लाने की आवश्यकता है। अन्तर्जगत की यात्रा करने के लिए **'आत्मा'** के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है।

शरीर एवं आत्मा की वास्तविकता

जीवन दो चीज़ों से बना है एक है जीव (शरीर), दूसरी है आत्मा। केवल आत्मा से भी जीवन नहीं है और ना ही केवल शरीर से जीवन है। शरीर क्या है? शरीर की वास्तविकता पांच तत्व हैं, इसीलिए हर प्राणी का शरीर अपना जीवन जीने के लिए उन

पांच तत्वों की माँग करता है। ये पांच तत्व हैं – वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश। शरीर को जीने के लिए ऑक्सीजन ही क्यों चाहिए? क्योंकि शरीर की रचना में ऑक्सीजन है। ऑक्सीजन के बदले में दूसरी कोई गैस नहीं चलेगी, ऑक्सीजन ही चाहिए। इसी प्रकार अगर प्यास लगती है तो पानी चाहिए क्योंकि शरीर पानी की मांग करता है। पानी नहीं है तो उसके बदले में डीजल, केरोसीन, पेट्रोल नहीं चलता है, क्योंकि शरीर की रचना में 70 प्रतिशत पानी का हिस्सा है। इंसान जब थक जाता है तो उसके शरीर से काफी पसीना निकल जाता है जिसके कारण शरीर में पानी का स्तर कम हो जाता है तो बाहर से आते ही वह कहता है – पानी चाहिए। परन्तु, जब पानी पीता है तब यह सोचकर नहीं पीता कि उसे कितना पानी पीना है। जैसे ही पानी का स्तर शरीर की आवश्यकतानुसार पूरा हो

जाता है तो वह पानी का गिलास अपने आप छोड़ देता है। कहने का भाव यह है कि शरीर उन्हीं पांच तत्वों की माँग करता है जिससे उसकी रचना हुई है। कोई भी एक तत्व कम हो जाए तो जी घबराने लगता है और बेचैनी महसूस होने लगती है। यह है शरीर की वास्तविकता। इसीलिए कुदरत ने प्राणी मात्र के लिए पांचों तत्व समान रुप से उपलब्ध किए हैं। कुदरत ने जाति, धर्म, देश का भेद नहीं रखा है। जिस क्वालिटी का पानी, प्रकाश, हवा भारत में है उसी प्रकार का अन्य देशों में भी है। हर धर्म वाले को एक समान दिया है। कुदरत ने कोई भेदभाव नहीं किया है।

आत्मा के सात गुण

जिस प्रकार शरीर की वास्तविकता पाँच तत्व हैं, उसी प्रकार शरीर के अंदर जो चैतन्य शक्ति **'आत्मा'** है, उसे जीवन जीने के लिए सात गुण चाहिए, इसलिए आत्मा को **'सतोगुणी'** कहा जाता है। आत्मा की चैतन्यता की अभिव्यक्ति इन्हीं सात गुणों के माध्यम से होती है, जो जीवन को अर्थपूर्ण बना देते हैं। आत्मा के इन्हीं गुणों के आधार से जीवन जीने में आत्म सन्तुष्टि, खुशी, मौज और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। ये सात गुण हैं - **ज्ञान, पवित्रता, प्रेम, शांति, सुख, आनंद और शक्ति।** ये सात गुण ही आत्मा की वास्तविकता हैं। इनका उल्लेख निम्नलिखित है:

1. ज्ञान

उन सात गुणों में सर्वप्रथम है आध्यात्मिक ज्ञान। आध्यात्मिक ज्ञान हमें जीवन में क्यों चाहिये? इससे हमारे जीवन में क्या फर्क पड़ेगा? इसकी धारणा न करने से क्या नुकसान हो सकता है? इन प्रश्नों का समाधान करना ज़रूरी है।

संसार में ज्ञान की कमी नहीं है, विज्ञान भी अपनी चरम सीमा पर है परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान की कमी है, तभी मनुष्य भगवान से प्रार्थना करते हैं कि अज्ञान से हमें ज्ञान की ओर ले चलो; हे प्रभु, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो (Oh God, Lead us from the

darkness to the light) या हे प्रभु! हमें सद्‌बुद्धि दो। अब सवाल यह है कि ज्ञान-विज्ञान का अथाह भंडार होने के बावजूद क्या हमें ज्ञान नहीं मिला जो हम भगवान से ज्ञान मांगते है?

किसी ने सही कहा है कि सारी दुनिया की ज्ञान-विज्ञान की पोथियों की यदि होलिका जलाई जाए तो उससे ताप अधिक होगा परन्तु प्रकाश कम होगा (The heat is more than the light)। आज मनुष्य ने भी जो थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किया है उससे गर्मी अधिक पैदा हो गई है परन्तु रोशनी उतनी नहीं मिली है अर्थात् अभिमान की गर्मी मिली है लेकिन व्यवहार में कैसे आना है, उसकी रोशनी या समझ कम है।

सबसे बड़ा अज्ञान और अभिशाप मानव का अहंकार है। अंहकार के कारण मन में अनेक प्रकार की गलतफहमियां हो जाती हैं जिसके कारण पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव, कड़वाहट और टकराहट होने लगती है। आज कई परिवार इस अहंकार के कारण टूट रहे हैं। बड़े औद्योगिक घरानों में यह भी एक बड़ी समस्या है जिसका कोई समाधान नहीं है, परिणामस्वरूप उद्योग बंद हो जाते हैं। इसीलिये आज के युग में आध्यात्मिक ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है।

ज्ञान का अर्थ है समझ, विवेक। आध्यात्मिक ज्ञान मानव के अंहकार को नष्ट कर देता है। निरहंकारी और नम्रचित बनते ही आपसी संबंध अथवा रिश्ते प्रेम, स्नेह और सहयोग के सुदृढ़ आधार पर मधुर बन जाते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान से मानव जीवन एवं पारिवारिक, व्यावसायिक, तथा सामाजिक सम्बन्ध श्रेष्ठ और भरोसेमंद बनते हैं।

2. पवित्रता:

ज्ञान की शक्ति से मन-वाणी-कर्म में पवित्रता सहज आ जाती है। पवित्रता अर्थात् शुद्धि। कहा जाता है कि जहां शुद्धि है, वहां ईश्वर का निवास होता है। (Where there is cleanliness, there is Godliness) मनुष्य बाह्य शुद्धि को तो अपना लेता है लेकिन आत्मा की शुद्धि की ज़िम्मेवारी नहीं लेता, यही कारण है कि भगवान के मंदिर में जाकर यही भजन गाते हैं 'मैली चादर ओढ़ कर आया रे द्वार तेरे .. हे प्रभु तू साफ कर दे ..' क्या गा लेने से शुद्ध, पवित्र हो जायेंगे? क्या उसके लिए हमें कोई पुरुषार्थ नहीं करना होगा? पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष + अर्थ अर्थात् पुरुष (आत्मा) को पवित्र करने अर्थ।

कई बार देखा गया है कि दो व्यक्तियों की आपस में बहुत अच्छी दोस्ती होती है परन्तु

ऐसा देखा गया है कि कुछ समय के बाद वह दोस्ती टूट जाती है। अगर उनमें से एक को पूछा जाए कि 'आपकी तो बहुत अच्छी दोस्ती थी फिर क्या हुआ?' तब वह दूसरे के बारे में यही कहता है कि बाद में हमें पता चला कि उस व्यक्ति के अंदर कुछ और था और बाहर कुछ और था। बाहर से बड़ी सफाई वाली बातें कर रहा था लेकिन उसका मन साफ नहीं था। इसलिए वह हमें अच्छा नहीं लगा तो हम उससे दूर हो गये। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य को वही अच्छा लगता है, जिसमें विचार, भावना और आचरण की शुद्धता होती है। शुद्धि अर्थात् पवित्रता। जब कोई व्यक्ति अंदर एक और बाहर दूसरा अर्थात् दोहरे व्यक्तित्व वाला होता है, तब लोग यही कहते कि वह बड़ा खतरनाक व्यक्ति है, पता ही नहीं चलता अंदर क्या है, ऐसे व्यक्ति से तो दूर रहना ही अच्छा है, उसे खतरनाक कह देते हैं। परन्तु, अगर कोई व्यक्ति बहुत भोला होता है, अंदर-बाहर एक समान हो तो उसे लोग कहते कि यह तो भगवान का बंदा है, जो अंदर होगा वही बाहर होगा, उससे कोई खतरा नहीं।आज दुनिया को कैसा व्यक्तित्व पसंद है, हर कोई ऐसी दोस्ती चाहता है जो पवित्र और सच्ची हो, क्योंकि पवित्रता ही हमारा वास्तविक स्वरूप है। आत्मा को सत्य और चैतन्य कहा जाता है और यही पवित्रता आत्मा का सत्य स्वरूप है। तभी मनुष्य छोटे बच्चे को भगवान का रूप मानते हैं क्योंकि वह पवित्र है। यह पवित्रता ही आत्मा का अनादि और आदि स्वरूप है, यही आत्मा के तेज को विकसित करता है। जहां पवित्रता है, वहां सुख-शांति स्वतः ही होगी। पवित्रता की निशानी 'सदा खुशी' है। पवित्र जीवन अर्थात् दुःख और अशांति का नाम निशान नहीं।

3. प्रेम

संसार में हर व्यक्ति प्रेम चाहता है। चाहे बच्चा है या बूढ़ा, पति है या पत्नी। जब कोई प्रेम से व्यवहार करता है तो सबको अच्छा लगता है। लेकिन विडम्बना यह है कि आज की दुनिया में यदि कोई प्यार से बात करता है तो अविश्वास के कारण व्यक्ति तनाव में

आ जाता है। उससे यदि पूछा जाये कि भाई, क्या बात है तो कहेगा 'अरे, फलाना व्यक्ति इतने प्यार से बात कर रहा है कि तनाव हो रहा है', फिर उससे पूछो कि भाई, प्यार से ही तो बोल रहा है, फिर तनाव किस बात का? तब वह कहता है कि हमारा आपसी तालमेल तो है नहीं, भावनाओं में शुद्धि है नहीं, उसके बाद अगर वह प्यार दिखा रहा है तो वह प्यार नहीं, जरूर कोई स्वार्थ है, इसलिए तनाव हो रहा है। आज मनुष्य को निःस्वार्थ एवं शुद्ध प्यार चाहिए। ऐसा निःस्वार्थ प्रेम तो आध्यात्मिक समझ और पवित्रता के आधार पर ही मिल सकता है। जहां भावनाओं में, विचारों में, व्यवहार में अहंकार है, स्वार्थ है, अशुद्धि है, वहाँ सम्बन्धों में कभी भी प्रेम पनप नहीं सकता। आज परिवारों में स्वार्थ बहुत अधिक है, निःस्वार्थ प्रेम बहुत कम है। इन्सान जीवन में **सच्चा प्रेम** पाना चाहता है। जब मनचाहा प्रेम नहीं मिलता तो भगवान के सामने जाकर कहता है कि 'तू प्यार का सागर है, तेरी इक बूंद के प्यासे हम...' इसीलिए कई बार मनुष्य कह देता है कि 'हमें और कोई चीज़ नहीं चाहिए, परन्तु प्रेम से दो बोल तो बोलो – इसमें कौन-सा खर्चा लगता है?' जीने के लिए धन आवश्यक है परन्तु उससे भी अधिक आवश्यकता, आत्मा को प्रेम की है, क्योंकि प्रेम ही आत्मा का निजी गुण है। जहां प्रेम होता है वहां एक दूसरे की बात को स्वीकार करना और सत्कार देना दोनों बातें आ जाती हैं। जहां प्रेम है वहां जीवन जीने का सच्चा आनंद है इसलिए कहा गया है 'ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होइ...' जहां ये तीनों होते हैं - **ज्ञान** यानी आध्यात्मिक विवेक, **शुद्धि** या पवित्र भावना और निःस्वार्थ **प्रेम**, वहां ही **शांति** होती है।

4. शांति

शांत स्वरूप रहना और सर्व को शांति देना, इसी की आज विश्व में आवश्यकता है। आज हर इंसान को शांति चाहिए परन्तु कौन-सी शांति? क्या सिर्फ श्मशानी शांति चाहिए या वातावरण की शांति चाहिए या कोई युद्ध अथवा कोई लड़ाई झगड़ा न हो वह शांति चाहिए? मनुष्य को कर्म करते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए, मन की सच्ची शांति

चाहिए जहां उसका मन प्रसन्नतापूर्ण शांति में रहे। जहाँ कोई तनाव या परेशानियां न हों, यह शांति चाहिए। तभी मनुष्य कहता है कि महल नहीं होगा, छोटा घर या झोंपड़ी भी चलेगी परन्तु, जीवन में शांति चाहिए। कहने का भाव यह कि 'घर' जीवन के लिए आवश्यक है, परन्तु उससे भी अधिक आवश्यकता शांति की है। सबकी यही चाहना है कि विश्व में शांति आ जाए, परन्तु यह शांति, कोई 'विश्व शांति सम्मेलन' कर लेने से प्राप्त नहीं होगी। आज विश्व में कोई शांति के लिए थोड़ा भी प्रयत्न करता है तो उसे नोबेल पुरस्कार (Nobel prize) से सम्मानित किया जाता है। लेकिन फिर भी दुनिया में शांति नहीं होती क्योंकि विश्व शांति का आधार आत्मिक शांति है। प्रकृति भी शांत तब होगी, जब आत्माओं में शांति की वृत्ति आये। इस शांति का आधार आध्यात्मिक ज्ञान या विवेक हैं। मन में पवित्र विचार एवं भावनायें तथा शुद्ध व्यवहार और आपसी सम्बन्धों में निःस्वार्थ प्रेम से शांति की स्थापना होती है। शांति की यह शक्ति सारे विश्व को अशांत से शांत बनाने वाली है। शांति की शक्ति क्रोध को शीतल कर देती है।

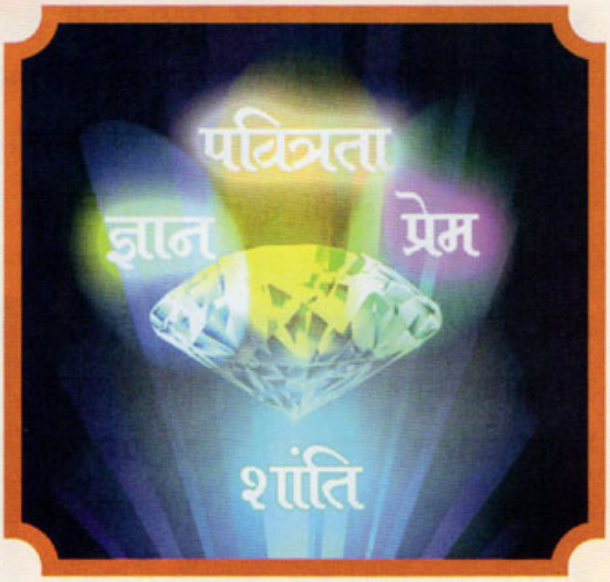

5. सुख

आज मनुष्य सुख को यथार्थ रूप में समझ नहीं पाया है। वह सुख को बाह्य भौतिक साधनों में ढूंढ रहा है। इस कारण सर्व सुख सुविधाओं के बीच होते हुए भी जीवन में सुख का अनुभव नहीं करता। किसी सुखद शैय्या पर भी चैन की नींद नहीं ले पाता। दुनिया में सच्चे सुख के लिए मनुष्य कितनी भागदौड़ और मेहनत करते हैं लेकिन इस सुख के साथ कोई न कोई दुःख भी मिला होगा। तभी मनुष्य कहता हैं – सूखी रोटी चलेगी, सादा भोजन चलेगा परन्तु सुख चाहिए। यदि उसके सामने छप्पन प्रकार के भोग रखे हों परन्तु खाते समय किसी ने दुःख का कोई समाचार सुना दिया तो एक भी पदार्थ

अंदर नहीं जायेगा। तात्पर्य यह है कि भोजन शरीर के लिए आवश्यक है परन्तु, उससे भी अधिक आवश्यकता आत्मा को सुख की है। महान आत्माओं ने कहा है कि सुख बाहर नहीं है, भीतर है। लेकिन भीतर कहां है, भीतर कैसे जाना होता है, यह मालूम नहीं और बाहर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जब सुख नहीं मिलता तो जीवन में हताशा (frustration) और निराशा आ जाती है। जीवन में सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए चार बातों की आवश्यकता है -

1. जब जीवन को आध्यात्मिक ज्ञान से सींचते हैं,

2. सम्बन्धों में पवित्र भावनाओं को पनपने देते हैं,

3. निःस्वार्थ प्रेम की सरिता बहती है और

4. मन में प्रसन्नता पूर्ण शांति है।

इनके बिना सुख की केवल कल्पना ही रह जाती है, सच्चा सुख मिलता नहीं हैं।

6. आनन्द

जहां ये पाँचों - ज्ञान, पवित्रता, प्रेम, शांति, और सुख होंगे वहां जीवन में सर्वोच्च स्थिति - **आनन्द** की प्राप्ति होगी। आत्मा का वास्तविक स्वरूप ही है सत्-चित् आनंद स्वरूप। परन्तु आज मानव अपने वास्तविक आनंद स्वरूप से इतना दूर हो गया है कि इस आनन्द को ढूंढ़ना पड़ रहा है। कई महान आत्माओं ने इस आनंद की प्राप्ति के लिए अपने घरबार छोड़ दिये। इस आनंद की प्राप्ति के लक्ष्य से कभी विचलित न हो जाएँ, इसके लिये उन्होंने अपने नाम के पीछे **आनन्द** जोड़ दिया, ताकि हर समय, इस लक्ष्य की स्मृति रहे, कि जीवन का लक्ष्य है - आनन्द की अनुभूति करना। आनन्द को सर्वोच्च इसलिए कहा गया है, क्योंकि इस गुण का कोई विपरीतार्थक शब्द नहीं है, जैसे सुख के साथ दुख, प्रेम के साथ नफरत आदि हैं। इसलिए आनन्द को अलौकिक, ईश्वरीय माना गया है, तभी महान आत्माओं ने उसका अनुभव करना चाहा। परन्तु आज आनन्द की बात तो बहुत दूर, मानव जीवन में खुशी भी नहीं है। यह भी कैसी विडम्बना है कि खुशी का अनुभव करने के लिए उसे हास्य क्लब (laughing clubs) से जुड़ना पड़ता है और बगीचों में जाकर हँसना पड़ता है, घर में वह हँस नहीं

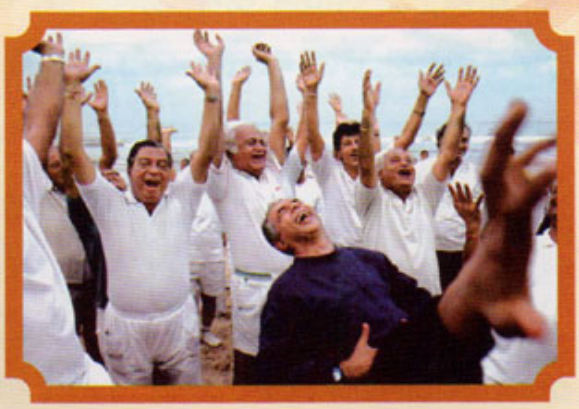

सकता, खुश नहीं रह सकता। घर में वह अगर खुश होता है या हँसता है, तो घर वाले ही उससे पूछने लगते हैं कि क्या बात है आज बड़े खुश लग रहे हो। कई बार व्यक्ति खुद ही सोचता है कि कहीं मेरी खुशी को किसी की नज़र ना लग जाए। सोचने की बात है खुशी एक सकारात्मक ऊर्जा (Positive Energy) है, उसे नकारात्मक शक्ति नष्ट कैसे कर सकती है?

7. शक्ति

जहां ये छः गुण हैं वहां मनुष्य अपने जीवन में **शक्ति** का अनुभव कर सकता है परन्तु आज आत्म शक्ति तो दूर, मनुष्य में आत्म विश्वास भी नहीं रहा। तभी वह ईश्वर से प्रार्थना करके शक्ति मांगता है कि 'इतनी शक्ति देना हमें दाता, मन का विश्वास कभी कम ना हो...। ' वास्तव में ये सातों गुण आत्मा का सत्य स्वरूप हैं। ये सिर्फ गुण नहीं हैं, ये शक्तियां हैं, ज्ञान की शक्ति, पवित्रता की शक्ति, प्रेम की शक्ति, शांति की शक्ति... ये सब महान चैतन्य शक्तियां हैं। इसीलिये आत्मा को कहा जाता है कि आत्मा **चैतन्य शक्ति** है। जब मानव इन गुणों का स्वरूप बनकर व्यवहार करता है, तब इन गुणों की चैतन्यता या ऊर्जा उसके स्वरूप में प्रगट होती है। लेकिन आज मनुष्यात्मा अपनी वास्तविकता से बहुत दूर चली गयी है। ये सातों गुण मानव जीवन में सक्रिय नहीं रह पाए हैं, तभी आत्मा इन गुणों की शक्ति में कमज़ोर हो गई और यही कारण है कि व्यक्ति उन्हें बाहर ढूंढ़ने लगता है, चाहता है कि कहीं से इनका अनुभव हो जाए, कहीं से उनकी प्राप्ति हो जाए। परन्तु जब बाहर से इनकी प्राप्ति नहीं हुई, तो आत्मा कमज़ोरियों की शिकार हो गई और बदले में सात अवगुण – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, आलस्य, ईर्ष्या-द्वेष जीवन में सक्रिय हो गए। इन कमज़ोरियों के वशीभूत व्यक्ति को विकारी कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति काम, क्रोध के वशीभूत होकर कोई दुष्कर्म करता है तो उसे शैतान या राक्षस कहा जाता है। कभी-कभी मनुष्य सारी बुराई छोड़ना भी चाहता है लेकिन कैसे छोड़े, इसे वह समझ नहीं पाता है क्योंकि वह उसकी विधि बाहर ढूंढ रहा है इसलिए उसे हल नहीं मिलता। इस सम्बंध में एक कहानी है:

"एक बार एक व्यक्ति भारत से अफ्रीका गया और अपने एक मित्र के पास जाकर ठहरा। वह मित्र काफी सम्पन्न था। उसके पास काफी ज़मीन थी, बहुत बड़ा आलीशान घर था और बहुत गाड़ियां थीं, एक बड़ा सा फार्म हाऊस था जिसमें उसने कई प्रकार के जानवर पाल रखे थे। अपने जीवन में सन्तुष्ट था। उस मित्र ने अफ्रीका आने का

कारण पूछा, तब उस भारतीय ने बताया कि उसने सुना है कि अफ्रीका में हीरे की खानें हैं इसलिए वह हीरों की खोज में आया है। अफ्रीका वाले मित्र ने पूछा ये हीरे क्या होते हैं ? तब उस भारतीय ने हीरे का वर्णन करते हुए, उसके मूल्य के बारे में बताया और कहा, थोड़े से हीरे प्राप्त हो जाने से जीवन आराम से जी सकते हैं। अफ्रीका वाले मित्र के पास सब कुछ था परन्तु हीरे नहीं थे। उसे लगा ज़रूर ये हीरे बहुत अमूल्य होंगे तभी तो यह व्यक्ति इतनी दूर से इसकी खोज में यहां आया है। दूसरे दिन सुबह ही भारतीय ने वहां से विदाई ली और हीरे की खोज में चल निकला। परन्तु वह अफ्रीका वाला व्यक्ति बेचैन हो गया और उसने सोचा ये हीरे तो मेरे पास भी होने चाहिएँ, और उसने भी अपनी सारी मिलकियत को बेच कर गाड़ी और पैसे लेकर हीरे की खोज में निकल पड़ा। काफी दिनों तक वह घूमता रहा और एक दिन अफ्रीका के जंगल में किसी ज़हरीले कीड़े ने काट लिया और वह मौत की नींद सो गया। काफी समय के बाद वह भारतीय फिर घूमते हुए उस मित्र के फार्म हाऊस पर पहुंचा तो उसे पता चला कि उसका मित्र अपनी सारी मिलकियत को बेच कर हीरे की खोज में गया और उसके जीवन का अंत हो गया। उसे यह समाचार सुनकर बहुत अफसोस हुआ। उस फार्म हाऊस के मालिक ने भारतीय को अंदर बुलाकर भोजन करने के लिये कहा। भारतीय ने जब अंदर आकर ड्राइंग रूम में अपना स्थान लिया तो सामने ही एक बहुत सुंदर कांच के कटोरे में बहुत सारे कांच के टुकड़ों को सजे हुए देखा। नजदीक जाकर देखता है तो बहुत सारे छोटे-बड़े हीरे थे। उसने उस मालिक से पूछा ये इतने सारे हीरे कहां से आये ? मालिक ने कहा, अरे ये कांच के टुकड़े, ये तो पीछे बगीचे में बहुत सारे पड़े हैं, इन्हें बच्चे ले आये है और यहां सजा दिया है। वह भारतीय बहुत उत्सुक हो गया और कहा मुझे वह स्थान दिखाइये जब पीछे जाकर देखा और खुदाई करवाई तो वहीं एक हीरे की खान प्राप्त हुई। तब वह भारतीय सोचने लगा कि मेरे मित्र को हीरे का ज्ञान न होने कारण उसके बगीचे में खान होते हुए भी सब बेचकर बाहर ढूँढ़ने गया। ठीक इसी प्रकार सातों गुणों की खान हमारे भीतर है लेकिन ज्ञान न होने कारण हम भी उसे बाहर ढूँढ़ते हैं।''

इसलिए उपर्युक्त सात गुणों की सम्पूर्णता के आईने में अपना स्वरूप देखना चाहिए। इन सात गुणों के लिए गीता में भगवान ने कहा है – हे अर्जुन, स्वधर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं अर्थात् ये सात गुण ही आत्मा का स्वधर्म है। हर चीज़ का अपना गुण

धर्म होता है, जैसे पानी का गुण धर्म है शीतलता, अग्नि का गुण धर्म है गरमी, पानी को कितना भी उबाल लिया जाये और फिर अग्नि से उतार कर रख दिया जाये तो धीरे-धीरे फिर से अपने शीतल गुण धर्म में आ जाता है। वैसे ही आत्मा का गुण धर्म या स्वधर्म यही सात गुण है और अवगुण पर-

धर्म है, वह हमारा अपना नहीं है, पराया है तभी वह परेशान करता है, इसी स्वधर्म में जब हम स्थित होते हैं तो हमें अच्छा लगता है और जब हम अपने स्वधर्म से दूर चले जाते हैं तो हम असहज हो जाते हैं। कभी कोई यह नहीं कहेगा कि क्रोध करने के बाद मुझे अच्छा लगता है या नफ़रत करके अच्छा महसूस होता है। तभी तो इन कमज़ोरियों को विकृतियाँ कहा गया है। इन विकृतियों के कारण ही आज मनुष्य जीवन में दुःख का अनुभव करता है। तभी कहा जाता है स्वधर्म सुख का आधार है और परधर्म दुःख का कारण है। यही सात गुण आत्मा रूपी बैटरी को भरपूर रखते हैं। परन्तु आज के युग में आत्मा रूपी यह बैटरी डिस्चार्ज हो गई है। व्यक्ति भीतर से खोखला होता जा रहा है। उसके जीवन के अंदर बेचैनी बढ़ती जा रही है। जैसे शरीर को यदि एक तत्व नहीं मिलता है, तो मनुष्य का दम घुटने लगता है। इसी तरह आत्मा के इन सातों गुणों में से एक गुण भी अगर जीवन में कम हो जाए तो व्यक्ति के जीवन में भी हताशा (frustration) आने लगती है।

पहले चिड़चिड़ापन शुरू होता है, फिर धीरे धीरे गुस्सा आने लगता, हर छोटी बात उसे तनाव में ले आती है, कोई कुछ कह देता है तो भी उसे बुरा लगता है, उसका मूड खराब हो जाता और तनाव बढ़ता जाता है। मन में बहुत फालतू और नकारात्मक विचार आने लगते हैं और जब वह अपने विचारों

पर अंकुश नहीं लगा पाता तो धीरे-धीरे यही नकारात्मक विचार उसे डिप्रेशन का शिकार बना देते हैं। जब मनुष्य को बहुत गुस्सा आने लगता है तब वह कहता भी है कि पहले उसे इतना गुस्सा नहीं आता था लेकिन आज कल उसमें यही एक कमजोरी है। **अब अगर विचार किया जाये तो यह कमज़ोरी शरीर की है या आत्मा की ?** ज़रूर कहेंगे आत्मा की कमज़ोरी है, तो इसका मतलब आत्मा रूपी बैटरी (battery) कमजोर हो रही है। अब मानव ने डिस्चार्ज्ड हो चुकी बैटरी की तरह अपने जीवन के अधूरेपन और खालीपन को भरने के लिए अनेक तरीके अपनाए जिनमें से कुछ आगे बताये गऐ हैं जैसे कि:-

1. दूसरों से अपेक्षाएँ रखना।

उसने चाहा कि दूसरे लोग उसे समझें और उसे सुख दें, दूसरे व्यक्ति उसके साथ शांतिपूर्ण व्यवहार करें, परिवार के सदस्य उसके साथ प्यार से बात करें, व्यक्तियों से यह अपेक्षा रखी। जबकि हक़ीकत यह है कि हमें यह व्यक्तियों से प्राप्त नहीं हो सकता। क्यों प्राप्त नहीं हो सकता? क्योंकि जैसे मेरी बैटरी डिस्चार्ज है और मुझे शांति चाहिये, प्रेम चाहिये, खुशी चाहिये, आनंद चाहिये, वैसे दूसरा व्यक्ति भी हमसे अपेक्षा रखता है कि हम उसे सुख दें, प्यार दें... क्योंकि उसकी बैटरी भी तो डिस्चार्ज है। अब एक डिस्चार्ज्ड बैटरी, दूसरी डिस्चार्ज्ड बैटरी को कैसे चार्ज करेगी? स्पष्ट है अपेक्षाएँ रखने से बैटरी चार्ज नहीं होती है। कहने को तो इन्सान कह देता है कि मुझे और कुछ नहीं चाहिये, बस यह व्यक्ति मेरे साथ शांति से रहे, सुख से जीये और जीने दे, प्रेम से बातें करे बस इतना ही तो हम चाहते हैं और क्या चाहते हैं? मनुष्य यही अपेक्षा रखता है लेकिन मात्र अपेक्षा रखने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इस दुनिया का **अनादि सिद्धांत है कि 'जो आप देंगे वही आपको मिलेगा।'** इसे निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है -

''एक बार मैं ट्रेन में सफर कर रही थी। मेरे सामने की सीट पर एक बहन बैठी थी। उसके दो बच्चे थे। एक तीन साल का था, एक पांच साल का। दोनों बच्चे एक

खिलौने से खेल रहे थे। अचानक दोनों में लड़ाई होने लगी क्योंकि दोनों को वही खिलौना चाहिये था। एक कहे कि मुझे चाहिये तो दूसरा भी कहे मुझे चाहिये, छीना-झपटी होने लगी। मां ने स्वाभाविक रीति से पांच साल वाले को कहा, बेटा तुम अपने छोटे भाई को दे दो। आप भी उसकी जगह पर होते तो शायद यही कहते कि छोटे को दे दो। उस पांच साल वाले बच्चे ने सवाल पूछा - क्यों ? क्यों मुझे ही देना चाहिये ? ये मुझे क्यों नहीं दे सकता ? उस मां ने स्वाभाविक रीति से कहा, 'बेटा तू बड़ा है। ये छोटा है इसलिए छोटे को दे दो'। वह पांच साल वाला बच्चा थोड़ी देर सोचकर अपनी मां से कहने लगा कि मैं तो हमेशा इससे बड़ा ही रहूंगा। यह तो कभी मुझसे बड़ा होने वाला ही नहीं है। क्या हर बार मुझे ही बलिदान देना पड़ेगा ? मुझे ही त्याग करना होगा ? अब उसकी माँ को क्या जवाब देना चाहिये ? 'हां' कहना चाहिये कि 'ना' कहना चाहिये ? अगर हां कहें तो बड़े बच्चे के साथ अन्याय हो जायेगा, क्योंकि बड़ा होना कोई गुनाह तो नहीं है। पहले का समय कुछ और था कि जब माता-पिता अपने बच्चों से जो कहते थे, तो बिना सवाल किये बच्चे वही करते थे। लेकिन अब बच्चों का आई.क्यू. (Intelligence Quotient) इस तर्क को स्वीकार नहीं करता ? वह मां मेरी तरफ देखकर कहने लगी कि कभी-कभी आज के बच्चे ऐसे सवाल कर देते हैं कि उनको क्या जवाब दें यह समझ में नहीं आता। वैसे मुझे भी ट्रेन में समय गुजारना था। मैंने उस बड़े बच्चे को बुलाया और पूछा - तुम्हें यह खिलौना चाहिये ? तो उसने कहा, हां चाहिये। मैंने कहा, देखो दो मिनिट के अन्दर तेरा भाई तुझे यह खिलौना दे देगा। वह अपने भाई को शायद अच्छी तरह जानता था तो उसने मुझे कहा कि वह नहीं देगा। मैंने कहा, अगर दे दिया तो ? उसे मेरी बात थोड़ी चुनौतीपूर्ण लगी। तो मेरे पास आकर कहने लगा, कैसे ? मैंने कहा, तब तक हम एक खेल करते हैं, क्योंकि दूसरा कोई खिलौना न मेरे पास था न उस माँ के पास था। मैंने कहा, हम अपना हाथ आपस में घिसेंगे और तुम उसको स्पर्श करना, यदि तुमने मिस किया तब हम तुमको करेंगे। उसने कहा, ठीक है। बड़ा बच्चा मेरे साथ खेलने लगा, लेकिन उसका ध्यान इस बात पर था कि उसका भाई खिलौना देता है या नहीं देता। दूसरी ओर वह छोटा बच्चा खिलौना अपने हाथों में जकड़ कर बैठा है, खेल नहीं रहा है। उसका ध्यान हमारी तरफ था कि हम क्या खेल रहे हैं ? आखिर उसको लगा कि बड़े भाई का खेल ज्यादा दिलचस्प है तो उसने अपने खिलौने को एक तरफ रख छोड़ा और मेरे पास आकर कहने लगा कि अब मैं उसके साथ भी यह खेल खेलूँ ! मैंने बड़े बच्चे को इशारा किया कि अब वह खिलौना ले लेवे। इस बात के लगभग एक साल के बाद उस मां के साथ फिर मेरी मुलाकात हो गई। मैंने स्वाभाविक रीति से उसे पूछा आपके बच्चे कैसे हैं ? तो वह कहने लगी कि उस दिन के

बाद उसके घर में लड़ाई ही समाप्त हो गई। क्यों, क्या बात हुई ? तो वह कहने लगी कि बड़े बच्चे ने एक ऐसी युक्ति (टेकनीक) सीख ली कि जब भी उनके बीच छीना-झपटी होती है, तो वह तुरन्त ही उसे दे देता है, और देने के बाद वह अपने कमरे में जाकर दूसरा कोई खिलौना लेकर आता है। यह देख वह छोटा उसके पास जाकर वह खिलौना लेने लगता। बड़ा दूसरा खिलौना उसे देकर पहले वाला खिलौना उठाकर चला जाता है। और इस तरह उस बच्चे ने यह सीख लिया कि जो मुझे चाहिये वह पहले मुझे देना होगा। उसने यह जीवन का उत्तम पाठ समझ लिया।''

कहने का भाव यह है कि यदि हम जीवन में कुदरत के इस सिद्धांत को समझ लें कि जो मुझे चाहिए वह मुझे देना होगा तो हम कभी अपेक्षा रखकर दुःखी नहीं होंगे। यदि मुझे प्रेम चाहिये तो पहले मुझे प्रेम देना होगा, मुझे अगर शांति चाहिये तो मुझे शांति देनी होगी। मुझे अगर किसी से सहयोग चाहिये तो पहले मुझे सहयोग देना होगा। देंगे तो मिलेगा। देना अर्थात् लेना। आपको जो चाहिये वह आप पहले देंगे तो आपको अवश्य मिल जाएगा। इस तरह से देखा गया कि अपेक्षा रखने से कुछ प्राप्त नहीं होता बल्कि देने से प्राप्त होता है। जब अपेक्षा रखने से प्राप्त नहीं हुआ तो मनुष्य ने दूसरा तरीका अपनाया...

2. कर्म करना।

आज मनुष्य धन कमाता है किसलिए? वह यही सोचता है कि धन होगा तो **सुख शांति** से जी सकेंगे। लेकिन यदि एक करोड़पति से पूछ लिया जाए कि धन की विपुलता से क्या जीवन में सुख-शांति आ गई? तो वह जवाब में यही कहेगा कि भगवान की दया से सबकुछ है लेकिन यही नहीं हैं। धन कमाया सुख-शांति के लिये, धन आ गया लेकिन सुख-शांति नहीं आई। कारण यह है कि आत्मा को गुणों व शक्तियों से सम्पन्न करने के लिये धन कोई माध्यम नहीं है। कई बार तो मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति को धन के पीछे भागने से और भी अधिक डिस्चार्ज कर देता है, और अधिक तनाव में आ जाता है।

कई लोग समाज सेवा करते हैं। अगर पूछा जाये कि समाज सेवा क्यों करते हैं? तो कहते हैं कि समाज सेवा करने से **आनंद** मिलता है। यदि उनसे पूछा जाए कि 'सचमुच आनंद मिला?' तब वे यही कहते हैं कि 'अरे आनंद कहां?' इस समाज सेवा करने में भी आजकल बहुत पोलिटिक्स (Politics) है। समाज सेवा इसलिये की कि आनंद मिले, लेकिन आनंद नहीं मिला।

कई लोग सत्संगों में जाते हैं। अगर उनसे पूछा जाये कि सत्संगों में क्यों जाते हो? तो यही कहते हैं - '**ज्ञान** प्राप्ति के लिये जाते है।' सत्संग सुनने के बाद देखा गया है कि घर में एक दूसरे के साथ कैसे रहना चाहिये यह भी समझ नहीं आता। तभी तो आज कल के बच्चे भी मां-बाप से कहते हैं - 'आप सतसंग में क्या सुनने गए थे? यही सुन कर आए हो क्या?' इस पर एक घटना याद आती है:

''एक कार्यक्रम था। कार्यक्रम शुरू होने में अभी समय था लोग आ रहे थे। इतने में फोन की घंटी बजी। दूसरी ओर एक बच्चे की आवाज़ थी। उसने पूछा – 'क्या ये ओम् शांति का आश्रम है?' हमने कहा - 'जी हाँ, यह ओम् शांति का आश्रम है।' उस बच्चे ने पूछा, 'दीदी आज वहां कोई कार्यक्रम है?' हमने कहा - 'जी हाँ।' तब वह बच्चा कहने लगा - 'दीदी, मेरे ममी-पप्पा वहां आए होंगे। आप उनको सिखाना कि घर में शांति से कैसे रहना चाहिये।' यह आज की समस्या है कि बच्चों को कहना पड़ रहा है कि हमारे मां-बाप को सिखाना कि घर में शांति से कैसे रहना चाहिये।''

इसी प्रकार कई लोग गंगा स्नान करने जाते हैं। अगर उनसे पूछा जाये कि गंगा स्नान क्यों करते हो? तब वे कहते हैं, '**आत्मशुद्धि** के लिये।' गंगा स्नान के बाद अगर उनसे पूछा जाये कि क्या आत्मशुद्धि हो गई? क्या इतना सहज तरीका है आत्म शुद्धि का? फिर तो सारे

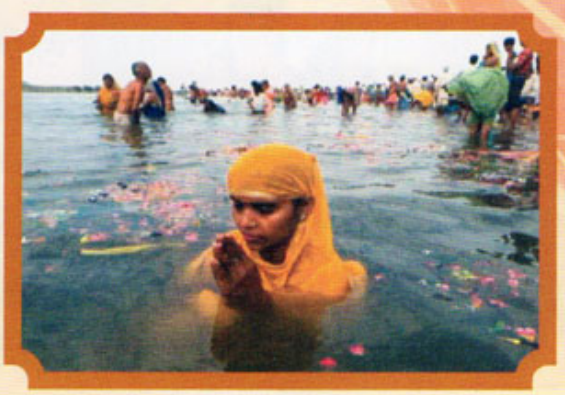

गुनाहगारों को ले जाकर गंगा स्नान करा देना चाहिये। उनको जेल में बंद ही क्यों रखें? ऐसे गंगा स्नान कर लेने से आत्मशुद्धि नहीं हो जाती।

कई लोग शादियों में जाते हैं, पार्टियों में जाते हैं। अगर उनसे पूछा जाये कि इन शादियों में क्यों जाते हो? पार्टियों में क्यों जाते हो? तो वे कहते हैं कि 'समाज में तो सबके साथ **प्यार-भरा सम्बन्ध** बनाकर रखने के लिये।' उनसे पूछो, 'क्या सम्बन्ध बना?' तो कहते हैं कि 'उनको खुश करने की कोशिश तो की परन्तु एक को खुश किया तो दो नाराज़ हो गये।' तो बना कहाँ, सब बिगड़ता ही जा रहा है। कहने का भाव यह है कि आत्मा में शक्ति भरने के लिए हमने जीवन में विभिन्न कर्म किये, परन्तु दिन-प्रतिदिन आत्मा खाली ही होती गई, तो तीसरा तरीका अपनाया...

3. भगवान को याद करना।

मनुष्य जब भी जीवन में बहुत हताश हो जाता है तब वह भगवान के द्वार पर जाकर यही आश रखकर प्रार्थना करता है - 'हे प्रभु, शांति दो! हे प्रभु, सुख दो! हे प्रभु, तू प्यार का सागर है! तेरी एक बूंद के प्यासे हम। हे प्रभु, हम निर्बलों को बल दो! हम शक्तिहीनों को शक्ति दो!' इस तरह रोज़ भगवान से यही सात गुणों की मांग करते हैं। सोचते हैं कि भगवान ही इन गुणों का स्त्रोत है उनसे मांगने से मिल जायेगा। परन्तु क्या रोज़-रोज़ मांगने से प्राप्त हो जाएगा? लेकिन यह कोई ऐसी चीज़ थोड़े ही है कि ऊपर वाले ने ऊपर से फेंक दी और हमें मिल गई। कहा जाता है 'बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न भीख।' भगवान से भी यदि रोज़ मांगते रहेंगे तो क्या मिल जाएगा? और जब ऐसा नहीं होता तब व्यक्ति के जीवन में बहुत निराशा आती है। कई बार कई लोग इसलिए हताश और निराश हो जाते हैं कि सम्बन्धों से प्राप्ति नहीं हुई। कर्म करने से भी नहीं मिला। भगवान से मांगने पर नहीं मिला। और तब सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि अब क्या किया जाए?
डिप्रेशन में आकर कुछ लोग चौथा तरीका अपना लेते हैं...

4. जीवघात कर लेना।

कई लोग डिप्रेशन में आकर जीवघात कर लेते हैं। उनके मर जाने के बाद चिट्ठी प्राप्त होती है कि जीवन में बहुत टेन्शन हो गया था कहीं शांति नहीं थी इसलिये हम अपने जीवन का अन्त कर रहे हैं। एक बार एक मानव बम (Human bomb) डिफ्यूज (difuse) हो गया। लोगों ने उसको पकड़ लिया और उससे पूछा कि तुम मरना क्यों

चाहते थे? इतने लोगों को क्यों मारना चाहते थे? तब उसने कहा कि बचपन से लेकर आज तक किसी ने मेरे साथ प्यार से बात तक नहीं की। क्या यह भी कोई जीवन है? इससे तो मर जाना ही अच्छा है। आखिरकार इन्सान को क्या चाहिये? उसे जीवन के अन्दर प्रेम चाहिये, शांति चाहिये, सुख चाहिये, आनंद चाहिये, खुशी चाहिये, यही तो चाहिये! और जब वही नहीं मिलता तो व्यक्ति अपने जीवन का अन्त करने को भी तैयार हो जाता है। जब उसको पूछा जाए कि क्या आत्महत्या करने के बाद यह सब कुछ मिल जाएगा? आत्महत्या करने के बाद तो आत्मा बहुत ही कमज़ोर हो जाती है, आत्मा भटकती रहती है। कहने का भाव यह है मनुष्य ऐसा श्रेष्ठ जीवन जीना चाहता है, जहाँ सातों गुणों से जीवन भरपूर और सम्पन्न हो। कई लोग जब स्वयं को नहीं मार पाते तो पांचवां तरीका अपना लेते...

5. दूसरों को मारना

जब मानव बहुत हताश और निराश होकर डिप्रेशन का शिकार बन जाता है तो वह **दूसरों को मारने लग जाता है**। आज दुनिया में आतंकवाद इतना क्यों बढ़ता जा रहा है? वह सोचता है दूसरों को मारो क्योंकि वही दु:ख-अशांति की जड़ हैं और इसी को ही धर्मयुद्ध का नाम दे दिया जाता है। वे सोचते हैं कि दूसरों को मारने से ही शायद संसार के अन्दर सुख-शांति हो जाएगी, लेकिन क्या दूसरों को खत्म करने से शांति प्राप्त होगी? क्या यह सही तरीका है? नहीं, ये भी सही तरीका नहीं है।

अब सवाल उठता है कि स्वयं को सर्व गुणों व शक्तियों से सम्पन्न कर आत्मा की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने की विधि कौन-सी है? जीवन के सफर में हम अपनी वास्तविकता से बहुत दूर चले जाते हैं इसलिए जीवन में कमज़ोरियां आ जाती हैं। अब पुनः हमें अपनी वास्तविकता की तरफ जाना है, इसके लिए हमें एक यात्रा करनी है, यह

यात्रा कोई बाह्य जगत में नहीं करनी है, यह मन के द्वारा अंतर्जगत की यात्रा है जो हमें अपने वास्तविक स्वरूप की ओर अपने भीतर ले जाती है। हमारा अनादि सतोगुणी स्वरूप बहुत ही शक्तिशाली है। जितना हम आत्मभाव (आत्मा के सात गुणों) में मन को स्थित करते जायेंगे उतनी उन गुणों की ऊर्जा को अपने अंदर विकसित करते जाएंगे। सतोगुण की यह ऊर्जा व्यक्ति के चारों ओर एक प्रभामण्डल (Aura) तैयार करती है, जो नकारात्मक ऊर्जा और नकारात्मक वातावरण से सुरक्षित रखने के लिए एक कवच अथवा छत्रछाया का काम करता है।

कई बार लोगों के मन में यह सवाल पैदा होता है कि आखिर इन सातों गुणों को विकसित करने से हमारे वर्तमान जीवन में क्या फायदा होगा? क्या प्राप्ति होगी?

इन सात गुणों से जब हम अपनी आत्मा को सम्पन्न कर लेते हैं तो हमारे जीवन में तीन बहुत बड़े फायदे होते हैं:-

1. हम परिस्थिति को बदल सकते हैं।
2. हम लोगों की मनोवृत्ति को बदल सकते हैं।
3. हम अपने आस-पास के पूरे वातावरण को बदल सकते हैं, किंतु कैसे?

आज दुनिया में जितनी भी महान् हस्तियां हुई हैं, उनकी महानता का आधार यही सात गुण ही तो थे! इन सातों गुणों से उन्होंने अपनी आत्मा को सर्व शक्तियों से सम्पन्न किया था। चाहे स्वामी विवेकानंद हों, महात्मा बुद्ध हों, महावीर स्वामी हों या मदर टेरेसा हो। हमने इस ईश्वरीय विश्वविद्यालय की मुख्य प्रशासिका दादी प्रकाशमणि जी की अद्भुत विलक्षण प्रतिभा को देखा है। उन्होंने अपने अंदर इन सातों गुणों को मन, वचन और कर्म में प्रत्यक्ष कर दिखाया था। उन्होंने इस दुनिया में अनेकों के जीवन को प्रभावित किया और कितने ही लोगों के जीवन में उनके माध्यम से परिवर्तन हुआ।

"इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द के जीवन की एक बात याद आती है। जब वो अमेरिका चले गए, वहां लोगों ने श्रीमद्भगवद्गीता का अपमान करना चाहा। गीता को सबसे नीचे रखकर बाकी धर्म-पुस्तकों को उसके ऊपर रख दिया, सबसे ऊपर बाईबल को रखकर, भरी सभा में यह कहकर हँसी उड़ाई गई कि आपकी गीता आउट डेटेड (outdated) *हो गई है और आज के समय में हमारी बाईबल सबसे ऊपर है। उस वक्त आज के समय का कोई क्षीण आत्म शक्ति* (discharged battery) *वाला व्यक्ति होता तो*

उसकी प्रतिक्रिया क्या होती ? वह शायद लड़ाई-झगड़ा शुरू कर देता, गाली-गलौच करता, मार-पीट करने लगता, शायद वहां की चीज़ों को उठाके तोड़-फोड़ करने लगता और दुनिया के सभी समाचार पत्रों में या टी.वी न्यूज़ चैनलों में यह ब्रेकिंग न्यूज़ आती कि श्रीमद्‌भगवत गीता का अपमान किया गया और उसका प्रभाव दुनिया भर में बहुत भयानक हो सकता था। संभव है कि कई निर्दोष लोग मारे जाते और शायद कितनी धर्म पुस्तकों की होलिका जलती या बदले में कितने धर्म स्थलों को जलाया गया होता ! यह प्रतिक्रिया दुर्बल आत्मा वालों की होती। परन्तु स्वामी विवेकानंद इन सातों गुणों से सम्पन्न थे, उन्होंने मुस्कराकर कहा कि 'आपने जो गीता का सम्मान किया उसका धन्यवाद कैसे करूं ? 'लोग हंसने लगे कि इस व्यक्ति को देखो इतनी भी समझ नहीं है कि हमने अपमान किया या सम्मान किया ! स्वामी विवेकानंद आगे बढ़े और उन्होंने नीचे से गीता को खींचा तो सारे शास्त्र नीचे गिर गये तब स्वामी विवेकानंद ने कहा 'आपने तो गीता को नीचे रखकर सारे धर्मो का आधार स्तम्भ बना दिया। आज अगर गीता न हो तो दुनिया का कोई धर्म टिक नहीं सकता। ' वे लोग शर्मिंदगी महसूस करने लगे और मौन होकर शर्म से आँखे झुका लीं। इस उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि जब स्वामी विवेकानंद ने अपनी आत्मा को सातों गुणों से सम्पन्न किया तो वे परिस्थिति के शिकार नहीं हुए लेकिन परिस्थिति को ही बदल डाला। वहां खड़े लोगों की मनोवृत्ति को परिवर्तित कर दिया और पूरे वातावरण में परिवर्तन आ गया जिससे लोगों की गीता के प्रति भावना बदल गयी और आज जितनी भाषाओं में गीता का अनुवाद हुआ है उतना किसी अन्य पुस्तक का नहीं हुआ है। इससे लोगों ने गीता को समझना चाहा। अतः अपने अंदर सातों गुणों को भरने से तीनों फायदे अनुभव कर सकते हैं।"

इसी प्रकार महावीर स्वामी जी ने भी अपनी आत्मा को सातों गुणों से सम्पन्न किया था, उनके जीवन की अनेक बातें भी हमारे सामने उदाहरण के रूप में मौजूद हैं। जब वो जंगल में तपस्या करते थे, तो सारे वातावरण को सतोगुणी ऊर्जा से प्रकंपित कर देते थे कि उस वातावरण में हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसक

प्रकृति छोड़ कर अहिंसक हो जाते थे मानों वे सारे वातावरण को ऊर्जायुक्त कर देते थे।

''ऐसे ही जब महात्मा बुद्ध एक जंगल से गुजर रहे थे तब कुछ लोगों ने उन्हें सावधान किया कि, 'इस जंगल से मत जाना, वहाँ अंगुलीमाल नामक डाकू रहता है। वो हरेक को मार करके उनकी अंगुलियां काट-काट कर उनका हार बनाकर पहनता है।' महात्मा बुद्ध निर्भय होकर चलते रहे। जब अंगुलीमाल नाम का डाकू सामने आ गया तो उसके साथ इतना प्यार भरा व्यवहार किया कि वो डाकू भी उनके चरणों में झुक गया। उसने अपनी हिंसक प्रवृत्ति छोड़ दी और उसकी मनोवृत्ति बदल गई। वह महात्मा बुद्ध का शिष्य बनकर चलने लगा।''

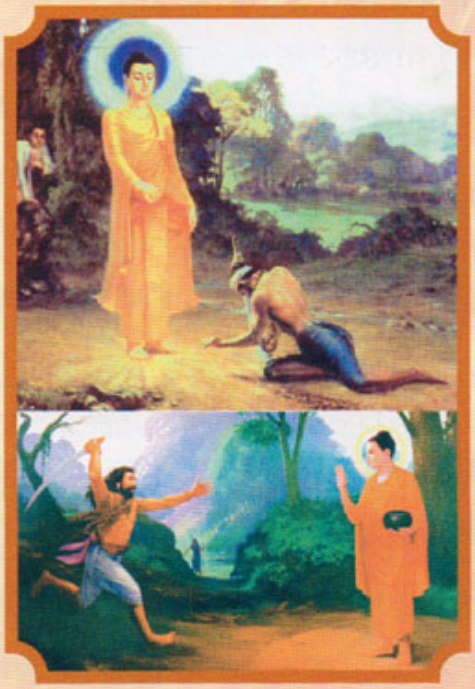

इसी तरह तो ब्रह्मा बाबा या दादी प्रकाशमणि जी ने अपने जीवन से कितनी ही आत्माओं के जीवन में चमत्कारी परिवर्तन कर दिखाया और आज वे अनेकों के लिए आदर्श उदाहरण बन गये।

तो सातों गुणों से सम्पन्न भरपूर और शक्तिशाली आत्मा कैसी भी विकराल परिस्थिति को बदल सकती है, लोगों की मनोवृत्ति को बदल सकती हैं, वातावरण को बदल सकती है और उनके जीवन में ऐसा प्रभाव डाल सकती है जिससे जीवन में भी महान परिवर्तन आ जाता है। आज हर इन्सान यही तीन बातें चाहता है कि परिस्थिति हमारे अनुकूल हो, लोग हमारे हिसाब से चलें और वातावरण को हम अपने अनुरूप बनाएं। कई बार माँ-बाप की यही शिकायत होती है - हमारे बच्चे हमारे कन्ट्रोल में नहीं हैं। उनकी मनोवृत्ति को ठीक कैसे करें? उसका उत्तर यही है कि आप अपनी

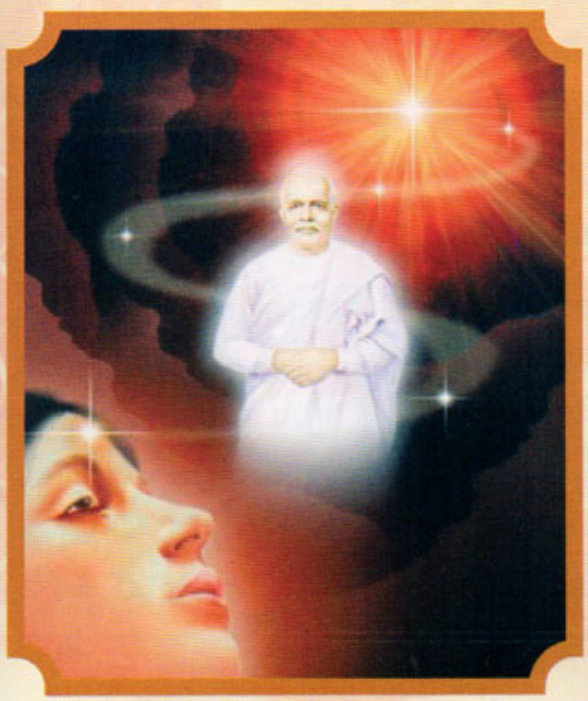

आत्मा को भरपूर कर लो तो बाकी सब ठीक होता जाएगा। यदि **'स्व' को बदलोगे तो विश्व बदलेगा।** हम यदि अपने आप को परिवर्तित करते हैं तो दुनिया अपने आप परिवर्तित होने लगती है।

आत्मा के गुणों का स्वास्थ्य पर प्रभाव

आत्मा के सातों गुणों का हमारे स्वास्थ्य पर प्रभाव इस प्रकार पड़ता है:

1. ज्ञान का सम्बन्ध हमारे स्नायु तंत्र (nervous system) के साथ है। स्नायु तंत्र ही सारे शरीर में संदेश पहुंचाने का कार्य करता है। आध्यात्मिक ज्ञान हमारे स्नायुतंत्र को सही हालत में रखने में सहायक है। इसीलिए ज्ञानी व्यक्ति के लिए कहा जाता है कि इसकी नस-नस में ज्ञान बह रहा है।

2. पवित्रता का संबंध हमारी पांचों कर्मेन्द्रियों के साथ है। जब व्यक्ति कर्मेन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है अथवा देह के विषयों के प्रति उसमें आसक्ति पैदा होती है तो वह उसे शक्तिहीन बना देती है। जैसे कभी बहुत ज्यादा कम्प्यूटर या टी.वी की लत हो तो अधिक समय सामने बैठे रहने से आंखें खराब हो जाती हैं। कहीं मोबाइल पर बहुत ज्यादा बातें करने से कान खराब हो रहे हैं और ध्वनि तरंगे मस्तिष्क पर भी असर डालती हैं या कहीं जिह्वा में खाने की आसक्ति है तो हमारा पेट खराब हो जाता है, व्यसनों की आसक्ति है तो कई प्रकार के कैन्सर तक हो जाते हैं। पवित्रता हमें वह शक्ति देती है जिससे हमारी पांचों कर्मेन्द्रियां संयमित हो जाती हैं। तभी कहा जाता है कि जहां पर आसक्ति है वहीं से बीमारी भी पैदा होती है।

3. प्रेम का सम्बन्ध हमारे हृदय (Heart) से है। आज दुनिया के अन्दर हृदयरोग (heart attack) बढ़ता ही जा रहा है। भारत में भी दिल के दौरों की संख्या बढ़ती जा रही है। हृदयरोग के मरीज क्यों बढ़ते जा रहे हैं? क्योंकि जहां विश्वास हो, प्यार हो और वहीं से धोखा मिले तब दिल में दर्द होता है और यह दर्द हृदय की नलियों में ज़ख्म करता है, जैसे शरीर पर कहीं घाव हो और उस घाव पर मैल आदि जमा होनी शुरू हो जाती है, उसी प्रकार हृदय की नलियों में कोलेस्ट्रॉल (cholesterol) जमा होना शुरू हो जाता है जिसे ब्लॉकेज (blockage) कहा जाता है। इसीलिए डॉक्टर मरीज़ के रिश्तेदारों को यही सलाह देते हैं कि कोई ऐसी बात नहीं करना जिससे रोगी को कोई सदमा लगे। जितना यह खुश रहेगा और जितना उसे सबका प्यार मिलेगा उतना ही जल्दी वह ठीक हो जाएगा। स्पष्ट है कि मनुष्य को प्रेम इसीलिये चाहिये कि उसका हृदय ठीक तरीके से काम करता रहे।

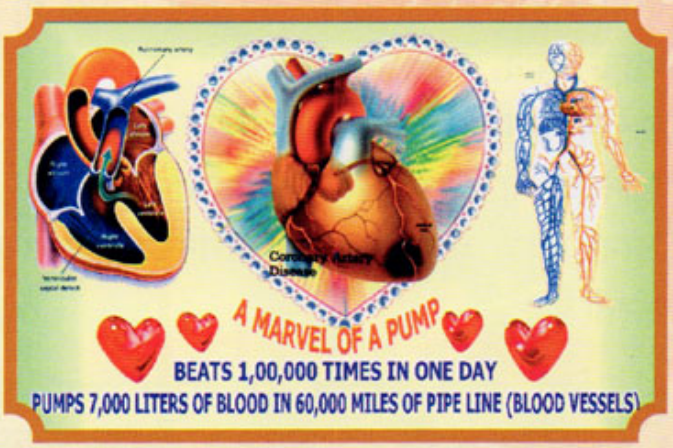

4. शांति का सम्बन्ध श्वास प्रणाली (respiratory system) के साथ है। शांति की अवस्था में श्वासों की गति ठीक रहती है, अन्यथा उसके लिए मनुष्य को प्राणायाम करना पड़ता है। मानव जब अपने अनादि शांत स्वरूप में होता है तब उसके श्वासों की गति सामान्य और संतुलित रहती है। जब वह तनाव में होता है तब यह श्वास की गति अनियमित हो जाती है, कभी तेज़ कभी धीमी होती है। इसीलिये श्वास प्रणाली को संतुलित रखने के लिए शांति चाहिये।

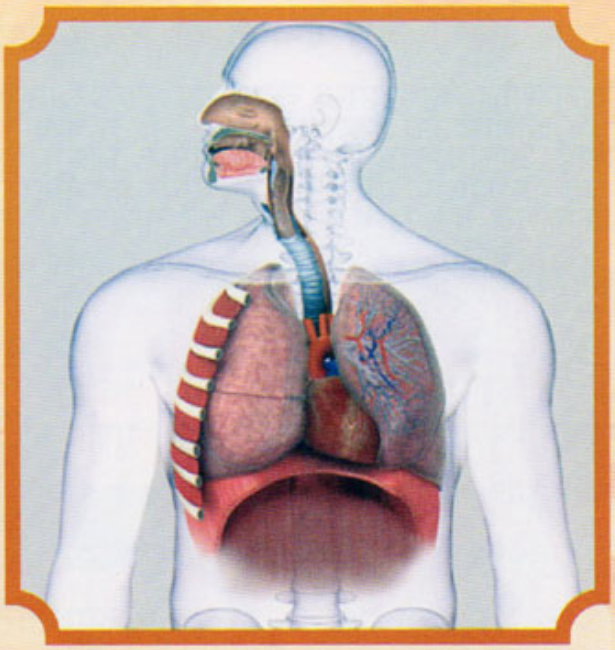

5. सुख का सम्बन्ध हमारे पाचन तन्त्र (Digestive System) से है। आज व्यक्ति जब खाना खाने बैठा हो और उसी समय कोई दु:खद समाचार मिलता है तो कोई भी चीज़ खाने की इच्छा नहीं होगी। अरुचि हो जाती है। उसके बाद भी उसने खा लिया तो कहीं

एसिडिटी हो जाती है या कहीं बदहज़मी हो जाती है, क्योंकि पाचनक्रिया ठीक नहीं होती। तभी तो व्यक्ति खाना खाने बैठा हो और उसी समय कोई कलह-क्लेश मचा रहा हो तो यही कहते 'अरे भाई, सुख से खाने तो दो!' क्योंकि जब सुख की स्थिति में व्यक्ति खाना खाता है तब उसकी पाचन शक्ति ठीक कार्य करती हैं।

6. इसी तरह **आनंद** का संबंध हमारे हार्मोन्स (अंत:स्रावी ग्रंथियों) के साथ है। जीवन में आनंद न होने के कारण हमारे हार्मोन्स असंतुलित हो जाते हैं। जिस घर में खुशी आनंद का वातावरण और माहौल होता है और घर के लोग खुश रहने लगते हैं उस घर के लोगों का स्वास्थ्य भी ठीक रहने लगता है। यह बात अनेक अध्ययनों से सिद्ध हो चुकी है।

7. इसी तरह **शक्ति** का संबंध हमारी मांसपेशियों (muscles) के साथ है। आज व्यक्ति रोज व्यायाम, करके शारीरिक रूप से सुडौल बनने का प्रयास करता है। लेकिन यदि कोई उसका मनोबल (विल-पावर) तोड़ देता है तो उसके बाद उसमें छोटी से छोटी परिस्थिति का सामना करने की ताकत नहीं रहती। परन्तु समय पर कोई उत्साहवर्धक शब्द कहकर किसी का मनोबल जगा दे तो असम्भव को सम्भव करने की ताकत भी उसमें आ जाती हैं। जैसे शास्त्रों में हनुमान का उदाहरण है।

स्पष्ट है कि आत्मा के सातों गुणों का हमारे स्वास्थ्य के साथ सीधा और बहुत गहरा संबंध है। हमें इसीलिये इन सातों गुणों की आवश्यकता है। आज संसार के अन्दर दिन-प्रतिदिन बीमारियां बढ़ती जा रही हैं और ज्यों-ज्यों दवाई की त्यों-त्यों रोग बढ़ता ही जा रहा है। कारण क्या? कारण यही है कि इन सात गुणों से आत्मा की ऊर्जा क्षीण (बैटरी डिस्चार्ज) होती गई है। वास्तव में आध्यात्मिकता इन सातों गुणों से ऊर्जावान की विधि है। तभी तो कहा जाता है योग से दीर्घ आयुष्य और काया कंचन एवं नीरोग रहती है। राजयोग जीवन जीने की कला सिखाता है कि कैसे यह ऊर्जा पुनः प्राप्त हो? भारत में देवी-देवताओं को सदा निरोगी काया या कंचन काया वाले दिखाते हैं। हमने कभी किसी कथा में यह नहीं सुना कि देवताओं को किसी हॉस्पिटल में भरती कराया गया और

उनकी कोई शल्यक्रिया की गयी, क्योंकि उनकी आत्मा सातों गुणों से भरपूर थी और उनका जीवन सातों गुणों से महकता था।

आत्मा की सूक्ष्म शक्तियां

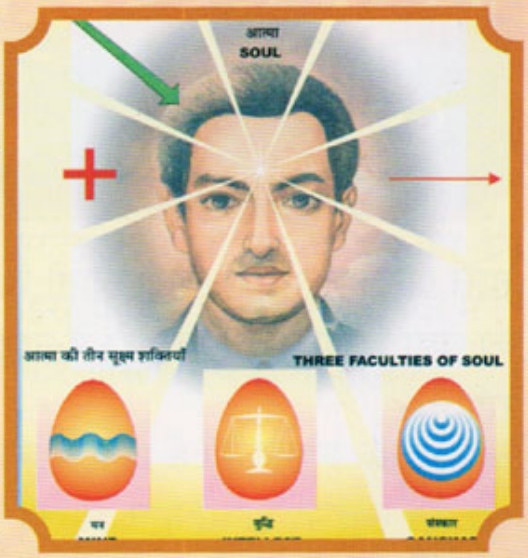

जिस प्रकार शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति ऊपर वर्णित पाँच तत्वों के माध्यम से होती है, उसी प्रकार आत्मा अपने सात गुणों का अनुभव तीन शक्तियों के माध्यम से कर सकती है। आत्मा की तीन सूक्ष्म शक्तियां है मन, बुद्धि और संस्कार, जो आत्मा के साथ शरीर में प्रविष्ट होती हैं और शरीर छोड़ने पर आत्मा के साथ चली जाती हैं।

आत्मा की सोचने की शक्ति को मन कहते हैं, उन विचारों को बुद्धि द्वारा आत्मा समझती है और जब वे विचार कर्म - व्यवहार में आते हैं तो वे कर्म आत्मा पर अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं जिसे संस्कार कहते हैं।

1. मन

मन में ही विचार करने की क्षमता है, इच्छा शक्ति है, कल्पना करने की शक्ति है, महसूस करने की क्षमता है... जब इन्हीं क्षमताओं को मनुष्य समझ नहीं पाया, तो वह उसके अधीन हो गया। तब मनुष्य ने कह दिया कि मन तो चंचल घोड़ा है जो अनेक दिशाओं में भागता रहता है या मन तो एक चंचल बच्चे जैसा है। जब लोगों का मन वश में नहीं हुआ तो कह दिया कि मन बड़ा दुष्ट है, पापी है, नीच है। लेकिन मन का एक दूसरा पहलू भी है कि मन बड़ा सुंदर है। मन की क्षमता को अगर समझा जाए, अगर उसकी वास्तविकता को जानकर उसे यथार्थ दिशा में लगा दिया जाए तो यह मन लौकिक अथवा अलौकिक बड़ी से बड़ी प्राप्ति कर सकता है। तभी किसी ने सही

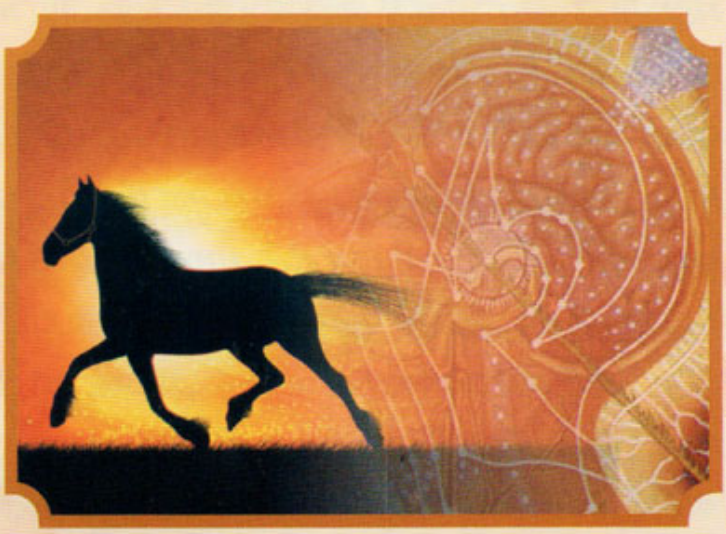

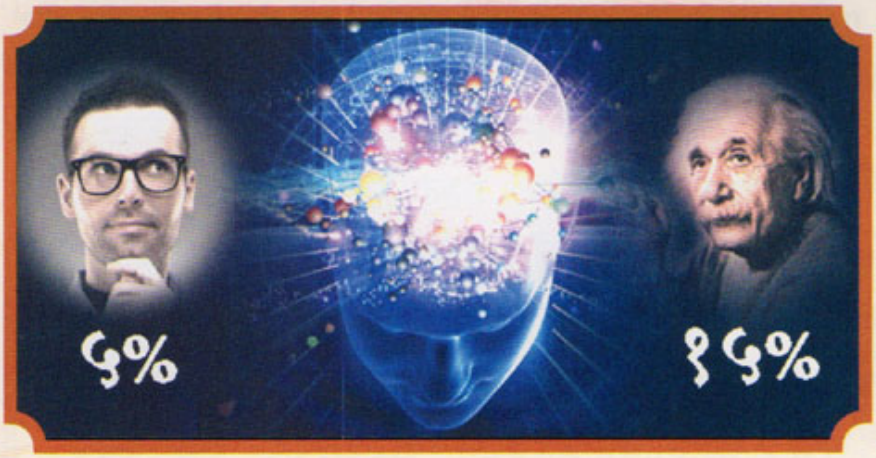

कहा है कि आज मनुष्य अपने मन की क्षमताओं का सिर्फ पाँच प्रतिशत उपयोग करता है और प्रखर बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन की क्षमताओं का सिर्फ पंद्रह प्रतिशत उपयोग करता है बाकी सारी क्षमता व्यर्थ ही चली जाती है। उसका कारण है कि आज मनुष्य के मन की ऊर्जा का बड़ा हिस्सा व्यर्थ विचारों में नष्ट हो जाता है। इस संदर्भ में मुझे एक कहानी याद आ रही है:-

''एक सम्राट था। वह बहुत अशांत और परेशान रहता था। कभी-कभी रात भर उसे नींद नहीं आती थी। एक बार उसके राज्य में एक महात्माजी पधारे। महात्माजी बड़े सिद्ध पुरुष थे। वह कैसे भी परेशान मन वाले व्यक्ति को परेशानी से मुक्त कर सकते थे। जब सम्राट ने यह बात सुनी तो उसे लगा कि मुझे महात्माजी से जाकर मिलना चाहिए। वह महात्माजी के पास गया और उसने महात्माजी से कहा कि 'मेरा मन बहुत परेशान रहता है, रात भर मुझे नींद नहीं आती, कृपया मेरे मन को शांत कीजिए।' महात्मा ने कहा 'ठीक है लेकिन उसके लिए आप कल सुबह चार बजे आइये।' सम्राट ने कहा 'ठीक है' और वह वहां से जाने लगा तो महात्माजी ने कहा 'एक बात याद रहे कल सुबह जब आप चार बजे आओ तब अपने मन को साथ लेकर आना।' सम्राट ने कहा 'ठीक है' और वहां से जाने लगा। लेकिन मन में अनेक प्रश्न थे कि महात्माजी कल सुबह शांत कर सकते हैं तो अभी कर देते, एक रात फिर मेरी परेशानी में जायेगी और पता नहीं महात्माजी मेरे मन को शांत कर पायेंगे या नहीं, फिर सम्राट ने सोचा कि महात्माजी ने कहा अपने मन को साथ ले आना – अब मन को कैसे साथ लाना होगा यह तो बताया ही नहीं...ऐसे अनेक विचार चलते रहे और रात भर उसे नींद नहीं आई। सम्राट सुबह चार बजे महात्मा के पास पहुंच गया तो देखा महात्मा आसन लगाकर बैठे हैं और पास में एक डंडा है। सम्राट को देखकर महात्माजी ने कहा, 'आइये, आसन ग्रहण कीजिए।' सम्राट सामने बैठ गये तो महात्माजी ने सबसे पहले उनसे पूछा - 'क्या आप अपने मन को साथ लाए हो?' सम्राट ने कहा 'महात्माजी यही बात तो मैं समझ नहीं पाया कि मन को कैसे

साथ लाना होता है,' लेकिन सम्राट ने कहा 'अगर मै आया हूँ तो मन आया ही होगा क्योंकि मन बाहर नहीं भीतर है ना ?' महात्माजी ने कहा 'ठीक समझा है अब आंखे बंद करो और ढूंढो अपने मन को कि वह कहां है और इस वक़्त क्या कर रहा है ?' सम्राट ने आंखे बंद की और ढूंढ़ने लगे अपने मन को कि कहां है और क्या कर रहा है। काफी समय के बाद सम्राट को एहसास हुआ कि जिसे वह ढूंढ रहा है वह कोई चीज का नाम नहीं है वह एक क्रिया का नाम है और वह है सोचने की क्रिया जैसे ही वह ढूंढ़ने लगा तो देखा कि विचार शांत हो गए है तब सम्राट ने मन की शांति का अनुभव किया।''

कहानी का भाव यही है कि आज हमारा मन परेशान इसलिए होता है क्योंकि हम मन के विषय में जानते ही नहीं हैं। आज हमारी जीवन शैली इस प्रकार की बन गई है कि मन किस दिशा में चल रहा है यह महसूस करने के लिए हमारे पास समय ही नहीं हैं।

हमारा मन निरंतर सोचता रहता है, किसी मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि मनुष्य अगर कम से कम गति से सोचे तब भी उसके मन में 25 से 30 विचार एक मिनट में चलते हैं तो एक दिन में तो असंख्य विचार मन के अन्दर चलते हैं। यदि हम एक दिन के विचारों को ही देखें तो पाएंगे कि हमारे अन्दर **चार प्रकार के विचार** चलते हैं जो निम्नलिखित हैं:

विचारों के प्रकार और उनका प्रभाव

1. सकारात्मक विचार (Positive Thoughts) - सकारात्मक विचार से समर्थ संकल्प होते हैं जिनमें शुभ भावना और शुभ कामना समाई हुई हो, कोई स्वार्थ या बुराई न हो। शुभ-भावना के संकल्प में बहुत शक्ति है। आत्मा का एक-एक शुभ संकल्प वायुमंडल की सृष्टि रचता है इसीलिए संकल्प से सृष्टि कहा जाता है। शुभ-भावना के संकल्प से सभी उमंग-उत्साह में आ जाते हैं।

2. नकारात्मक विचार (Negative Thoughts) - जो किसी न किसी बुराई, कमज़ोरी या विकृत मानसिकता वाले विचार होते हैं, जो स्वार्थयुक्त होते हैं उन्हें नकारात्मक विचार कहते हैं। इसके अलावा हीनता की भावना के आधार पर भी विचार चलते हैं। ऐसे सब विचार नेगेटिव अर्थात् नकारात्मक विचार हैं।

3. आवश्यक विचार (Necessary Thoughts) - आवश्यक विचार हमारी दिनचर्या से सम्बन्धित होते हैं। जैसे आज यहां जाना है, इसको मिलना है, इतने कार्य करने हैं, इतने कराने हैं, ये आवश्यक विचार हैं।

4. व्यर्थ विचार (Waste Thoughts) - व्यर्थ विचार चलने का कारण है व्यर्थ दुख लेना, सुनी हुई बात न चाहते भी मन में चलती है या बीती हुई घटनाओं की स्मृति आती है कि यह क्यों कहा, यह ठीक नहीं कहा, यह नहीं होना चाहिए, ऐसे सोचना नहीं चाहिए था, ऐसे बोलना नहीं चाहिए था, करना नहीं चाहिए था; ऐसा करते तो अच्छा होता; यह कहते तो अच्छा होता; आदि-आदि सोच कर मन को भारी बना लेते हैं। लेकिन अब तो जो होना था सो हो गया ना! उस पर विचार करके कोई फायदा नहीं हो सकता। वर्तमान के बारे में नहीं सोचते, बल्कि उन्हीं बीती हुई बातों की जुगाली करते रहते हैं। चूँकि इनसे समय और शक्ति की बर्बादी होती है इसीलिये इन्हें व्यर्थ विचार कहते हैं। विशेषज्ञों के विश्लेषण के अनुसार विश्व के 80% विचार भूतकाल की घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं और 15% विचार हमारे भविष्य की चिंताओं को लिए होते हैं तो वर्तमान में हम कितना जीते हैं? वर्तमान हमारे लिए बहुमूल्य सौगात (Gift) है इसका भरपूर सदुपयोग होना चाहिए।

भूतकाल की घटनाओं में उलझ कर उसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिए क्योंकि वर्तमान क्षण भी ईश्वर की दी हुई गिफ्ट अथवा सौगात है, परन्तु इस ईश्वरीय सौगात का हमने मूल्य रखा है मात्र पांच प्रतिशत। इसलिए संसार में दुःख बढ़ गया है, क्योंकि हमने उस ईश्वरीय सौगात का महत्व समझा नहीं है, उसका उपयोग नहीं किया है। अगर मन में व्यर्थ विचार चलते हैं तो सकारात्मक विचार ठहर नहीं सकते। व्यर्थ विचार व्यक्ति के उमंग-उत्साह को समाप्त करते हैं। वह सदा क्यों, क्या की उलझन में रहता है। इसलिए छोटी-छोटी बातों में स्वयं से दिलशिकस्त हो जाता है।

इस प्रकार सारे दिन में हमारे मन में चार प्रकार के विचार चलते हैं — सकारात्मक विचार, नकारात्मक विचार, आवश्यक विचार और व्यर्थ विचार।

इस तनाव के युग में हम यदि विश्लेषण करें कि हमारे मन में अधिकतर विचार किस प्रकार के हैं? तो महसूस होता है कि ज्यादातर व्यर्थ विचार ही चलते हैं, और दूसरे नंबर पर नकारात्मक विचार ज्यादा चलते हैं। आवश्यक विचारों में भी स्वार्थ अधिक

होता है तो वे भी नकारात्मक हो जाते हैं और सकारात्मक विचार तो बहुत कम चलते हैं या ना के बराबर ही होते हैं। आज मनुष्य भगवान को भी याद करते तो वह भी स्वार्थयुक्त याद होती है अर्थात् वह भी नकारात्मक ही हो जाती है। कभी-कभी तो भगवान के साथ मनुष्य सौदेबाज़ी करने लगता है, परमात्मा के सम्बन्ध में भी वह एक सौदा करता है। कहता है: 'हे प्रभु, मेरा इतना काम हो जाए, तो दो नारियल चढ़ाऊंगा।' तो यह सौदा हुआ ना? इस काम का भाव दो नारियल है। अगर भगवान कर दे तो उनको मिल जाएंगे और अगर नहीं किया तो? नहीं मिलेगा। कोई बड़ा काम होगा तो हम कहेंगे 101 रुपया चढ़ावा चढ़ा देंगे अथवा 501 रुपया चढ़ावा चढ़ा देंगे। अगर भगवान की याद में सकारात्मक भाव नहीं तो मनुष्यों के प्रति तो क्या भाव होगा? कहा जाता है कि **जैसा चिंतन, वैसा जीवन। जैसा सोचोगे, वैसा बनोगे।** कहने का भाव है कि अगर हमारे चिंतन की क्वालिटी वेस्ट (व्यर्थ) या नेगेटिव (नकारात्मक) अधिक है तो जीवन

की क्वालिटी क्या होगी? क्या नकारात्मक या व्यर्थ सोचने के बाद हमारे जीवन में सुख, शांति या आनंद का अनुभव होगा? क्या आत्मा सतोगुण से शक्तिशाली होगी? इसका मतलब कि अगर मुझे अपनी आत्मा को सतोगुण - सुख, शांति, आनंद, प्रेम या शक्ति से सशक्त बनाना है तो मुझे सकारात्मक सोचना होगा। फिर जैसे विचार, वैसा उसका व्यवहार होता है। इस बात पर एक दृष्टांत याद आता है:

"एक बार एक राजा था और उसका एक मित्र था जो लकड़ी का बड़ा व्यापारी था। दोनों की बहुत गहरी मित्रता थी। एक दिन वह लकड़ी का व्यापारी अपना लकड़ी का स्टॉक देख रहा था तब उसकी नज़र चंदन की लकड़ी पर पड़ी और उसने देखा कि बहुत सारी चंदन की लकड़ियां हैं। तब उसका व्यापारी दिमाग हिसाब लगाने लगा कि चंदन की लकड़ी तो बहुत मंहगी है और कौन खरीदेगा इन लकड़ियों को? उसने हिसाब लगाया कि उसकी कितनी पूंजी इसमें अटकी हुई है। अब उसका व्यापारी दिमाग सोचने लगा कि इस पूंजी को कैसे निकाला जाए। उसके लिए कौन इतनी चंदन की लकड़ियों को

खरीदेगा ? व्यापारी सोचता रहा। ऐसे समय में जब मनुष्य लोभ वश सोचता है तो अपना विवेक खो देता है और उसके मन का घोड़ा अक्सर नकारात्मक दिशा में दौड़ने लगता है। उसका वहां के राजा के साथ घनिष्ठ संबंध था। इसलिए उसके मन में राजा का ख्याल सबसे पहले आया और वह सोचने लगा कि अगर राजा मर जाए तो उसको जलाने के लिए तो चंदन की लकड़ियों का ही प्रयोग होगा और तब मेरी यह पूंजी निकल आयेगी। लोभ में वह ये भी भूल गया कि राजा उसका मित्र है। फिर वह सोचने लगा कि राजा मरे तो कैसे मरे ? क्योंकि राजा कोई बुजुर्ग तो है नहीं जो इतनी जल्दी मर जाए। फिर वह सोचने लगा कि हाँ अगर कोई आकस्मिक कारण बने या कोई ऐसी बीमारी का कारण बनें तब तो मर सकता है। लेकिन फिर उसका ही मन सोचने लगा कि राजा तो स्वस्थ है तो बीमारी आ नहीं सकती। इन्हीं विचारों में उसकी रात की नींद हराम हो गई वह रात भर यही सोचता रहा कि राजा मरे तो कैसे मरे। फिर उसके मन में विचार आया कि अगर कोई इस राज्य पर चढ़ाई करे और उसमें राजा मारा जाए तब तो वह मर सकता है। लेकिन दूसरी ओर उसे ख्याल आता है कि राजा के सभी आस पास के पड़ोसी राज्यों के साथ बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं। कोई भी उसके साथ युद्ध का ऐलान नहीं कर सकता। फिर उसे एक विचार आया अगर प्रजा में से कोई उसको मार दे तब तो मर सकता है। लेकिन वहीं दूसरी ओर उसके मन ने कहा कि प्रजा भी सारी खुश है, सन्तुष्ट है, प्रजा में से तो कौन उसको मारेगा। इसी दुविधा एवं नकारात्मक सोच एवं लोभ वश विचारों से उसके मन की शांति नष्ट हो रही थी। उसे रात को भी नींद नहीं आती थी और दिन में भी किसी काम में उसका मन नहीं लगता था। ऐसे नकारात्मक विचार उसके मन पर हावी होने लगे थे जिससे वह बहुत परेशान रहने लगा। जब वह महल में राजा से मिलने जाता था तो वह स्नेह, प्यार, मित्रता भाव, खुशी आदि उसके चेहरे से नहीं झलकती थी और वह राजा को उसी दृष्टि से देखता कि यह मरे तो कैसे मरे... व्यापारी को यह मालूम नहीं था कि हमारे विचारों के भाव चेहरे पर दिखने लगते हैं और उनके प्रकमपन वातावरण में फैलते हैं। राजा जब भी उसे देखता था तो उसे महसूस होता कि मित्र को कोई परेशानी है। परंतु जब भी वह पूछता था तो मित्र (व्यापारी) कोई न कोई बात से टाल देता था। परन्तु उसके विचारों की तरंगें राजा को पहुँच जाती और जैसे कहा जाता कि जो हम दूसरों के प्रति सोचेंगे तो वह बात हमारे प्रति भी वैसे ही रूप में वापस आती है। महल में बैठे एक दिन राजा के मन में विचार आता है कि यह मेरा मित्र जो इतना धनवान है वह किसके लिए कमाता है, उसके आगे-पीछे कोई है ही नहीं तो वह क्यों इतनी परेशानी को उठाता है। अगर वह मर जाए तो उसकी मिलकियत का वारिस तो कोई है ही नहीं। फिर राजा के मन में विचार आता है कि जिसका कोई

वारिस नहीं और अगर वह मर जाए तो उसकी मिलकियत तो राज्य कोष में जमा हो जाती है तब फिर राजा के मन में विचार आया कि यह मित्र मरे तो कैसे मरे ताकि उसकी सारी मिलकियत राज्य को मिल जाये। अब राजा को भी रात भर नींद नहीं आती, न दिन में किसी काम में उसका मन लगता। यह नकारात्मक विचार राजा के मन पर हावी होने लगा और उसका मन भी परेशान रहने लगा। जब दोनों मित्र एक दूसरे के सामने आते, तब भी नकारात्मक दृष्टि से एक दूसरों को देखते और मिलते थे। आखिर एक दिन व्यापारी बहुत परेशान हो गया तब वह राजा के पास आया और राजा से कहने लगा कि आज मैं आपसे माफी मांगने आया हूँ। राजा ने पूछा तुमने कौन- सा गुनाह किया है जो माफी मांग रहा है। तब उसने कहा मैंने कोई गुनाह किया नहीं है परन्तु मेरे मन में आपके प्रति कुविचार आया है और उसने सारी बात राजा से कह दी कि कैसे चंदन की लकड़ियों से शुरू हुआ और अब वह बहुत परेशान है और जब तक वह चंदन की लकड़ियों को हटायेगा नहीं तब तक वह उस परेशानी से मुक्त नहीं हो सकता। राजा ने सोचा कि अगर मेरा मित्र माफी मांग रहा है तो मुझे भी मांगनी चाहिए क्योंकि मेरे मन में भी उसके प्रति कुविचार आया था। राजा ने भी मित्र को अपनी बात बताई। दोनों ने एक दूसरे से माफी मांगी और फिर सोचने लगे कि अब यह इतनी सारी चंदन की लकड़ियों का क्या किया जाए ? राजा ने कहा मेरे महल में सब कुछ है मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है लेकिन महल के बाहर जो बगीचा है वहाँ एक मंदिर का निर्माण करते हैं और उसमें इन सारी चंदन की लकड़ियों को लगाया जाए। सारे वातावरण में खुशबू भी फैलेगी और भगवान की भक्ति, प्रार्थना आदि चलेगी तो लोगों को भी शांति मिलेगी। मित्र को भी यह बात पसंद आयी और दोनों मंदिर निर्माण के कार्य में आगे बढ़े। मित्र ने सारी चंदन की लकड़ियों को भेज दिया और राजा ने राज्यकोष से पैसे निकाल उस मित्र को देना चाहा तब मित्र ने कहा मुझे यह धन नहीं चाहिए। लेकिन इस धन को राज्य के कल्याण के प्रति लगा दिया जाये। जब दोनों में मन में सकारात्मक विचार आए एक के मन में मंदिर निर्माण का और दूसरे के मन में राज्य का कल्याण हो तब दोनों का मन शांत हो गया और फिर से दोनों के बीच स्नेह, प्यार, मित्रता भाव, खुशी के प्रकम्पन प्रवाहित होने लगे।"

भाव यह है कि जब मनुष्य के मन में नकारात्मक या व्यर्थ विचारों का प्रभाव बढ़ जाता है तब उसका मन अशांत, परेशान हो उठता है उसका मन न दिन में किसी काम में लगता और न रात में उसे चैन की नींद आती है और जब सकारात्मक विचार का प्रभाव बढ़ता तब मन शांत और प्रसन्न रहने लगता, काम में भी मन लगता है और रात को भी चैन की नींद आती है। तभी तो कहा जाता है मनुष्य का मन ही उसका परम मित्र है और मन

ही उसका शत्रु भी है। **राजयोग मन को मित्र बनाने की कला सिखाता है।**

विचारों की शक्ति एवं प्रभाव

मन के विचारों का प्रभाव हमारे जीवन पर बहुत गहरा है जैसे :-

- जैसे मनुष्य के मन में विचार होंगे वैसे ही उसकी भावनायें और व्यवहार होगा।
- विचार एक महान शक्ति है, व्यक्ति का जैसा विचार होता है वह वैसा ही जीवन में अनुभव करता है। जैसे नकारात्मक और हीनता के विचार जीवन में डर का अनुभव कराते हैं।
- जब मनुष्य किसी विचार को बार-बार दोहराता रहता है, तब उसकी मनोवृत्ति वैसी बन जाती है। मनोवृत्ति के आधार पर ही उसकी मान्यताएँ बनने लगती हैं और फिर वही मान्यतायें सत्य होने लगती हैं।

- विचार एक बीज है, जैसा विचार बीज मानव अपने मन में रोपित करता है और उसमें मन को जितना लगाता है उतनी ही मन की शक्ति भी लगानी पड़ती है।
- सकारात्मक विचार मन में शक्ति का संचार करता है जबकि नकारात्मक विचार मानसिक शक्ति को क्षीण करते हैं जिससे थकान और खोखलेपन का अनुभव होता है।
- पुरानी विचारधाराओं को बदलने में कुछ समय और अभ्यास की आवश्यकता है।

जब विचार इतनी महान शक्ति है फिर मनुष्य सकारात्मक क्यों नहीं सोचता और नकारात्मक विचार या व्यर्थ विचार न चाहते भी मन में क्यों चलते हैं? आज की दुनिया में यह जागृति आने लगी है कि सकारात्मक सोचना चाहिए या पॉज़िटिव बनना चाहिए। यह जागृति यहां तक आ गई है कि छोटे-छोटे बच्चे भी जब अपने माँ-बाप को कुछ नकारात्मक बोलते सुनते हैं तो कहने लगे हैं कि be positive आप negative क्यों सोचते हो या कभी व्यक्ति अपने दोस्तों के बीच भी एक दूसरे से कहता है कि 'अरे, क्यों निगेटिव सोचते हो, पॉजीटिव सोचो सब ठीक हो जायेगा।' लेकिन यह मात्र दूसरों को सलाह देने तक सीमित रहता है और सलाह देने वाले व्यक्ति के सामने जब कोई

परिस्थिति आ जाती है तो वह नकारात्मक सोच कर घबराने लगता है और जब दूसरे उसको याद दिलाते है कि तुम दूसरों को तो सलाह देते थे, अब तुम्हारा क्या हुआ? तब वह कभी यह स्वीकार नहीं करता कि वह नेगेटिव सोचता है परंतु वह अपने दोस्तों को यही कहता है कि उसकी बात अलग है, वह नेगेटिव नहीं सोच रहा लेकिन वह प्रैक्टिकल (practical) सोच रहा है। सच कहा जाए तो सकारात्मक सोचना बहुत कठिन है।

सकारात्मक विचारों को स्वाभाविक रूप से चलाने के लिए मन में सकारात्मक इनपुट (input) होना चाहिए जबकि सुबह से रात तक मानव मन में नकारात्मक बातों का ही इनपुट जाता है। सुबह उठते ही सबसे पहले वह समाचार पत्रों को पढ़ता है और उसकी सारी नकारात्मक सूचनाएँ उसमें चली जाती हैं। जब वह कार्यक्षेत्र पर जाता है तो वहां लोगों के साथ जो बातचीत होती है उसमें भी समस्याएं, परिस्थितियां, घटनायें या तनाव के कारणों के बारे में ही चर्चायें चलती हैं और शाम को जब वह घर लौटता है तो टी.वी. में जो समाचार या सीरियल देखता है उनमें भी नकारात्मक भावनाओं से युक्त पोलिटिक्स या षड्यंत्र देखता है तो उसके मन में इतनी नकारात्मक या व्यर्थ बातें भर जाती हैं कि उसके मन में नकारात्मक विचार ही स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। सकारात्मक विचार तो तभी स्वाभाविक रूप से चलेंगे जब वह सारा दिन सकारात्मक बातों से अपने मन को सीचेगा।

2. बुद्धि

आत्मा की दूसरी सूक्ष्म शक्ति है बुद्धि। मन और बुद्धि का एक दूसरे के साथ गहरा सम्बन्ध है। मन सोचने की शक्ति है तो बुद्धि समझने की शक्ति है, इसलिए कहा जाता है 'सोच-समझकर बोलना' अर्थात् सोचने का काम मन करता लेकिन उसे समझने का काम बुद्धि करती है। यह भी कहते हैं 'मन घोड़ा है तो बुद्धि उसकी लगाम है।' लगाम हाथ में होगी तो मन रूपी घोड़ा कभी तूफान नहीं मचायेगा। घोड़ा अनुशासित रहेगा लेकिन अगर लगाम को छोड़कर घुड़सवारी की कोशिश करेंगे तो घोड़ा हमें ज़मीन पर पटक देगा। इसी प्रकार बुद्धि रूपी लगाम को हाथ में पकड़े बगैर मन की घुड़सवारी करने पर पश्चाताप ही करना पड़ता है। बुद्धि

क्या चीज़ है? बुद्धि आत्मा का वह अंतर्चक्षु है जिससे वह हर बात को देखती और समझती है। मन के सारे विचार बुद्धि के पास आते हैं और बुद्धि उन विचारों का एक बिम्ब बनाती है और यह बुद्धि का दृश्य (visualisation) जितना शक्तिशाली होता है, उतना उसमें समझने की शक्ति बढ़ जाती है। बुद्धि के इस अंतर्चक्षु द्वारा हम केवल बाह्य या भौतिक वस्तुओं को ही नहीं देखते परन्तु मनुष्य की सूक्ष्म भावनाओं को भी देख सकते और समझ सकते हैं।

बुद्धि की दो विशेषतायें हैं:-

1. विवेक (wisdom) और

2. स्वतन्त्रता (freedom)

विवेकयुक्त बुद्धि से मानव सही और गलत को अच्छी तरह से परख सकता है।

''उदाहरण के तौर पर आप किसी बच्चे के सामने झूठ बोलकर देखें तो वह भी तुरन्त अपने विवेक के आधार पर आपसे कहेगा यह झूठ है ना ? परन्तु उस वक्त हम उस बच्चे को तुरन्त चुप कराते हुए कहते हैं कि तुम्हें अभी समझ नहीं है अर्थात् हमने उसके विवेक को मार दिया। तब वह बच्चा एक दुविधा में पड़ जाता है कि मेरा विवेक तो कहता, यह गलत है और बड़े कहते, मैं समझता नहीं हूँ... और शायद वह अपनी बुद्धि को मनाने लगता कि बड़े ज्यादा जानते हैं। फिर दूसरी बार किसी बात पर वह उस समझ का इस्तेमाल करके झूठ बोलता है तब भी बड़ों से डांट पड़ती कि तुम झूठ बोलते हो, उसने यह बात कहाँ से सीखी ? फिर वह बच्चा बहुत असमंजस में पड़ जाता है कि जब सही कहा तब कहा तुम समझते नहीं और फिर उनके हिसाब से कहा तब भी कहते हैं मैं झूठ बोलता हूँ तो फिर सही क्या है ? और इस दुविधा में वह बच्चा उसी दिशा में आगे बढ़ता है जैसा संग या माहौल उसे मिलता है।''

वास्तव में बुद्धि को यह दो गिफ्ट, विवेक और स्वतन्त्रता, इसलिए प्राप्त है ताकि हर कर्म विवेकयुक्त और स्वतन्त्र होकर करे जिससे अपने कर्म के लिए वह खुद उत्तरदायी या ज़िम्मेदार है। भगवान उसके कर्म के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं। ईश्वर हमारे कर्म में दखल नहीं करते। जिस प्रकार घर में अगर मात-पिता बच्चों के हर कर्म में दखल देने

लगें तो बच्चे भी झुंझला उठते हैं और कहते हैं कि हमारे पास भी बुद्धि है आप हमें अपने आप करने दें। इस तरह आज के बच्चे भी अपनी समझदारी और स्वतन्त्रता से हर काम करना चाहते हैं। वैसे मनुष्य भी इस संसार में अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जीना चाहता है। तभी तो कहा गया है **'जो करेगा सो पायेगा, जैसा करेगा वैसा पायेगा।'**

जब बुद्धि हर बात को अपने अंतर्चक्षुओं से देखती और अच्छी तरह समझती है, फिर उसका विश्लेषण करती है, उसके बाद परखती है और इस आधार पर वह हर बात का यथार्थ निर्णय लेने लगती है। जिस तरह वकील और जज होते हैं, वकील अपना तर्क देता परन्तु जज को हर बात के तर्क को परखकर यथार्थ निर्णय लेना होता है। वैसे ही हमारा मन एक वकील की तरह है जो विचारों को कर्म में लाने के लिए अपना तर्क देता है परन्तु बुद्धि जज के समान है जो हर तर्क को समझकर, विश्लेषण कर, उसमें सच्चाई को परखकर यथार्थ निर्णय लेती है। अगर केवल वकील के तर्क से जज प्रभावित हो जाए तो वह यथार्थ निर्णय नहीं दे सकता, इसी तरह जब हमारी बुद्धि मन के तर्कपूर्ण विचारों के प्रभाव में आ जाती है तो वह भी सही निर्णय नहीं ले सकती। जीवन में हर मनुष्य ने यह महसूस किया है कि जब-जब उसने सही निर्णय लिया है तब-तब उन्हें एक सुकून का अनुभव हुआ है। इसके विपरीत जीवन में जब-जब गलत निर्णय लिये गये हैं तब-तब अंदर ही अंदर आत्मा स्वयं को कचोटती रही है। कुछ प्राप्ति होने के बाद भी वह प्राप्ति होने का सुख अनुभव नहीं होने देता। आज मनुष्य की बुद्धि कमज़ोर होने के कारण व्यर्थ और नकारात्मक विचारों के प्रभाव में आ गई है इसलिए सही निर्णय नहीं ले पाती।

आत्मा की तीन सूक्ष्म शक्तियों में बुद्धि महत्वपूर्ण शक्ति है। बुद्धि को ही अंतरात्मा की आवाज़ कहते हैं जो कभी गलत नहीं होती सिर्फ उसे सुनने की आवश्यकता है। बुद्धि अपने विवेक से जब सही निर्णय लेती है तब आत्मा सुख, शांति, आनंद आदि गुणों से भरपूर हो जाती है।

दुनिया में सबसे सफल व्यक्ति वही है जो दूरदर्शी और दूरांदेशी होते हैं। कई स्थानों पर यह नारा पढ़ने को मिलता है if you can perceive you can achieve (यदि आप देख सकते हैं तो आप पा सकते हैं)। अगर आपका दृष्टिकोण सही है तो आपके लिए जीवन में कुछ भी हासिल करना कोई बड़ी बात नहीं है। लक्ष्य और लक्षण जब एक हो जाते हैं तब एकाग्रता विकसित होती है। एकाग्रता से किसी भी कार्य में सफलता मिल सकती है। राजयोग के अभ्यास से मन शक्तिशाली और बुद्धि स्पष्ट बन जाती है। बुद्धि जितनी

शक्तिशाली और स्पष्ट होगी उतना ही निर्णय सही होगा। जैसे आँख अगर धुंधली है तो स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता है और ठोकर भी लग सकती है, उसी तरह नकारात्मकता अंतर्दृष्टि को धुंधला कर देती है जिसके कारण स्पष्ट दिखाई नहीं देता। उस अवस्था में लिया गया निर्णय गलत साबित होता है। बार-बार गलत निर्णय लेने से आत्मविश्वास हिल जाता है। मनोबल और इच्छा शक्ति (will-power) कमज़ोर होने के कारण ही बुद्धि मन के नकारात्मक विचारों के प्रभाव में रहने लगती है। आध्यात्मिक ज्ञान हमें सकारात्मक चिंतन प्रदान करता जिससे मनोबल मजबूत होता है, बुद्धि की विवेक शक्ति बढ़ती है और जीवन में सही निर्णय लेने की क्षमता पैदा होती है, सही निर्णय से व्यक्ति सफलता को प्राप्त कर जीवन में आगे बढ़ता है।

आज का युग चुनौतियों भरा युग है और चुनौतियां हर व्यक्ति के सामने समय-समय पर आती रहती हैं। यही चुनौतियां किसी-किसी के लिए तो अवसर के द्वार खोल देती हैं और किसी-किसी को पछाड़ने की अनुभूति कराने वाली होती हैं। ऐसा क्यों? देखा गया है कि जो व्यक्ति चुनौती के वक्त जीवन में सही निर्णय ले लेता है उसके लिए वह अवसर के द्वार खोल देती है। लेकिन जो व्यक्ति चुनौती के वक्त अल्प-प्राप्ति के लालच में आकर दूरदृष्टि नहीं रखता और गलत निर्णय से नकारात्मक दिशा चुन लेता है, उसे बाद में जीवन में बहुत पश्चाताप करना पड़ता है। उसने गलत निर्णय क्यों लिया, क्योंकि उसकी अंतर्दृष्टि धुंधली थी। इसलिए भविष्य उसके सामने स्पष्ट नहीं था। आध्यात्मिक ज्ञान हमारे अंतर्चक्षु के धुंधलेपन को दूर करने में सहायक बनता है और राजयोग के गहन अभ्यास से बुद्धि इतनी शक्तिशाली बन जाती है जो कई बार भविष्य में होने वाली घटनाओं की पूर्वानुभूति भी होने लगती है। बुद्धि अपने अतंर्चक्षुओं से भविष्य में होने वाली घटनाओं को साफ-साफ देख लेती है। राजयोग बुद्धि को सशक्त करने का सफल मार्ग है जिससे सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। परन्तु राजयोग का अभ्यास करने के लिए व्यक्ति को समय निकालना पड़ता है और आज मनुष्य के

पास समय ही तो नहीं है। इस पर एक कहानी याद आती है:-

''एक लड़का था उसे नौकरी की तलाश थी। अनेक प्रयत्नों के बाद भी उसे कोई काम नहीं मिला। तब उसके एक मित्र ने कहा कि वह लकड़ी के एक व्यापारी सेठ के पास चला जाए शायद वहाँ उसे कोई काम मिल जाए। वह उस सेठ के पास चला गया और उसने सेठ से अपने लिए काम माँगा। सेठ ने पूछा कि वह क्या काम कर सकता है ? युवक ने कहा कि वह शक्तिशाली है कोई भी काम कर सकता है। सेठ ने पूछा, क्या वह लकड़ी काट सकता है ? युवक तैयार हो गया। सेठ उस युवक को पीछे गोदाम में ले गया जहाँ लकड़ी का ढेर रखा था और कहा कि यह सारी लकड़ी काटनी है। युवक तैयार हो गया तो सेठ ने उसे कुल्हाड़ी दी और काटने के लिए कहा। सारा दिन वह लकड़ी काटता रहा, दिन के अंत में सेठ ने सोचा, देखें उस युवक ने कितनी लकड़ी काटी हैं। उसने देखा कि युवक ने सारे दिन में करीब 25 लकड़ियां काटी थीं, सेठजी बड़े प्रसन्न हो गये और कहने लगे, तुम्हारे में अच्छी क्षमता है। चलो तेरी नौकरी पक्की, रोज़ सुबह आकर शाम तक लकड़ी काटना, दिन में एक घंटा आराम मिलेगा। युवक खुश होकर चला गया। प्रतिदिन वह आकर लकड़ी काटता रहा। ऐसे करते 10 दिन बीत गये। फिर सेठजी ने सोचा कि देखना चाहिए युवक क्या कर रहा है ? जब दिन के अंत में वह देखने गये तो देखा कि युवक ने सारे दिन में सिर्फ 15 लकड़ी काटी थीं। सेठजी ने युवक से कहा कि उसकी क्षमता कम कैसे हो गयी, पहले दिन तो उसने 25 लकड़ी काटी थीं और 10 दिन के बाद सिर्फ १५ लकड़ी काट पाया। युवक कहने लगा कि उसे भी समझ में नहीं आ रहा कि लकड़ी कम कैसे कट रही हैं। जबकि वह आलस्य भी नहीं करता है और मेहनत भी करता है। सेठजी ने उसे थोड़ी और मेहनत करने के लिए कहा। युवक ने भी स्वीकार किया और दूसरे दिन से और मेहनत करने लगा। इसी प्रकार मेहनत करता रहा और 10 दिन बीत गए तो फिर सेठ ने सोचा कि देखें तो सही वह लड़का क्या कर रहा है, तो देखा कि सारे दिन में उस युवक ने सिर्फ 10 लकड़ी काटी हैं। सेठजी ने युवक से पूछा, क्या बात है पहले दिन तो तुमने 25 लकड़ी काटी, 10 दिन में 15 लकड़ी तक हो गयी और आज 20दिन में यह कार्यक्षमता कम कैसे हो गई। युवक ने कहा, सेठजी यही बात तो उसे भी समझ में नहीं आ रही कि इतनी मेहनत करने पर भी उसकी कार्यक्षमता कम क्यों हो रही है। सेठजी अनुभवी थे उन्होंने युवक से पूछा कि तुम यह बताओ कि इन 20 दिनों में तुमने कुल्हाड़ी की धार को कितनी बार तेज़ किया ? युवक ने कहा, सेठजी समय कहाँ मिलता है कुल्हाड़ी की धार तेज़ करने का ? सारा दिन तो लकड़ी काटने में चला जाता है। सेठजी

ने कहा, अरे भाई उसके लिए तुम्हें अलग समय थोड़े ही दिया जायेगा। जैसे ही तुम काम पर आते हो सबसे पहले तुम्हें कुल्हाड़ी की धार तेज करनी चाहिए तो कम मेहनत में तुम अधिक लकड़ी काट सकोगे। यह तो तुम मेहनत भी अधिक कर रहे हो और तुम्हारी कार्यक्षमता भी कम हो रही है और काम भी कम हो रहा है। परन्तु यह बात उस युवक की समझ में नहीं आ रही थी।''

ठीक उसी प्रकार आज मनुष्य की कार्य क्षमता कम होती जा रही है जिस कारण तनाव बढ़ रहा है, उस वजह से फिर चिड़चिड़ापन बढ़ रहा है। कई बार क्रोध में आकर काम भी बिगड़ जाता और सम्बन्धों में भी टकराव हो जाता है और सम्बन्ध खराब हो जाता है फिर नकारात्मक विचार, हीनता के विचार चलने लगते हैं और वह समझ नहीं पाता कि यह सब क्यों हो रहा है? इन सब बातों का कारण है कि **अपनी बुद्धि की धार को आध्यात्मिक ज्ञान एवं मेडीटेशन से तेज़ नहीं किया है।** आज का मनुष्य भी यही कहता है कि इसके लिए उसके पास समय नहीं है। समय मिलेगा नहीं, निकालना पड़ेगा और सुबह-सुबह अगर मनुष्य भी अपनी बुद्धि की धार को तेज़ कर ले तो सारा दिन उसका अच्छा रहेगा। आध्यात्मिक ज्ञान और राजयोग उसके मन को सशक्त करता है तो अंतर्चक्षु स्पष्ट हो जाते हैं और हर बात को सही समझ कर कार्य करने लगता है जिससे बुद्धि की क्षमता बढ़ जाती है और कुशलता भी आ जाती। तभी तो गीता में कहा गया है योग से कर्म में कुशलता आती है।

3. संस्कार

आत्मा की तीसरी सूक्ष्म शक्ति है संस्कार। मनुष्य अपने मन के विचारों को बुद्धि की विवेक शक्ति से समझकर जब स्वतन्त्र इच्छा से कर्म करने लगता है, तब वह कर्म आत्मा पर अपना प्रभाव छोड़ देता है जिसे हम संस्कार कहते हैं। यह संस्कार अर्थात्

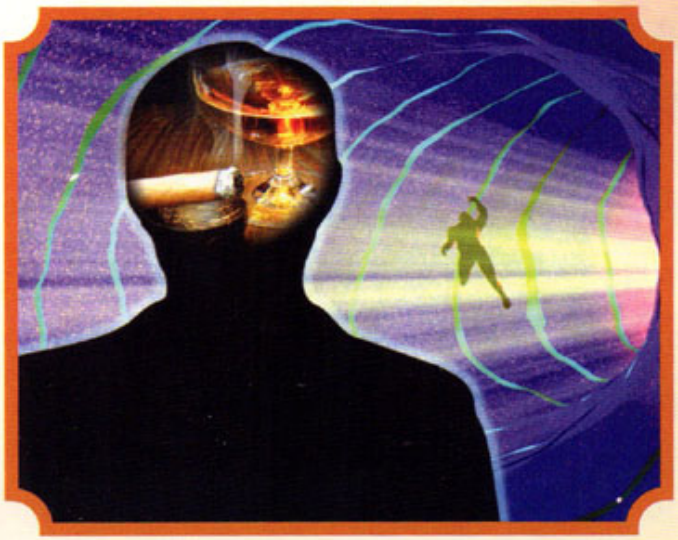

कर्म का प्रभाव हमारी स्मृति में समा जाता है और हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करता है। बार-बार किया जाने वाला कर्म आदत का रूप लेकर उसके अर्धचेतन मन में समा जाता है। मन और बुद्धि भी तदानुसार कार्य करने लगते हैं। इस तरह मानव नकारात्मक संस्कारों के चक्रव्यूह (vicious cycle) में घिर जाता है। चक्रव्यूह को तोड़ कर अपने जीवन को नई दिशा देना व्यक्ति के लिए बहुत कठिन हो जाता है। उन आदतों से परेशान व्यक्ति आत्मशक्ति के अभाव में उससे बाहर नहीं निकल पाता। उदाहरण के तौर पर शराब या सिगरेट की आदत वाला व्यक्ति आत्मिक शक्ति के अभाव में इनसे मुक्त नहीं हो पाता।

हर आत्मा में पाँच प्रकार के संस्कार होते हैं, इसलिए हर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न है। जैसे व्यक्ति के संस्कार होते हैं, वैसा उसका स्वभाव होता हैं, और जैसा उसका स्वभाव, वैसे उसके लक्षण होते हैं, इसलिए संसार में आज सात अरब से अधिक जनसंख्या है, लेकिन एक के लक्षण दूसरे से नहीं मिलते हैं। यहाँ तक कि दो जुड़वां बच्चे होते हैं तो भी माँ खुद कहती है कि दोनों के स्वभाव में अंतर है, एक शांत है, एक तूफानी है। यह भिन्नता उसके संस्कारों के कारण होती है।

संस्कार पांच प्रकार के होते हैं:-

1. मूल संस्कार – आदि और अनादि संस्कार - जब ईश्वर के धाम से मनुष्य आत्मा इस संसार में आती है तो वह अपने निजी सतोगुणी संस्कार लेकर आती हैं अर्थात् आत्मा सात गुणों का स्वरूप होती है। जब कोई किसी नवजात शिशु के सामने जाता है तब एक अलौकिक भावना का संचार होता है। उसे देखकर कभी नफ़रत नहीं आती क्योंकि हर वक्त बच्चे से सकारात्मक ऊर्जा जैसे आनंद, प्रेम, खुशी, पवित्रता की तरंगें निकलती रहती हैं इसलिए बच्चे के प्रति कभी भी कोई नकारात्मक भाव पैदा नहीं होता। बच्चे को महात्मा कहा जाता

है क्योंकि वह पवित्र होता है। जब वह सोया हुआ होता है तो उसके चेहरे से कितनी शांति के भाव प्रकट होते हैं। बच्चा जब मुस्कुराता है तो आनन्द बिखेरता है और सुख का अनुभव कराता है। जब वह हँसता है तब कितना प्यारा लगता है। बच्चे को खुश देखकर बड़ों को भी खुशी का अनुभव होता है। हर बच्चे का वास्तविक स्वरूप सतोगुणी होता है। यही उस समय उसके मूल संस्कार होते हैं। हर आत्मा के मूल संस्कार एक जैसे ही होते हैं। लेकिन जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होने लगता है वह अपने वास्तविक सतोगुणी स्वरूप से दूर जाने लगता है और कमज़ोरियों के वशीभूत हो जाता है और सात गुणों की जगह सात अवगुण ले लेते हैं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, ईर्ष्या और नफ़रत।

2. पूर्व जन्म के संस्कार - हर आत्मा भिन्न-भिन्न स्थान एवं परिवेश से अपने पूर्व जन्म के संस्कार साथ लेकर इस जन्म में आती है। उदाहरण के तौर पर हम कई बार समाचार पत्रों में पढ़ते या सुनते हैं कि एक पाँच साल का बच्चा शास्त्रों के श्लोक बोलने लग गया। जबकि घर में किसी को भी संस्कृत नहीं आती या एक तीन साल का बच्चा कम्प्यूटर चलाने लग गया। तब कहते हैं कि उसके पूर्व जन्म के संस्कारों का उदय हुआ है। अब स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि क्या उन संस्कारों को उन्हीं बच्चों में उदय होना था? बाकी सब में क्यों नहीं हुए! हकीकत यह है कि पूर्व जन्म के संस्कारों का उदय तो हरेक में होता है लेकिन उनकी तीव्रता (Intensity) में फर्क पड़ता है। किसी में वे बहुत ही शक्तिशाली वेग (Intensity) से एकदम बाहर आ जाते हैं तो वे असाधारण रूप से (exceptionally) अन्यों से अलग दिखाई देते हैं। किसी में बहुत ही कम तीव्रता होती है तो उनका प्रकटीकरण भी शिथिल होता है। लेकिन तब समझ में नहीं आता कि यह व्यक्ति ऐसा क्यों कर रहा है? कई बार काफी सुलझे हुए व्यक्ति भी ऐसी गलती कर बैठते हैं कि लोग हतप्रभ रह जाते हैं। उनसे पूछने पर वे यही कहते हैं कि पता नहीं उस वक्त अचानक उन्हें क्या हो गया था। उनकी बुद्धि जैसे एकदम काम करना बंद कर देती है। वास्तव में जब पूर्व जन्म के संस्कार हमारी बुद्धि पर प्रभाव डालते हैं तब उसकी समझ

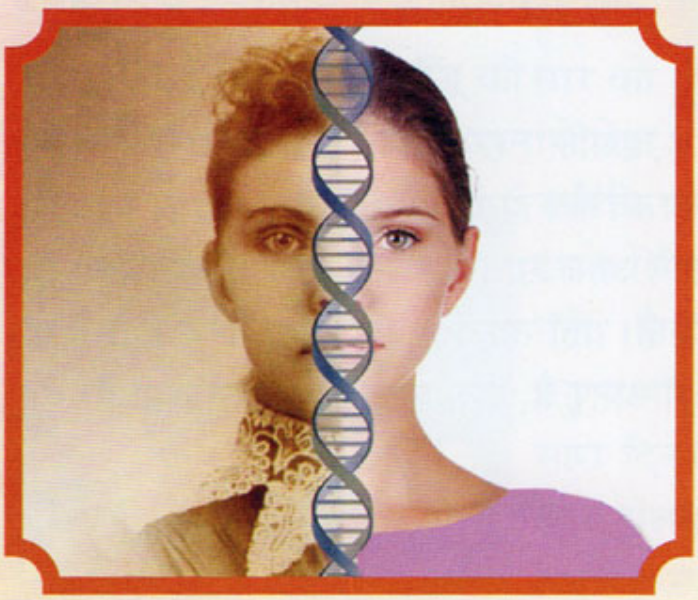

काम नहीं करती और पूर्व जन्म के संस्कार हमारी कर्मेन्द्रियों पर अधिकार जमाकर उसे चलाने लगते हैं और व्यक्ति गलतियां कर लेता है।

3. गर्भ संस्कार – गर्भ संस्कार उन संस्कारों को कहते है जिन्हें गर्भकाल के दौरान बच्चा अपने मात-पिता के चिन्तन से ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए अभिमन्यु के विषय में यह कहा जाता है कि जब वह माता की कोख में था तो अर्जुन उसकी माँ को चक्रव्यूह भेद कर उसके अंदर घुसने की कला सुना रहा था। जब वह चक्रव्यूह से बाहर निकलने की युक्ति सुनाने लगा तो अभिमन्यु की माँ को नींद आ गई। इस कारण अभिमन्यु महाभारत के युद्ध में कौरवों द्वारा रचे गए चक्रव्यूह को तोड़कर अंदर तो घुस गया परन्तु बाहर नहीं निकल सका। इसी तरह एक बहन बहुत अच्छी रीति गीता और रामायण पर प्रवचन करने लगी, उसने बताया कि जब वह अपनी माँ के गर्भ में थी तो उसके पिताजी दूसरे स्थान पर रहते थे इसलिए उसकी माँ अकेले में गीता और रामायण को पढ़ने के साथ-साथ उस पर मनन-चिंतन भी करती थी। इस तरह गीता और रामायण की नवीन व्याख्या करने के कारण वह कोख में अपनी माँ के साथ संवाद करती थी।

4. वातावरण या संग के प्रभाव के संस्कार- कहा जाता है 'जैसा संग वैसा रंग'। वातावरण और संग के रंग वाले इन संस्कारों का प्रभाव भी मनुष्य जीवन पर बहुत गहरा होता है। कई बार देखते हैं कि खानदानी परिवार के बच्चे जब कॉलेज़ में या हॉस्टल में पढ़ाई के लिये जाते हैं और वहाँ अगर बुरी संगत में लग जाते हैं तो संग के प्रभाव में आकर वे बुराई के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं। जब माँ-बाप को पता चलता है, तो उस बच्चे को समझाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वे बच्चे संगदोष के कारण इतने परवश हो जाते हैं कि अपने मात-पिता को छोड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं लेकिन संग को नहीं और जब महसूस होता है तो कभी-कभी

अपने जीवन का अंत कर देते हैं।

5. दृढ़ता या मनोबल के संस्कार (will power) के संस्कार- व्यक्ति एक बार अपने मन में कुछ ठान लेता है कि मुझे ऐसे ही करना है बस, उसके बाद कोई भी उसको बदल नहीं सकता है। उसका संकल्प इतना दृढ़ होता है कि उस दृढ़ संकल्प के कारण वो असंभव को भी संभव कर लेता है। दृढ़ संकल्प के द्वारा आप अपने व्यक्तित्व को जैसे चाहें वैसा बदल सकते हैं। व्यक्तित्व एक बर्फ की शिला जैसा है। जिसका 90% भाग अंदर है और 10% भाग ऊपर है। आत्मा बीच में है जिसमें अथाह क्षमता है, अथाह शक्ति है। व्यक्तित्व पर चारों प्रकार के संस्कार, बुराइयों के संस्कार, पूर्व जन्म के संस्कार, गर्भ संस्कार और संग के रंग के संस्कार, गुप्त प्रभाव (undercurrents) के रूप में हावी रहते हैं और मनुष्य के व्यक्तित्व को संचालित करते हैं। जीवन भी उसी दिशा में चलता जाता है इसलिये आत्मा में असीम क्षमता होते हुए भी वह परवश हो जाती है और अपनी शक्ति से कार्य नहीं कर सकती है। क्या इन चारों प्रकार के संस्कारों को परिवर्तन किया जा सकता है? ज़रूर कर सकते हैं। कैसे?

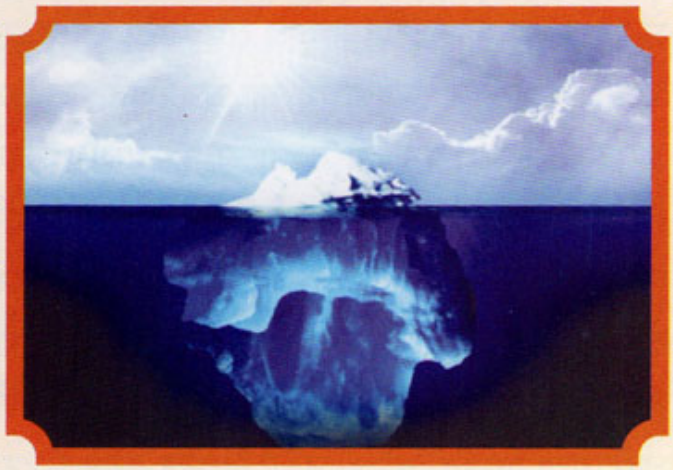

जैसे लोहे को लोहे द्वारा, हीरे को हीरे द्वारा ही काटा जा सकता हैं, वैसे संस्कारों को संस्कारों से ही काटा जाता है। उसके लिए पाँचवे प्रकार के दृढ़ता के संस्कारों को जागृत करना पड़ता है। दृढ़ता की शक्ति हरेक में होती है परन्तु जब तक हम उसे जागृत नहीं करते तब तक वह गुप्त रूप में अंदर रहती है। दृढ़ता की शक्ति को जागृत करने के लिए सकारात्मक संकल्प की शक्ति अथवा समर्थ संकल्पों की रचना करनी चाहिए जो आत्मा की अथाह शक्ति और क्षमता को व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष करते हैं। तब ये चारों प्रकार के संस्कार निष्क्रिय हो जाते हैं। इसमें आध्यात्मिक ज्ञान से सहायता मिलती है क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान ही हमें श्रेष्ठ और सकारात्मक दिशा प्रदान करता है और व्यक्ति को जीवन में महानता के शिखर पर पहुंचा देता है। इसके विपरीत यदि जीवन में आध्यात्मिक ज्ञान का तो अभाव हो और केवल दृढ़ता की शक्ति हो, तब वही व्यक्ति नकारात्मकता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है और कोई आंतकवादी, बलात्कारी, भ्रष्टाचारी या हिटलर भी बन जाता है। दृढ़ता उनमें भी अथाह है लेकिन गलत दिशा में

चेनलाईज़ (channelize) है। इस तरह से हम अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिवर्तन कर सकते हैं। कई लोग सोचते हैं कि यदि हमें पहले मालूम होता तो दृढ़ता की शक्ति को जागृत कर सकते थे लेकिन अभी जीवन के अंतिम पड़ाव में क्या कर सकते हैं? दृढ़ता की शक्ति को किसी भी उम्र में जागृत किया जा सकता है क्योंकि यह आत्मा की शक्ति है। एक 9 साल का नरेन्द्र आध्यात्मिकता से अपनी दृढ़ता को जागृत कर स्वामी विवेकानंद बन जाता है। इसी प्रकार 25 वर्ष की उम्र में एक युवक आध्यात्मिकता से दृढ़ता को जागृत कर महात्मा गांधी बन जाता है और 60 साल की आयु में एक साधारण नन सिस्टर टेरेसा, मदर टेरेसा बन जाती है। इस तरह संसार में जितने भी महान व्यक्ति हुए हैं, आध्यात्मिकता से उनके चिंतन को एक सकारात्मक दिशा मिली है और वे उस आध्यात्मिक ऊर्जा से अपनी दृढ़ता की शक्ति को जागृत कर महानता के शिखर पर पहुँच जाते हैं। दृढ़ता सफलता की चाबी है। दृढ़ता किसी भी विघ्न को छूमंतर कर देती है।

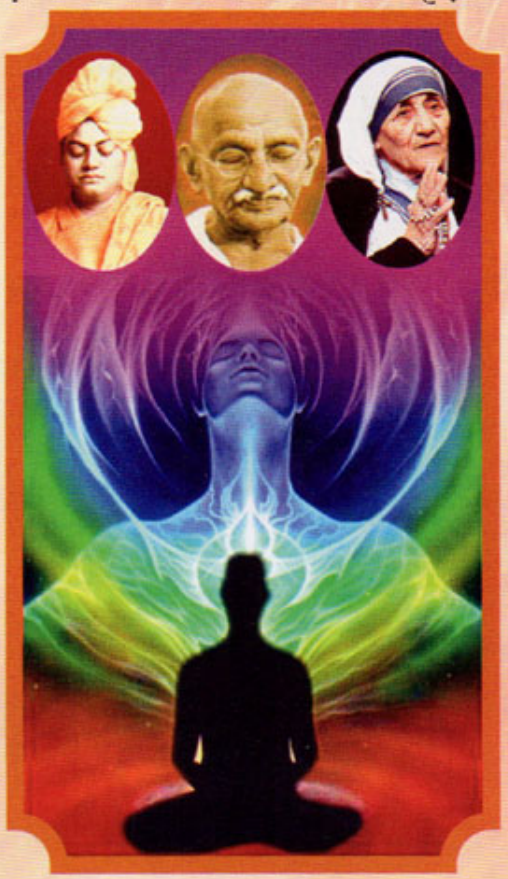

आत्मा का इस शरीर के साथ क्या सम्बन्ध है? उसका स्वरूप कैसा है? शरीर में आत्मा कहां रहती है? आत्मा कहां से आती है और कहां जाती है? इस संसार में क्यों आयी और क्या उसे मोक्ष मिल सकता है या नहीं?

आत्मा एक चैतन्य शक्ति है। शरीर तो मात्र एक साधन है। आत्मा का शरीर के साथ का सम्बध 'मैं' और 'मेरे' के रूप में स्पष्ट किया जाता है। जैसे कहते हैं 'मेरा शरीर', 'मैं शरीर' तो नहीं कहते। उसी तरह 'मेरा हाथ' कहा जाता है, 'मैं हाथ' तो नहीं कहा जाता। स्पष्ट है कि 'मैं' कहने वाली चैतन्य शक्ति आत्मा इस शरीर की मालिक है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के हाथ में चाकू हो तो उस चाकू को पता नहीं है कि मुझे सब्जी काटनी है या किसी व्यक्ति का गला काटना है। वह निर्णय नहीं करता है। उसी तरह उस चाकू का प्रयोग करने वाले हाथ भी यह नहीं सोचते कि मुझे इससे कोई सब्जी काटनी है या किसी व्यक्ति को मारना है क्योंकि 'हाथ' भी चाकू की तरह एक साधन है। सोचने वाली शक्ति, निर्णय करने वाली शक्ति तो आत्मा है।

आत्मा का स्वरूप:

आत्मा एक अति सूक्ष्म दिव्य ज्योति बिन्दुस्वरूप है इसलिए व्यक्ति जब शरीर छोड़ता है तो दीपक जलाते हैं अर्थात् शरीर में स्थित चैतन्य ज्योति के यादगार स्वरूप ज्योति जगाते हैं। तभी लोग कहते वह चैतन्य ज्योति चली गयी (The light of the life has gone). आत्मा एक चमकते हुए सितारे के समान है। एक प्रकाश पुंज है।

शरीर में आत्मा का निवास स्थान:

दुनिया में आत्मा के शरीर में निवास के विषय में कई प्रकार की मान्यतायें हैं। कई लोग यह मानते हैं कि आत्मा हृदय में रहती है। लेकिन आज जब आप्रेशन करके हृदय प्रत्यारोपण (heart transplantation) किया जाता है तो सवाल उठता है कि उस वक्त आत्मा कहां जायेगी?

कई कहते हैं कि आत्मा सारे शरीर में भ्रमण करती है। अब एक ही व्यक्ति, एक ही समय में सुन भी रहा है, देख भी रहा है, बोल भी रहा है, हाथ भी हिला रहा है, चल भी रहा है, उस वक्त आत्मा कहां जाएगी? स्पष्ट है कि आत्मा का एक नियत स्थान होना चाहिये। जिस तरह गाड़ी में ड्राइवर का एक नियत स्थान है जहां बैठकर वह सारी गाड़ी को कन्ट्रोल करता है। ऐसा नहीं कि रिवर्स करना है तो पीछे दौड़ेगा, आगे चलाना है तो आगे जाएगा। नहीं। गाड़ी के सारे कन्ट्रोल्स (controls) एक ही स्थान पर होते हैं, जहां से वह कन्ट्रोल करता है। ठीक इसी प्रकार मस्तिष्क शरीर को नियंत्रण करने वाला है, आत्मा मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र के द्वारा शरीर की सभी कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों पर नियंत्रण रखती है। मेडिकल साइंस (Medical Science) के द्वारा भी यह प्रमाणित किया गया है कि हायपोथेलेमस और

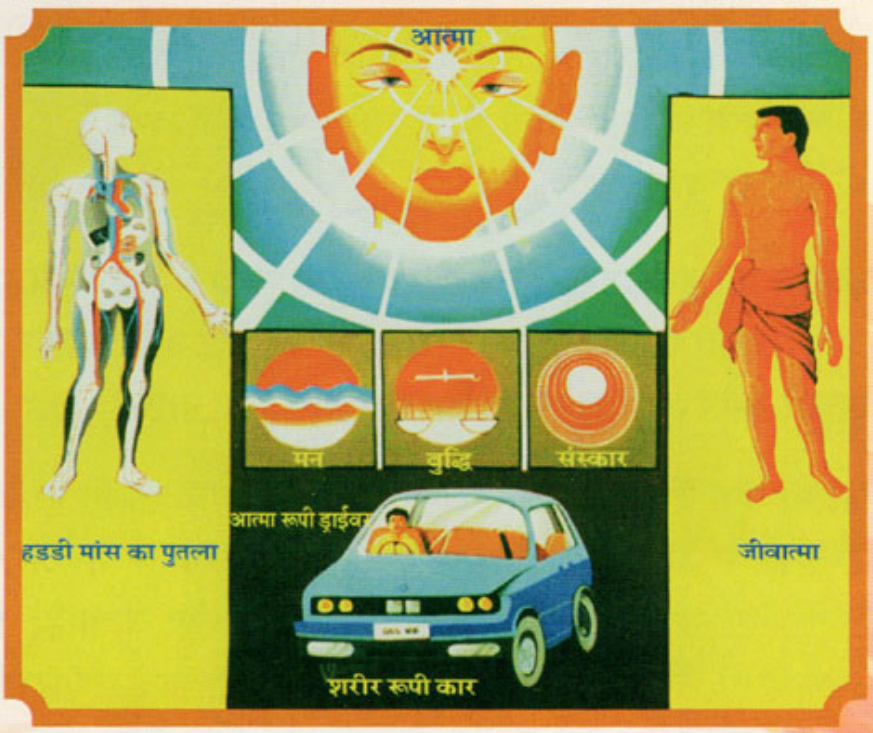

पिट्युटरी गलैंड के बीच (In between hypothalamus and pituitary gland) में आत्मा निवास करती है। इसलिए व्यक्ति जब अपने भाग्य की बात करता है तभी भी वह अपना हाथ मस्तक पर फेरता है। भाग्य शरीर में नहीं है परन्तु आत्मा भाग्य लेकर आती और लेकर जाती है। चूंकि आत्मा भृकुटी के पीछे बैठी है, अतः लोग कपाल में भाग्य को दर्शाते हैं। भारत में तिलक भी भृकुटी के मध्य में लगाते हैं। वैसे जब महिलाएँ तिलक लगाती हैं तो वह सौभाग्यवती की निशानी है, परन्तु जब मंदिर में जाते तो भाई और बहनें दोनों ही तिलक लगाते हैं। भारत में एक बहुत सुंदर प्रथा है कि जब किसी धर्म स्थल पर जाते हैं तो चमड़े की चीज़ को बाहर उतार कर, फिर अंदर जाकर तिलक लगवाते हैं और हाथ जोड़ कर नमन करते हैं। यह प्रथा चलती आई है। लेकिन यह क्यों किया जाता है यह बात सामान्य व्यक्ति नहीं जानते। अब स्थूल चमड़े की चीज को तो बाहर उतार दिया लेकिन ये शरीर भी तो एक चमड़ा है जिसका मनुष्य अभिमान करता है। वास्तव में उतारना है अभिमान के चमड़े को। जिस चमड़े का अभिमान कर मनुष्य कहता है कि 'मैं फलाना', 'मैं फलाना' इस देह के अभिमान (body consciousness) को बाहर उतारना होता है। फिर अन्दर जाकर तिलक लगाने का अर्थ है कि स्वयं को आत्मा निश्चय करो कि 'मैं' देह नहीं परन्तु इस देह में विराजमान एक चैतन्यशक्ति आत्मा हूँ। इस स्मृति में मन को स्थित करके फिर भगवान की मूर्ति के सामने जाकर नमन करना चाहिए अर्थात् आत्मभाव में स्थित होकर फिर भगवान के सामने अपनी भावनाओं को अर्पित करना चाहिए। जब इस शुद्ध भाव से भावनायें अर्पित की जाती हैं तो भगवान भी उसे स्वीकार करते हैं। अक्सर मंदिर में चंदन का तिलक लगाया जाता है। सवाल है कि चंदन का ही तिलक क्यों लगाया जाता हैं और वह एक छोटा-सा बिन्दु लगाते हैं। इसका कारण यह है कि आत्मा का स्वरूप अति सूक्ष्म बिन्दु है। चंदन का रंग सुनहरा होता है, यह याद दिलाता है कि आत्मा का अनादि स्वरूप शुद्ध और पवित्र है। चंदन लगाने से शीतलता महसूस होती है अर्थात् आत्मा का स्वधर्म शांति है। चंदन की खुशबू चारों ओर फैलती है अर्थात् आत्मा जब अपने असली सतोगुणी स्वरूप में स्थित होती है तब वह अपने गुणों की खुशबू सारे संसार में फैलाती है इसलिये चंदन का तिलक लगाया जाता है।

आत्मा कहाँ से आती है और कहां जाती है ?

कहा जाता है कि जहां से आये हैं वहीं जाना है। कहाँ से आए और कहाँ जाना है? चित्र में तीन लोक हैं। आकाश के नीचे साकारी मनुष्य लोक है, जहां पाँच तत्व की दुनिया है।

यह संसार एक रंगमंच है जहां हर आत्मा शरीर रूपी चोला धारण कर अपना अभिनय करती है। आकाश के ऊपर है सूक्ष्म देव लोक जहां सूक्ष्म देवताएँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर निवास करते हैं। उसके ऊपर एक और लोक है जहां चारों ओर दिव्य प्रकाश फैला हुआ है और जहां सभी आत्माएँ निवास करती हैं, जिसको श्रीमद्भगवद्गीता में 'परमधाम' कहा गया है। इस परमधाम या परलोक को अलग-अलग धर्म में अलग-अलग नाम दिया गया है। किसी ने शांतिधाम कहा जहां अनंत शांति है, किसी ने निर्वाणधाम कहा जो कि वाणी से परे का स्थान है, किसी ने सचखण्ड कहा, किसी ने आलम-ए-अरवाह कहा जहां सभी रूहें निवास करती हैं, किसी ने सातवाँ आसमान कहा जो यह पाँच तत्व की दुनिया एवं सूक्ष्म देव लोक से भी परे है, किसी ने मोक्षधाम या मुक्तिधाम कहा जहां आत्मा मुक्त अवस्था में निवास करती है, किसी ने ब्रह्मलोक या ब्रह्म महतत्व कहा जो यह पांच तत्वों की दुनिया से परे छठा तत्व है, किसी ने उसे हाईएस्ट हैवनली एबोड (Highest heavenly abode) कहा। लेकिन हम उसको अपना

प्यारा घर कहते हैं क्योंकि घर ऐसा स्थान है जहां से व्यक्ति का विशेष लगाव होता है। सारी दुनिया घूम कर जब अपने घर आएँगे, तो सुकुन या राहत महसूस करेंगे या एकदम मन की शांति का अनुभव होता है। जो नींद अपने घर में आती है वह और कहीं नहीं आती इसीलिये कहा जाता

है होम, स्वीट होम (Home sweet home)। कई बार मनुष्य कहते हैं, बाहर जाते हैं तो बीमार हो जाते हैं, दूसरे शब्दों में इसे घर से बाहर रहने से खिन्नता (home sickness) कहा जाता है। कहा जाता है कि अपना घर दाता का दर अर्थात् अपने घर में मालिक बन कर आप कुछ भी कर सकते हैं। तो हरेक को अपना घर प्यारा है। आज संसार में मनुष्य जब अनेक जन्म लेकर अपनी भूमिका निभाते-निभाते दुःखी हो जाता है या थक जाता है तो उसको भी अपना घर याद आता है। इसलिये जब कोई जीवन में बहुत तंग हो जाता है तो कहता हैं कि इससे तो मोक्ष मिल जाए तो अच्छा है। मोक्ष की कामना करने वाले तीन प्रकार के लोग होते हैं:-

1. सदा काल का मोक्ष प्राप्त करने की चाहना रखने वाले। ऐसे व्यक्ति इस दुनिया में दुबारा आना ही नहीं चाहते हैं। वे कहते हैं कि देख लिया इस दुनिया में क्या है, अब तो बस मोक्ष मिल जाए।
2. दूसरे प्रकार के लोग हैं जो इस दुनिया से अल्प काल के लिए जाना चाहते हैं। वे सोचते हैं थोड़े समय के लिए जाकर के, रेस्ट कर के, फ्रेश होकर फिर से वापस आएँ। और,
3. तीसरे प्रकार के लोग हैं जो जाना ही नहीं चाहते, कहते हैं यह दुनिया बहुत अच्छी है, क्यों जाना चाहिये? वे दूसरों से भी यही कहते हैं यह दुनिया बहुत अच्छी है क्यों जाना चाहते हो, जाने का ख्याल मन से निकाल दो तो सब अच्छा ही अच्छा नज़र आयेगा।

जो यह सोचते हैं कि सदाकाल का मोक्ष मिल जाये तो क्या वे सही में सदा काल का मोक्ष चाहते हैं? क्या यह एक भागने की या पलायन करने की कमज़ोर वृत्ति नहीं है? इस बात पर एक छोटा सा उदाहरण याद आता है।

''एक बड़ी बिल्डिंग है जिसमें 50-60 फ्लैट्स हैं। बिल्डिंग के नीचे एक खेल का मैदान है। फ़ुरसत के टाइम में बिल्डिंग के बच्चे नीचे खेलते हैं। मान लो आप भी एक फ्लैट में रह रहे हो और आपका एक बच्चा है, वह भी आपसे कहता है, 'मुझे नीचे जाना है खेलने के लिये।' आप उस बच्चे को मना करते हुए कहते हैं कि उसके पास घर में इतने कम्प्यूटर गेम्स (computer games) हैं या प्ले स्टेशन हैं। ऊपर बैठ के खेलो, नीचे जाकर क्या करना है? क्या यह बात वह बच्चा मान जाएगा? नहीं। उसको उस वक्त कम्प्यूटर गेम्स भी अच्छी नहीं लगती है क्योंकि नीचे एक ऐसा खेल है जिसमें उसके सारे दोस्त खेल रहे

हैं इसलिए वह भी नीचे जाना चाहता है। उसको आप चाहे कितना भी समझाओ कि बेटा नीचे जो खेल चल रहा है, वह बड़ा रफ (rough) खेल है। किसी ने तुझे धक्का दिया या चोट पहुंचाई, या तुम हार गये तो फिर तुम्हें रोना आयेगा। लेकिन वह बच्चा कहेगा कि कोई बात नहीं। मैं नहीं रोऊंगा। नीचे जाने के लिए ज़िद करता है। समझाने के बाद आपने उसे कहा कि ठीक है, जाओ। और वह नीचे जाकर खेल में मगन हो जाता है। शुरू में जब वह जीत रहा था तो उसे बड़ा आनन्द आ रहा था। लेकिन जैसे-जैसे शाम होती गई, खेल में धोखाधड़ी बढ़ती गई, और एक समय ऐसा आया जब किसी ने उसे ज़ोर से धक्का देकर गिरा दिया जिससे वह चोटिल होकर ज़ोर से रोने लगता है। यह पता लगने पर आप क्या करेंगे ? आप नीचे जायेंगे और नीचे जाकर सभी बच्चों को कहेंगे कि सबने सारा दिन बहुत खेल लिया, अब अपने-अपने घर जाओ, कल फिर खेलना क्योंकि आपको मालूम है कि जब तक सब बच्चे ऊपर नहीं जायेंगे तब तक आपका खुद का बच्चा भी ऊपर नहीं जाएगा। इसलिये आप सबको घर भेज देते हैं और अपने बच्चे को भी आप ले जाते हैं। और घर ले जाकर उसको साफ-स्वच्छ करके, मरहमपट्टी करके कुछ खिला-पिला कर उसे सुला देते हैं। अगले दिन जब वह खेल पुनः शुरू होता है तो क्या आपका बच्चा फिर से जायेगा या नहीं जायेगा ? अवश्य जायेगा। ठीक इसी तरह हमारे पिता परमात्मा ने भी हमको कहा बच्चे ऊपर बैठे रहो, ऊपर इतनी शांति है, नीचे जाकर क्या करना है ? हमने भी कहा कि हमें नीचे जाना है। उस वक़्त शांति अच्छी नहीं लगती है। जब नीचे एक अच्छा खेल चल रहा है तब ऊपर कैसे बैठेंगे ? इसलिये जब हमें भी समझाया गया कि नीचे का खेल बड़ा रफ खेल है, कोई धक्का देगा, कोई धोखा देगा, कोई चोटें देगा, कोई दिल की चोटें देगा, तब हमने भी कहा कि कोई बात नहीं। इस तरह हम नीचे आए, खेल में मगन हुए, कई जन्म तक हम श्रेष्ठ भाव से खेलते रहे और बड़े आनंद में रहे, फिर बाद में धीरे-

धीरे ऐसी स्थिति आने लगती है जब बहुत धक्के लगने लगते हैं, धोखा मिलने लगता है, चोटें लगने लगती हैं, दिल की चोटें भी लगती हैं तब फिर दुःखी होकर हम भी रोना शुरू करते हैं और पुकारते हैं कि हे प्रभु, अब तो मोक्ष मिल जाए तो बहुत अच्छा। हमारी भी दुःख की पुकार उस तक पहुँचती है। तभी तो भगवान ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में यह वायदा दिया है

'यदा यदा हि धर्मस्य...' अपने दिये हुए वायदे के अनुसार भगवान आते हैं और आकर हमें यही कहते हैं – 'बच्चे, अब घर चलो। बहुत खेल खेल लिया है।' तभी हम देखते हैं कि दुनिया में अब होलसेल में मौत का तांडव शुरू हो गया है, कहीं सुनामी आ रही है और कभी तो बड़े से बड़े पैमाने पर भूकम्प आते हैं। बात असल में यह है कि यह विश्व एक महान परिवर्तन की प्रक्रिया से गुज़र रहा है। सभी आत्माओं को घर जाना ही है और जाकर थोड़ा समय विश्राम करके फिर जब यह दुनिया और प्रकृति सुव्यवस्थित हो जाएगी, उसके बाद आत्मायें वापस आना शुरू करेंगी। अब यह हमारे ऊपर निर्भर है कि किस ढंग से वापिस जाना है।''

दूसरी बात, मान लीजिए एक व्यक्ति अपने बच्चे को पढ़ा लिखाकर उसमें योग्यतायें और क्षमतायें भरकर उसे कहे कि अभी उसे कोई काम धन्धा करने की ज़रूरत नहीं और घर में सारा जीवन बैठे-बैठे पिता की मिलकियत से वह खा सकता है। तो क्या वह बच्चा प्रसन्न होगा? वह यही कहेगा कि जब मुझे घर में ही बैठना था तो मुझे पढ़ाया क्यों? इतनी क्षमता और योग्यताओं के साथ वह घर में बैठना नहीं चाहेगा। उसे तो वह स्थान चाहिए जहां वह अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का उपयोग कर सके। भले उसके पिता के पास असीम धन हो। उसकी योग्यताओं के आधार पर जब उसका फल पहली पगार के रूप में प्राप्त होता है तो जो सुख और खुशी उसको मिलती है वह पिता के पैसे सहज रूप में प्राप्त होने से कई गुना अधिक होती है। ठीक उसी प्रकार आत्मा में भी इतनी क्षमता और योग्यता है वह मोक्ष में परमधाम में बैठने के लिए नहीं है। इसलिए परमात्मा ने यह दुनिया बनाई ताकि आत्मा अपनी योग्यताओं और क्षमताओं का उपयोग कर सके और उसके फल को अनुभव कर सके। जब कोई उसे सकारात्मक दिशा में लगाकर उसका सुख, खुशी और आनंद आदि अनुभव करता है वह मोक्ष में बैठने पर भी नहीं होती है।

जिस तरह दिन के बाद रात आती है तब क्षणिक ही सही परन्तु कुछ पल के लिए विश्राम तो लेना ही पड़ता है। कोई क्रिया बिना रुके निरंतर नहीं चल सकती। संसार का यह आवागमन का खेल भी निरंतर नहीं चलता, समय आता है जब कुछ समय के लिए अवकाश लेना पड़ता है। सृष्टि रंगमंच पर अपना पार्ट निभाने के पश्चात् हमें भी लौटना

पड़ता है। फिर निश्चित समय पर आत्मायें धीरे-धीरे वापस लौटकर पुनः सक्रिय रुप से अपनी भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार इस संसार में आत्मायें बढ़ती जाती हैं। जाने के समय सब एक साथ जाते हैं परन्तु आने के समय सब इस संसार में अपने-अपने समय पर आते हैं। इस प्रकार इस संसार की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगती है और जब ऊपर से सारी आत्मायें नीचे आ जाती हैं तब परमात्मा भी अपने वायदे अनुसार आकर सबको साथ ले जाते हैं।

जैसे किसी व्यक्ति का परिचय लेते हैं वैसे आज आत्मा के परिचय में हमने पाँच बातों को देखा कि

1. उस चैतन्य शक्ति का **नाम** है आत्मा। आत्मा कहो, रूह कहो, सोल (Soul) कहो, शक्ति कहो, या एनर्जी (Energy) कहो।

2. उसका **स्वरूप** (Identity) अति सूक्ष्म दिव्य ज्योति बिन्दुस्वरूप है।

3. उसकी **योग्यताएं** (Qualification) सात गुण, ज्ञान, पवित्रता, प्रेम, शांति, सुख, आनंद और शक्ति।

4. उसका **अस्थायी पता** (temporary address) है भृकुटी के मध्य और **स्थायी पता** (permanent address) है शांतिधाम।

5. **वर्तमान कार्य** (present occupation) है कि इन सातों गुणों से स्वयं को संपन्न बनाकर अपने जीवन को जीना। यह है मानव जीवन जीने का उद्देश्य।

यही है आत्मा का सम्पूर्ण परिचय।

आत्म अनुभूति की विधि

आराम की मुद्रा में बैठ जायें... आंखें खुली हों... ध्यान भृकुटी के मध्य एकाग्र करें... आत्मचिंतन के आधार से आत्मा के सात गुणों को महसूस करेंगे। अपने अंतर्चक्षुओं द्वारा आत्मा के दिव्य स्वरूप को देखें... सर्वप्रथम मन को बाह्य सभी बातों से समेट लें... और अपने मन को आत्म भाव में स्थित करें... मैं आत्मा भृकुटी के मध्य में अति सूक्ष्म सितारे के रूप में चमक रही हूँ... मैं आत्मा सर्व कर्मेन्द्रियों की मालिक हूँ... अतंर्चक्षुओं से स्वयं को देखें... मैं आत्मा शुद्ध चैतन्य शक्ति हूँ... मैं ज्योति पुंज हूँ... अपने चारों ओर दिव्य प्रकाश का आभा मण्डल देख रही हूँ... मैं आत्मा अपने असली स्वरूप में शुद्ध पवित्र स्वरूप हूँ... मेरे चारों ओर पवित्रता का प्रकाश फैला हुआ है... यही मेरा वास्तविक स्वरूप है... मुझ आत्मा का स्वधर्म शांति है... शांति मेरा गुण धर्म है... मेरा मन शांत होता जा रहा है... मैं

अपने चारों ओर शांति के प्रकम्पन महसूस कर रही हूँ... इसी शांति में प्रसन्नता समायी हुई है... मैं एक अलौकिक खुशी का अनुभव कर रही हूँ... एक प्रसन्नतापूर्ण शांति की ऊर्जा मेरे रोम रोम में प्रवाहित हो रही है... कितना सुखद अनुभव हो रहा है... इसी शांति में सच्चा सुख समाया हुआ है... जो सुख अतीन्द्रिय सुख है... इसी शांति में परम आनंद समाया हुआ है... मैं आत्मा अपने असली स्वरूप में सत्-चित्-आनंद स्वरूप हूँ... कितना सुन्दर अनुभव है... मैं आत्मा अपने सतोगुण स्वरूप में स्थित हूँ... यही मेरी वास्तविक्ता है... मैं आत्मा अजर, अमर, अविनाशी शक्ति हूँ... मैं आत्मा अपने सातों गुणों की ऊर्जा को स्वयं में महसूस कर रही हूँ... मैं आत्मा सातों गुणों की शक्ति से भरपूर होती जा रही हूँ... मैं अपने ध्यान को कुछ क्षण के लिए इसी सतोगुणी स्वरूप में स्थित करती हूँ... मैं आत्मा शांत हूँ, शुद्ध हूँ और शक्ति स्वरूप हूँ... मैं आत्मा स्वयं को भृकुटी के मध्य में देख रही हूँ... और यह सातों गुणों की शक्ति को अपनी हर कर्मेन्द्री में प्रवाहित करती हूँ... अब मैं सारे दिन हर कर्म में, व्यवहार में आत्म शक्ति को प्रवाहित करूंगी... ओम् शांति, शांति, शांति...

भगवानुवाचः

मुझे इन चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकते परन्तु ज्ञान चक्षु से समझ सकते हैं। मैं जो हूँ, जैसा हूँ वैसे जान कर याद करने से तुम सर्व पापों से मुक्त हो जायेंगे।

परमात्मा के सत्य स्वरूप का रहस्य उद्घाटन

राजयोग में आत्मा का सम्बन्ध परमपिता परमात्मा के साथ जोड़ा जाता है। उसके लिए जितना आत्मा को समझना अति आवश्यक है उतना ही परमपिता परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान होना भी आवश्यक है। परमात्मा के स्वरूप के विषय में दुनिया में इतना अधिक मतभेद है कि सत्य विलुप्त हो गया है, इसलिए आज ईश्वर के नाम पर मनुष्य अनेक धर्मों में बंट गये हैं। विश्व-बंधुत्व या विश्व एक परिवार या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना कल्पना मात्र ही रह गई है। ईश्वर के बारे में सत्य ज्ञान न होने के कारण ही मनुष्यों की यह शिकायत रहती है कि ईश्वर को याद करने बैठते हैं लेकिन मन नहीं लगता क्योंकि मन कहां लगाना है, यह मालूम ही नहीं है। इस पर मुझे एक बात याद आती है:-

''एक बार मुझे एक बहन मिली और उसने कहा कि मेरा बेटा 17 साल का है और वह पूछता है कि हिन्दू धर्म में इतने भगवान क्यों हैं और क्रिश्चियन धर्म में एक ही गॉड (God) क्यों है ? माँ ने बेटे को समझाना चाहा कि हिन्दू धर्म में ये सारे भगवान हैं। लड़के ने पूछा, इतने सारे भगवान कैसे हो सकते हैं ? भगवान तो एक होना चाहिए ना ? या अगर ये सब भगवान हैं, फिर इन सब में बड़ा कौन है ? जैसे परिवार में भी एक बड़ा होता है। तो इनमें बड़ा कौन है ? माँ उस बेटे के प्रश्नों का जवाब नहीं दे सकती थी। माँ को इस बात की परेशानी थी कि वह अपने बच्चे को कैसे समझाये कि ये सभी भगवान हैं, जिससे वह इसे सहजता से स्वीकार कर सके। इन प्रश्नों का उत्तर न मिलने के कारण माँ जब भी अपने बच्चे से मंदिर चलने के लिए कहती तो वह लड़का यही कहकर मना कर देता कि मंदिर जाने के बाद वह इतना मूंझ (confused) जाता है कि वह समझ नहीं पाता कि अपने मन को किस पर एकाग्र करे। जब उसका मन एकाग्र नहीं होता तो

उसे लगता है वह अपना समय बरबाद कर रहा है। इस बात से उसकी माँ को बहुत दु:ख होता है कि उसका बेटा नास्तिक बनता जा रहा है। इसके लिए वह खुद को ज़िम्मेदार समझती कि इसका उत्तर मुझे स्वयं ही मालूम नहीं है, इसलिए तो मैं उसे समझा नहीं पा रही हूँ।''

संभवत: यह समस्या उस एक माँ की ही नहीं है। यदि कल आपका बच्चा भी आपसे यही सवाल पूछे कि हिन्दुओं में इतने भगवान क्यों हैं और दूसरे धर्मों में एक ही ईश्वर क्यों है? और आप भी उसकी जिज्ञासा को संतुष्ट नहीं कर पायें और वह भी यही कहकर मंदिर जाना छोड़ दे कि मंदिर जाने से उसका समय बरबाद होता है क्योंकि उसे मालूम ही नहीं मन को कहाँ एकाग्र करना है। तो क्या आपको दु:ख नहीं होगा? इसी वजह से हमें ईश्वर के विषय में सत्य जानना ज़रूरी हो गया है ताकि हम आज की पीढ़ी को ईश्वर और उसकी शक्ति के विषय में स्पष्ट कर सकें। मन को भटकाने की बजाय, ईश्वर में यथार्थ रीति से एकाग्र कर सकें।

दूसरा, जैसे एक बैटरी जब सम्पूर्ण डिस्चार्ज हो जाती है तो उसको जैनरेटर के साथ ही जोड़ना पड़ता है, वैसे ही आज आत्मा रूपी बैटरी एकदम डिस्चार्ज हो गई है इसलिए उसे परमात्मा रूपी जैनरेटर के साथ जोड़ने के लिए परमात्मा का सत्य स्वरूप और उसका सम्पूर्ण परिचय जानना अति आवश्यक है, नहीं तो मात-पिता होते हुए जैसे अनाथ बच्चे भटकते रहते हैं वैसे आज मानव भी जीवन में अनाथ महसूस कर रहा है और उस मात-पिता का सुख अनुभव करना चाहता है। इस संबंध में एक ब्राह्मण की कहानी इस प्रकार है:-

''एक ब्राह्मण था, वह पूजा पाठ में, ईश्वर में बहुत आस्था रखता था। एक दिन उसका बेटा बीमार हुआ। जब उसे डॉक्टर के पास ले गए, डॉक्टर ने जवाब दे दिया कि यह केस अब उनके हाथ में नहीं रहा। अब तो ऊपर वाला ही उसको बचा सकता है। वह श्री कृष्ण का भक्त था इसलिए दिन- रात श्री कृष्ण की भक्ति करने लगा। भक्ति के साथ-साथ वह मन ही मन कई प्रकार की मन्नतें भी करने लगा और पुकारता रहा - हे राधेश्याम, मेरे बेटे को बचा लो! हे कृष्ण कन्हैया, मेरे बेटे को बचा लो! दो दिन बीत

गये.....उतने में उनके घर एक पड़ोसी ने आकर ब्राह्मण से कहा, अरे, तुम कब से श्री कृष्ण को याद कर रहे हो लेकिन ऐसे समय पर श्रीकृष्ण को थोड़े ही याद करना चाहिये। ब्राह्मण ने कहा, क्यों फिर किसे याद करूँ? पड़ोसी ने कहा ऐसे समय पर तो माँ अम्बे को पुकारना चाहिये। उसका हृदय करुणा वाला होता है। तू अम्बे माँ को याद कर। देख तेरी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी। ब्राह्मण को भी लगा कि शायद वह सही बात कह रहा है। उसने भी तुरंत अम्बे मां की पूजा आरम्भ कर दी और 'हे अम्बे माँ, हे माँ, हे माँ' कह कर पुकारने लगा। वह ब्राह्मण दो दिन तक माँ की भक्ति करता रहा। तब ब्राह्मण के पास उसका एक मित्र आया और उसे कहने लगा, अरे, तू कब से माँ को पुकार रहा है परन्तु ऐसे समय में माँ को थोड़े ही पुकारना चाहिये। ब्राह्मण ने कहा - फिर किसको पुकारना चाहिए। मित्र कहने लगा, ऐसे समय में तो विघ्न-विनाशक गणेशजी को याद करके देख, तेरा विघ्न ऐसे टल जाएगा जैसे था ही नहीं। उसने गणेशजी की दिल से भक्ति करनी प्रारंभ कर दी। दो दिन के बाद एक और पड़ोसी उसके पास आया और कहने लगा कि सुना है आजकल गायत्री मंत्र का बड़ा चमत्कार दिखाई देता है। तू गायत्री मंत्र का जाप कर, शायद तेरा बेटा ठीक हो जाए। ब्राह्मण ने भी सोचा कि सुना तो है कि गायत्री मंत्र के बड़े चमत्कारिक अनुभव हैं। उसने बड़ी तीव्रता से भावनावश होकर, कातर भाव से गायत्री मंत्र का जाप किया। वहीं उसका एक और मित्र उसे कहने लगा कि सुना है पड़ोस के गांव में एक फकीर बाबाजी पधारे हैं, उनके पास ऐसी भस्म है जो खिलाने से कैसा भी रोग गायब हो जाता है। चलो बच्चे को लेकर उस बाबाजी के पास चलते हैं। वे लोग बच्चे को लेकर फकीर बाबा के पास गये, उस बाबा ने बच्चे को भस्म खिलाया और बच्चे को लेकर घर आये तो दो दिन बाद ही बच्चा मर गया।''

अब इतनी भक्ति करने के बाद भी वह बच्चा मर गया क्योंकि शायद उस ब्राह्मण को यह मालूम ही नहीं था कि किसको याद करने से क्या प्राप्ति होगी या ईश्वर के विषय में अज्ञानता इसका कारण था। आज संसार में ईश्वर के बारे में यही कहा जाता कि जितने मुख उतनी बातें, जितने दिमाग उतने विचार। मनुष्य अनेक मत मतान्तर में इतना उलझ गया है कि उसे यह भी पता नहीं है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं! तभी दुनिया में

कहा गया है कि ज्ञान के बिना गति नहीं इसलिए मनुष्य परमात्म प्राप्ति का सुख अनुभव नहीं कर पाता है और वह मंदिर-मंदिर भटक रहा है इसी आश में कि कहीं से कोई प्राप्ति हो जाए।

एक बार एक कार्टून देखा जिसमें एक व्यक्ति अखबार पढ़ रहा था। उसके हर कॉलम में ईश्वर के विषय में कुछ लिखा हुआ था।

पहले कॉलम में लिखा था - **प्रकृति ईश्वर है।**

दूसरे कॉलम में लिखा था - **आत्मा सो परमात्मा। हम सो, सो हम।**

तीसरे कॉलम में लिखा था - **ब्रह्म ईश्वर है।**

चौथे कॉलम में लिखा था - **ईश्वर सर्वव्यापी है, कहाँ नहीं है? कण-कण में ईश्वर है।**
पाँचवें कॉलम में लिखा था - **परमात्मा निराकार है। न नाम है, न रूप है, न आकार है।**
छठे कॉलम में लिखा था - **भगवान तो साकार है। जितने भी इष्ट देवी देवता हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं।**

और नीचे बड़े अक्षरों में लिखा था - **भगवान जैसा कुछ है ही नहीं। अगर भगवान है तो सबूत दो। जिस प्रकार विज्ञान ने हर बात का सबूत दिया है, ईश्वर के विषय में भी सबूत दो।**

अब जो व्यक्ति यह समाचारपत्र पढ़ रहा था, सारे कॉलम पढ़ने के बाद उसने क्या निर्णय लिया होगा?

सारी बातें पढ़ने के बाद मनुष्य इतना उलझ गया कि वह सोचने लगा कि सत्य किसको माने? क्या ये सभी सत्य हैं? अथवा इन सबमें से एक ही सत्य है? या यह समझा जाए कि सत्य कुछ और है, जिसको इन्सान ने अभी तक समझा ही नहीं? जितना ही सत्य को समझने का प्रयत्न किया गया उतना ही दिन प्रतिदिन वह सत्य से दूर ही होता गया। इस संदर्भ में मुझे एक कहानी याद आती है कि यह सूत इतना क्यों उलझ गया :-

''एक बार पाँच सूरदास थे, उन्हें कहा गया आप हाथीघर में जाकर देखो हाथी कैसा है ? थे तो नेत्रहीन, उन्हें हाथीघर में ले जाया गया और जिसके हाथ में जो आया उन्होंने हाथी का वैसा ही वर्णन कर दिया। एक ने पैर पकड़े तो कहा, हाथी खंभे जैसा है। दूसरे ने पीठ पकड़ी तो कहा, हाथी दीवार जैसा है। तीसरे ने पूँछ पकड़ी तो कहा, हाथी

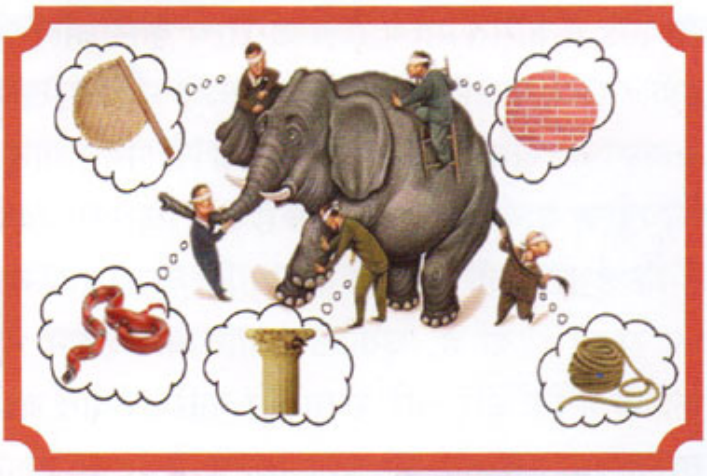

रस्सी जैसा है। चौथे ने सूंड पकड़ी तो कहा, हाथी साँप जैसा है। और पांचवे ने कान पकड़े तो कहा हाथी पंखे जैसा है। अब आखिर हाथी कैसा होता है ? क्या ये पाँचों ही सत्य हैं ? या पाँच में से एक सत्य है ? देखने वाला इन्सान तो यही कहेगा ना कि हाथी, इन पांचों ने जो वर्णन किया उनसे भिन्न है। इस कहानी को थोड़ा आगे बढ़ाते हैं कि मान लो उन पांचों सूरदासों को कहा जाये कि एक छठा सूरदास दूर बैठा है उसको जाकर बताना है कि हाथी कैसा होता है ? वे पाँचों सूरदास एक-एक करके अपनी महसूस की हुई बात उस छठे सूरदास को सुनाते हैं, सारी बातें सुनने के बाद वह छठा सूरदास क्या समझ सकेगा कि हाथी कैसा है ? वह कितना मूँझ जायेगा और अगर उसको एक सातवें सूरदास को सुनी हुई बातों को सुनाना हो कि हाथी कैसा है तो वह हाथी के विषय में क्या वर्णन करेगा और वह सातवां सूरदास तो शायद कुछ भी समझेगा नहीं और यही कहेगा कि ऐसा कोई प्राणी होता ही नहीं।''

इसी तरह आज मानव भी जब भगवान के मंदिर में जाते हैं तो यही गीत गाते हैं कि नयनहीन को राह दिखाओ प्रभुजी..... या हम अंधों की लाठी बनो प्रभु..... अर्थात् ये दो नयन तो हैं फिर भी जब मनुष्य अपने आप को नयनहीन कहते हैं तो कौन-से नयन की बात करते हैं? वास्तव में मनुष्य ज्ञान के दिव्य चक्षु की मांग करते हैं, ये दिव्य नेत्र न होने के कारण आज हर व्यक्ति, सूरदास की तरह नयनहीन है। इस दिव्य चक्षु के बिना मानव भी ईश्वर के सही रूप को महसूस करने का प्रयत्न करते हैं। हो सकता है कि जो धर्मात्मा होकर गये हैं उन्होंने जिसमें भावना रखी या जिससे कुछ प्राप्ति हुई, उसी को परमात्मा मान लिया। यह भी हो सकता है कि उन्होंने परमात्मा के कुछ गुणों को महसूस किया और उस आधार पर उन्होंने ईश्वर के बारे में लोगों को बताना शुरू कर दिया या अपनी-अपनी कल्पना के आधार पर उन्होंने ईश्वर के विषय में ज्ञान देना शुरू कर दिया। परन्तु जिन मनुष्यों को उन्होंने समझाना चाहा, वे भी दिव्य चक्षुविहीन थे इसलिए उन धर्मात्माओं की बातें वह कैसे समझ सकते थे। उन्होंने धीरे-धीरे अपने समय के बच्चों को समझाने का प्रयत्न किया और इस तरह यह सूत उलझता ही गया। आज ईश्वर के बारे में इतने मत मतान्तर हो गए हैं कि आज का मनुष्य यही कहने लगा कि आखिर सत्य क्या है? क्या दुनिया के सभी मत-मतान्तर सत्य हैं? अथवा इनमें

से कोई एक मत सत्य है? या सत्य कुछ और ही है जिसको अभी तक हमने समझा ही नहीं? जब तक ज्ञान के दिव्य चक्षु नहीं खुलते हैं, तब तक हम ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को समझ नहीं सकते। तभी तो भक्त गाते हैं **'आज अंधेरे में है इन्सान...'** सत्य की खोज में मानव भटक रहा है और जब वह थक कर हारने लगता है तब यही कह देता है कि ईश्वर है ही नहीं या कहेगा कि क्या आप सबूत दे सकते हो? विज्ञान ने तो हर बात का सबूत दिया है, क्या आध्यात्मिक विज्ञान भी ईश्वर का सबूत दे सकता है? यही कारण है कि धीरे-धीरे संसार में नास्तिकवाद बढ़ता जा रहा है क्योंकि उन्हें परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान किसी ने दिया ही नहीं और न वे स्वयं ही परमात्मा को अनुभव कर पाये हैं।

हमारा कहने का यह भाव नहीं है कि आप अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़ कर अब ब्रह्माकुमारियों द्वारा दिये हुए नये मत को स्वीकार कर लो। नहीं। जिस तरह जौहरी कसौटी पर कस कर देखता है कि सोना कितने कैरेट का है फिर उसकी कीमत निर्धारित करता है। उसी तरह ईश्वर को परखने की भी एक सर्वमान्य कसौटी है जिस पर आप अपनी मान्यता को कस कर देख सकते हैं कि क्या वह सत्य हैं क्योंकि कल अगर कोई भी मनुष्य आकर कहे कि मैं ही कल्कि अवतार हूँ या भगवान हूँ तो क्या हम उसे भगवान मानने लगेंगे? यह तो अंधश्रद्धा हो जायेगी या कहीं भगवान आकर चला भी जाये और जब तक हमें पता चले तब तक बहुत देर हो जाए, फिर तो पश्चाताप के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आएगा। इसलिए वर्तमान समय में ईश्वर के बारे में सत्य परिचय होना बहुत जरूरी हो गया है। परमात्मा के स्वरूप को समझने की कसौटी की मुख्य पाँच बातें निम्नलिखित हैं:

1. सर्व धर्म मान्य - सबसे पहली कसौटी यह है कि **ईश्वर उसी को कहा जाना चाहिये जो सर्व धर्म मान्य हो।** जिसको सभी धर्म वाले ईश्वर के रूप में स्वीकार करें कि यह सत्य है। ऐसा नहीं कि हिन्दुओं का 'भगवान' अलग है, मुसलमानों का 'अल्लाह' अलग है, तो क्रिश्चियनों का 'गॉड' अलग है, नहीं। ईश्वर एक है इसीलिये जिसको सभी धर्म वालों ने ईश्वर के रूप में स्वीकार किया हो उसी को ही परम सत्य कहा जाना चाहिये।

2. सर्वोच्च शक्ति - दूसरी कसौटी है कि **परमात्मा एक सर्वोच्च शक्ति है।** जिसके ऊपर और कोई शक्ति न हो, जिसका कोई माता-पिता न हो, कोई बन्धु-गुरु-शिक्षक न हो, लेकिन वह स्वयं ही सर्व के माता-पिता-बन्धु-गुरु-शिक्षक-रक्षक हैं अर्थात् जो इस दुनिया की सर्वोच्च शक्ति हो उसी को परमात्मा कहेंगे।

3. सर्वोपरि - तीसरी कसौटी है कि **परमात्मा सर्वोपरि हो - सबसे परे हो।** सर्वोपरि कहने का भाव यह है कि मनुष्य आत्माएँ तो संसार के अनेक चक्रों में आती हैं जबकि परमात्मा इन सभी चक्रों से परे है अर्थात् सभी चक्रों से ऊपर है। मनुष्य आत्माएँ जन्म और मृत्यु के चक्रों में, देह और देह के सम्बन्धों के चक्रों में, कर्म और कर्म के फल के चक्रों में, पाप और पुण्य के चक्रों में और सुख-दु:ख के चक्रों में आती हैं लेकिन परमात्मा इन **सभी चक्रों से ऊपर** है। सर्व बंधनों से मुक्त हैं।

4. सर्वज्ञ - चौथी कसौटी है कि **परमात्मा सर्वज्ञ है।** सर्वज्ञ का अर्थ है कि वे सब कुछ जानते हैं, ज्ञाता हैं। जिनके पास संसार के आदि-मध्य-अंत का ज्ञान है, उन्हें **त्रिकालदर्शी** कहते हैं। जिनके पास तीनों लोकों का ज्ञान है, उन्हें **त्रिलोकीनाथ** कहते हैं। वे मनुष्य को भी ज्ञान का तीसरा नेत्र प्रदान करते हैं इसलिए उन्हें **त्रिनेत्री** कहते हैं और वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भी रचयिता हैं इसलिए उन्हें **त्रिमूर्ति** कहते हैं। अंग्रेज़ी भाषा में 'गॉड' उध्ञ शब्द में तीन अक्षर होते हैं। '**G**' से जनरेटर अर्थात् स्थापक, '**O**' से

ऑप्रेटर अर्थात् पालक और 'D' से डिस्ट्रॉयर अर्थात् संहारक हैं। इस तरह वे - **त्रिकालदर्शी, त्रिलोकीनाथ, त्रिनेत्री और त्रिमूर्ति हैं।**

5. सर्व गुणों और शक्तियों में अनन्त - पाँचवीं कसौटी है कि **परमात्मा सर्व गुणों में अनन्त हो। सर्वशक्तिमान हो।** जिनके लिये माँ शारदा ने कहा कि सागर की स्याही बनाओ, जंगलों की कलम बनाओ, धरती का कागज़ बनाओ, और स्वयं माँ सरस्वती परमात्मा की महिमा लिखे तो भी परमात्मा की अपार महिमा है जो लिखी नहीं जा सकती। इतनी अनंत महिमा जिसकी है उसको कहेंगे परमात्मा। संक्षेप में परमात्मा को परखने की कसौटी के पाँच बिंदु हैं -

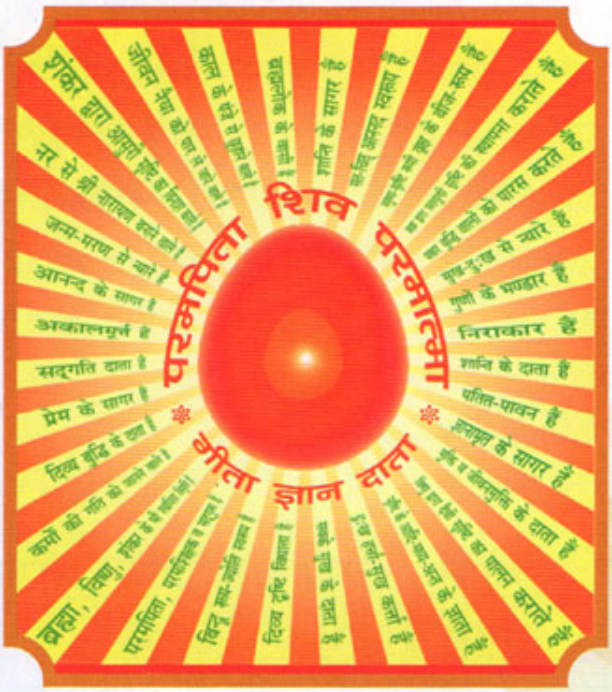

1) सर्व धर्म मान्य, 2) सर्वोच्च शक्ति, 3) सर्वोपरि, 4) सर्वज्ञ और 5) सर्वगुणों में अनंत।

अब हम यह देखेंगे कि इन पाँचों बातों की कसौटी के आधार पर परमात्मा के विषय में कौन-सा मत सही है। सबसे पहली बात कि **प्रकृति ही परमेश्वर है** तो क्या प्रकृति इन पाँचों बातों पर खरी उतरती है? क्या प्रकृति को परमेश्वर के रूप में सभी धर्म वाले स्वीकार करेंगे? एक तरफ तो हम कहते हैं कि परमात्मा रचयिता है और प्रकृति उसकी रचना है दूसरी ओर यह मान लेते हैं कि प्रकृति ही परमात्मा है, तो यह कैसे संभव है? यह भी एक मान्यता है कि इस संसार का खेल तीन सत्ताओं - पुरुष, प्रकृति और परमपुरुष के बीच चलता है और ये तीनों सत्ताएँ अनादि और अविनाशी हैं। पुरुष और प्रकृति में समय प्रति समय परिवर्तन आता रहता है लेकिन उनका विनाश नहीं हो सकता है। प्रकृति इस संसार रुपी

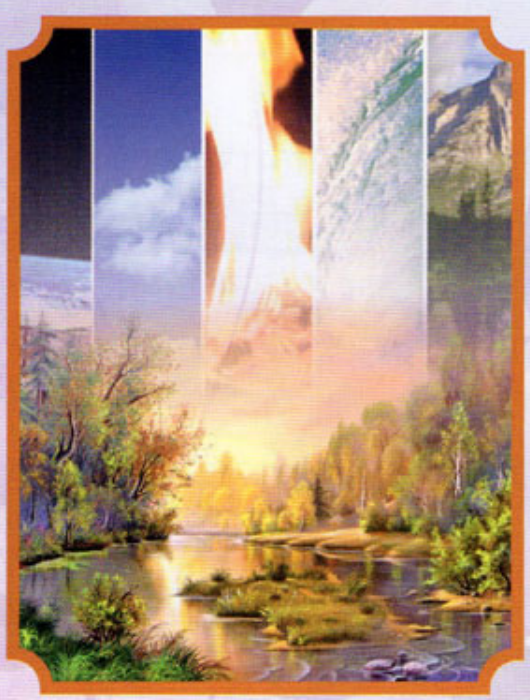

खेल की एक सत्ता है और परमात्मा भी एक सत्ता है। जब दोनों अलग-अलग सत्तायें है तो एक कैसे हो सकतें हैं? दूसरा, क्या प्रकृति को सर्वोच्च शक्ति कह सकेंगे? किसी कवि ने एक बहुत सुंदर गीत लिखा है: **'ये कौन चित्रकार है, ये कौन चित्रकार'** कवि पूछता है कि जिसने प्रकृति का इतना सुंदर चित्र खींचा है वह चित्रकार कौन है? अब प्रश्न उठता है कि आखिर सच्चाई क्या है? क्या 'प्रकृति ही परमेश्वर है' कहना सत्य है या 'प्रकृति परमेश्वर की रचना है,' यह कहना सत्य है? विवेक यही कहता है कि प्रकृति परमेश्वर की रचना है यह कहना सत्य है। अगर प्रकृति परमेश्वर की रचना है यह कहना सत्य है तो प्रकृति को परमेश्वर मानना अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण ही किसी ने कह दिया कि प्रकृति ही परमेश्वर है.....

दूसरी मान्यता है कि **आत्मा सो परमात्मा है या हम सो, सो हम** अब इस मान्यता को कहाँ तक सत्य माना जा सकता है? क्या आत्मा ही परमात्मा है? अगर आत्मा ही परमात्मा है, फिर मंदिरों में जाकर हम क्यों कहते हैं – **'तुम मात-पिता हम बालक तेरे, तुमरी कृपा से सुख घनेरे.....'** अब सत्य क्या है? आत्मा ही परमात्मा है या आत्मा परमात्मा की संतान है? दोनों बातें तो सही नहीं हो सकतीं, या तो हम परमात्मा हैं या फिर हम परमात्मा की संतान हैं। अब विवेक यही कहता है कि आत्मा परमात्मा की सन्तान है, यह कहना सत्य है। कहने का भाव यह है कि आत्मा सो परमात्मा कहना भी अज्ञान है। दूसरे, कई लोग यह समझते हैं कि अगर हम जीवन में पुरुषार्थ करेंगे तो हम परमात्मा बन जायेंगे। अब परमात्मा कोई बनने की चीज़ नहीं है। यह कोई डिग्री (degree) नहीं है कि किसी इन्सान ने पुरुषार्थ कर लिया और उस डिग्री को हासिल कर लिया। इस संसार में मनुष्य अपने पुरुषार्थ से कुछ भी बन सकता है या कोई भी रुतबा या हैसियत (Post, Position) अपनी मेहनत से प्राप्त कर सकता है लेकिन कोई भी इन्सान खुद का बाप नहीं बन सकता। वह पिता जैसा बन सकता है। पिता जैसा बनकर पिता का कारोबार संभाल सकता है या पिता समान बनकर छोटे भाई-बहनों को बड़ा कर सकता है परन्तु जब वह अपने पिता के सामने जाता है तो वह बच्चा ही रहेगा। खुद, खुद का पिता हो जाए ऐसा नहीं हो सकता। दूसरे का पिता बन सकता है। दूसरी बात - मनुष्य जैसे कर्म करता है उसको वैसे खिताब (टाइटल) मिल जाते हैं। किसी ने पाप का कार्य किया तो कहेंगे यह **पापात्मा**

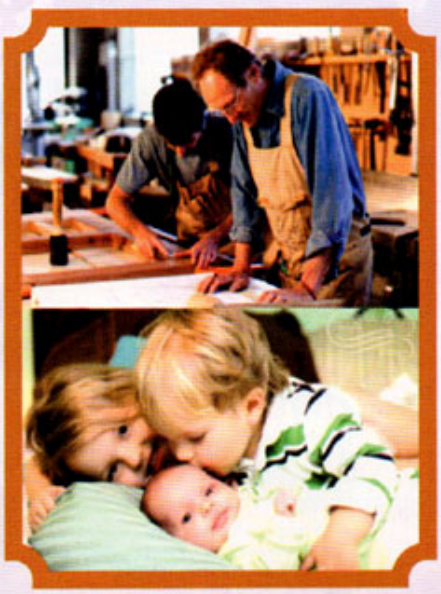

है, किसी ने पुण्य का कार्य किया तो कहेंगे यह **पुण्यात्मा** है। किसी ने महान कर्म किया तो कहेंगे यह **महात्मा** है। किसी ने धर्म का कार्य किया तो कहेंगे यह **धर्मात्मा** है। किसी ने दिव्य कर्म किया तो कहेंगे यह **दिव्यात्मा** अर्थात् **देवात्मा** है। पापात्माएँ अनेक हैं, पुण्यात्माएँ अनेक हैं, महात्मा अनेक हैं, धर्मात्मा अनेक हैं, दिव्यात्माएँ अर्थात् देवात्माएँ भी अनेक हैं। ये सभी आत्मायें है, हम पुण्य आत्मा कहेंगे पुण्य परमात्मा नहीं कहेंगे, इसी प्रकार हम महान आत्मा कहेंगे, महान परमात्मा नहीं कहेंगे। इसी तरह धर्म आत्मा, देव आत्मा कहेंगे, देव परमात्मा भी नहीं कहेंगे। भारत में तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का गायन है। ये सभी दिव्य आत्मायें है इनमें परमात्मा कोई भी नहीं हैं। तो परमात्मा कोई बनने की चीज़ नहीं है। उस पिता परमात्मा जैसा हम बन सकते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम ही पिता परमात्मा हो गए। परमात्मा एक है। परमात्मा के लिए कभी बहुवचन 'परमात्माएँ ' शब्द का प्रयोग नहीं होता। तीसरी बात, कई लोग समझते हैं कि जैसे सागर से बुदबुदा निकला और सागर में समा गया वैसे ही हम भी परमात्मा के ही अंश हैं, उनसे निकले हैं और अंत में उसी में समा जाएँगे। यह मान्यता कहां तक सत्य है? सागर से बुदबुदा निकला और सागर में समा गया, यह संभव है क्योंकि वह तत्व (matter) है। तत्व, तत्व में समा सकता है लेकिन आत्मा या परमात्मा कोई तत्व नहीं हैं। आत्मा और परमात्मा चैतन्य शक्ति हैं, एक आध्यात्मिक ऊर्जा (spiritual energy) हैं, और एनर्जी अथवा ऊर्जा को न तो पैदा किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है (energy is neither created or destroyed), आत्मा एक अजर, अमर, अविनाशी शक्ति है जो ज़र-ज़र नहीं होती, ना ही मरती है और जिसका अस्तित्व सदा बना रहता है। आत्मा और

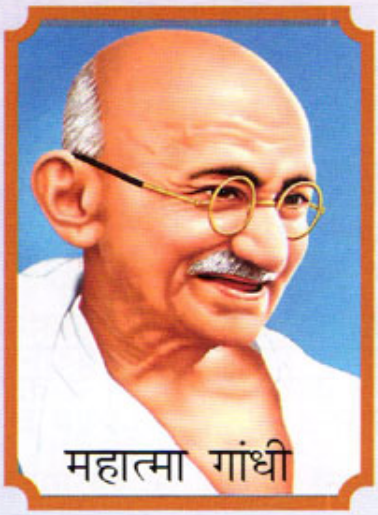

परमात्मा दोनों को शाश्वत (eternal) शक्ति माना जाता है। जिसकी न रचना होती, न ही विनाश होता। तो जो सदा शाश्वत है, अविनाशी है वह परमात्मा में मिल कैसे सकती है? जब बुदबुदा सागर में मिल जाता है तो बुदबुदे का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। बुदबुदा, बुदबुदा नहीं रहता वह सागर में समा जाता हैं। अगर आत्मा परमात्मा में समा गई फिर वह अविनाशी कैसे ठहरी? ऐसा समझने से तो आत्मा का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। अब क्या '**आत्मा सो परमात्मा**' कहना सत्य है या आत्मा परमात्मा की संतान है यह कहना सत्य है? विवेक यही कहता है कि हम आत्मा परमात्मा की संतान हैं, यह कहना सत्य है, इसका मतलब यह हुआ कि **आत्मा सो परमात्मा या हम सो, सो हम कहना नादानी है।** अतः इस मान्यता को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

तीसरी मान्यता है कि **ब्रह्म ही ईश्वर है**। अब हमने पिछले अध्याय में यह बात देखी कि ब्रह्म महतत्व पांच तत्वों की दुनिया से परे एक छठा महतत्व है जहां सभी आत्मायें और परमात्मा निवास करते हैं। उसको परमधाम भी कहते हैं। तो क्या परमात्मा तत्व है या उस तत्व में निवास करने वाले हैं? साथ ही साथ यह मान्यता भी चली आ रही है कि ईश्वर पारब्रह्म में रहने वाला है, तभी तो कहा जाता है कि **पारब्रह्म परमेश्वर** अर्थात् पार ब्रह्म में रहने वाले ईश्वर। भ्रम के कारण हम ईश्वर के विषय में विरोधी बातें करते आये हैं इसलिए निर्णय हमें करना है कि क्या ब्रह्म को ही ईश्वर मान लेना सत्य है या पारब्रह्म अर्थात् ब्रह्मलोक में रहने वाली सर्वोच्च चैतन्य सत्ता को परमेश्वर कहना सत्य है? विवेक यही मानता है कि परमात्मा पार ब्रह्म में रहने वाले परमेश्वर हैं। जैसे एक मकान और मकान में रहने वाले दोनों अलग होते हैं। मकान ही मकान-मालिक नहीं है, मकान में रहने वाला ही मकान-मालिक है। इसी तरह ब्रह्म तो रहने का स्थान है, परमात्मा उस ब्रह्मलोक के निवासी हैं। अतः 'ब्रह्म ही ईश्वर है' यह मान्यता भी अज्ञानता है ।

चौथी मान्यता के अनुसार **परमात्मा सर्वव्यापी हैं, कण-कण में व्याप्त हैं।** कहाँ नहीं हैं? अब इस मान्यता की सत्यता की परख की जाए कि क्या ईश्वर कण-कण में व्यापक है? क्या सबमें ईश्वर है? क्या कूड़े-कचरे, गंद-गटर सबमें ईश्वर है? क्या हमारा विवेक

इस बात को स्वीकार करता है? आज अगर कोई किसी को जानवर जैसा कहे तो उसे कितना अपमान महसूस होता है कि उसे जानवर जैसा कहा। जब हम ईश्वर के लिए कहें कि वह जानवर में भी है, कूड़े-कचरे में भी है, सबमें है तो क्या यह ऊंचे से ऊंची हस्ती परमात्मा का अपमान नहीं है? तब कई लोग यह कहते हैं कि सर्वव्यापी माना संसार के हर प्राणी में आत्मा भी है और परमात्मा भी विराजमान है, अब यह कहां तक सत्य है, यदि मनुष्य में आत्मा भी है और परमात्मा भी बगल में बैठा है तो जब एक व्यक्ति दूसरे

व्यक्ति का खून करता है तो यह दुष्कर्म किसका मानना चाहिये? आत्मा का या परमात्मा का? तब लोग यही कहते हैं कि यह कर्म आत्मा का है। अगर यह कर्म आत्मा का है तो उस वक्त परमात्मा उसके अंदर बैठे-बैठे क्या कर रहे थे? क्या परमात्मा एक आत्मा को गलत कर्म करने से रोक नहीं सकते थे? आज घर में यदि माँ-बाप उपस्थित होते हैं और बच्चे उनके सामने ही आपस में लड़ाई करने लग जाएँ या मार-पीट करने लगें तो क्या मात-पिता देखते रहेंगे या उन्हें आपस में लड़ने से छुड़ाएंगे? छुड़ाएंगे ना! एक शारीरिक मात-पिता भी बच्चों को आपस में लड़ते नहीं देख सकते, तो वह परमेश्वर, सर्वशक्तिमान है, तो उस वक्त परमात्मा अपनी शक्ति से आत्माओं को गलत कर्म करने से क्यों नहीं रोकते? उसकी महिमा में गाते हैं कि वह दया का सागर, करुणा का सागर, प्यार का सागर है। ईश्वर ने भी अगर यथार्थ रूप में अपनी महिमा के अनुसार कर्म किया होगा तभी तो उनकी महिमा है। फिर उस वक्त कहां गयी उनकी दया, करुणा या प्यार? क्या वह बच्चों को आपस में लड़ते देख सकते हैं या गलत कर्म करने पर कुछ नहीं कह सकते? तब मानव एक और तर्क देते हैं कि परमात्मा तो निर्लेप हैं, वे मनुष्य के कर्म के लेप-क्षेप में नहीं आते उस समय वे साक्षी हो जाते हैं। अगर परमात्मा को साक्षी होकर ही रहना है तब मनुष्य में विराजमान होने की आवश्यकता ही नहीं है वह तो परमधाम में भी साक्षी अवस्था में रह सकते हैं ना? वैसे भी जब हमें कोई व्यक्ति कोई बात बताता है और हमें उसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता तब हम यही कहते हैं कि तुम छोड़ो ना! तुम क्यों बीच में

पड़ते हो ऊपर वाला जाने, कभी गलती से भी हमने यह नहीं कहा कि नीचे वाला जाने या जो सबमें बैठा हुआ है वो जाने। अनजाने में भी मुख से यही सच्चाई निकल जाती कि ऊपर वाला जाने। इसका मतलब यही होता है कि परमात्मा कहीं ऊपर है इसीलिये तो उसकी महिमा में भी यही गाया जाता है - **ऊंचा तेरा नाम, ऊंचा तेरा काम, ऊंचा तेरा धाम, ऊंचे से ऊंचा भगवान।** जिसका धाम भी बहुत ही ऊंचा है, तभी श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान यही कहते कि मेरा धाम परमधाम है जहां सूर्य चांद तारों की रोशनी पहुंच नहीं सकती, वह स्वयं प्रकाशित है। साथ ही साथ उन्होंने श्रीमद्भगवद् गीता में यही वायदा भी दिया कि **यदा-यदा हि धर्मस्य.....** अर्थात् जब-जब धर्म की अति ग्लानि होती है तब-तब मैं अवतरित होता हूँ। कहने का भाव यह कि अधर्म के समय पर वे आयेंगे, अगर वे पहले से ही यहीं हैं तो आएंगे कहां से? अगर वे यहीं हैं तो उनके होते इतना अधर्म कैसे? और फिर कौन आएगा जो चारों ओर फैले हुए अधर्म का नाश करेगा? ऐसे अनेक प्रश्न मन में आ सकते हैं। प्रकृति में भी यह विशेषता है कि अपने गुणों को परिवर्तित या रूपांतरित कर सकती है। जैसे यदि अग्नि में लोहे को रख दो तो अग्नि का गुण लोहे में आ जाएगा। लोहा भी एकदम लाल और गरम हो जाएगा अर्थात् संग का रंग लग जाता है। आज मनुष्य भी थोड़े दिन किसी के साथ रहता है तो उसको भी संग का रंग लग जाता है। मनुष्य तो छोड़ो, पशु-पक्षी भी थोड़े दिन किसी के संग रहते हैं तो उसकोतु भी संग का रंग लग जाता है। एक दृष्टान्त बताते हैं कि एक बार एक शिकारी जंगल से दो तोते पकड़ कर ले आया और बाज़ार में बेचने बैठा। एक तोते को एक महात्मा अपने आश्रम पर ले गए और दूसरे तोते को एक बदमाश अपने अड्डे पर ले गया। कुछ ही दिनों के बाद देखा गया कि जो तोता महात्मा के साथ आश्रम पर गया था वो सुबह-सुबह राम-राम बोल रहा था, आरती गा रहा था और जो तोता बदमाश के अड्डे पर गया था, वो सुबह-सुबह गालियां बोल रहा था। भावार्थ कि अगर पशु-पक्षी को भी संग का रंग लग जाता है, तो परमात्मा जो सर्व गुणों में अनन्त है और वह हमारे अंदर कहीं बैठा है और उनके किसी गुण का रंग मनुष्यात्मा को न लगे ऐसा हो सकता है क्या? अगर ऐसा नहीं होता तब फिर उनका मनुष्य में विराजमान होने का सवाल ही नहीं है। परमात्मा को पारस भी कहा जाता है और पारस के संग में अगर हम बैठे हैं और हम लोहे के लोहे ही रह जाएँ, क्या ऐसा कभी हो सकता है?

तब फिर यही बात मन में आती है कि परमात्मा के सर्वव्यापी होने की बात तो शास्त्रों में भी लिखी है तो क्या शास्त्र गलत हैं? शास्त्र गलत नहीं हैं लेकिन शायद शास्त्रों में

जिस भाव के साथ यह बात कही गई है वह भाव हमने यथार्थ रूप से समझा ही नहीं है। शास्त्रों की रचना महान ऋषि-मुनियों ने की है। कैसे? जब ऋषि-मुनि समाधि में बैठते थे तो उन्हें इस समाधि अवस्था में ज्ञान प्राप्त होता था और समाधि में वह आने वाले कलिकाल को देख सकते थे कि घोर पापाचार का युग आएगा और ऐसे समय में मनुष्य आत्माओं को पापकर्मों से कैसे बचाएँ, यह सवाल उनके सामने था? तब, भविष्य की गंभीर हालत को ध्यान में रखकर उन्होंने लोगों की धार्मिक आस्था को लेकर शास्त्रों मे यह बात लिख दी कि हे मानव तुम जब पाप करते हो तो यह मत समझना कि तुझे कोई नहीं देखता है। ईश्वर सब जगह है। वो तुझे निरंतर देख रहा है। उनकी भावना यही थी कि मनुष्य को यह भय सदा रहे कि भगवान मुझे देख रहा है और भय के कारण वह पाप कर्म न करे।

''जैसे आज की दुनिया में छोटे बच्चे जब घुटनों के बल चलने लगते हैं तो वह घड़ी-घड़ी बाहर जाना चाहते हैं और उनकी माँ को बहुत ध्यान देना पड़ता है कि कहीं बच्चा घर के बाहर न निकल जाए। इसलिए वह माँ उस बच्चे को दरवाज़े तक ले जाती है और बाहर एक कुत्ता या गाय दिखाकर कहती है कि देख अगर बाहर गया तो वह कुत्ता उठा कर ले जाएगा। यह भय उसने इसलिये बिठाया है ताकि बच्चा घर के अन्दर खेलता रहे और माँ को उस पर कम ध्यान देना पड़े और बच्चा सुरक्षित रहे। वह बच्चा घुटनों के बल जब कभी दरवाजे तक जाता भी है और जैसे ही कुत्ते को देखता है तो वह वापस अन्दर आ जाता है और खुश होता है मानो अपनी माँ से कह रहा हो कि मैं सुरक्षित हूँ। लेकिन जब वह बच्चा चार-पांच साल का हो जाता है और उसके बाद माँ कहे कि देखो, बाहर गया तो कुत्ता उठा कर ले जाएगा, तो वह अपनी माँ पर हँसेगा कि मेरी माँ भी कैसी भोली है उसको इतना भी पता नहीं है कि कुत्ता उसे ले जाने वाला थोड़े ही है? और वह हंसते हुए बाहर चला जाएगा और कुत्ते के बच्चे को उठाकर घर में ले आएगा और अपनी माँ से कहेगा - देखो, मैं ही कुत्ते को ले आया हूँ। कहने का भाव यही है कि बच्चा जब समझदार हुआ, तो वह डर भी उसको नहीं रहता। इसी प्रकार महान् ऋषि-मुनियों ने भी बड़ी शुभ-भावना के साथ कहा कि हे मानव, तुम जब पाप करते हो तो भगवान तुझे देख रहा होता है। ताकि इन्सान को डर रहे और वह पापकर्म न करे। इस शुभ-भावना के अंतर्गत यह बात ठीक लगती है। जब तक मनुष्य अज्ञान की स्थिति में थे, तब तक उन्होंने भी इस बात को सच माना और भय के कारण पाप-कर्म नहीं करते थे। कोई अगर उन्हें पाप करने के लिए प्रेरित भी करता था तो कह देते थे, अरे भाई, बाल-बच्चे वाला हूँ, समाज में रहना है,

इज्जत की जिंदगी जीनी है। ऐसा पाप मैं नहीं करूँगा भगवान भी देख रहा है। ऐसा कहकर वह साफ मना कर देता था। लेकिन आज, विज्ञान के युग में, मनुष्य बड़ा समझदार हो गया है, और जब उसको कोई याद भी दिलाता है कि - क्यों इतना पाप कर रहा है, थोड़ा तो भगवान का डर रखो। तो वह वही बात दोहराता है कि अरे भाई, बाल-बच्चे वाला हूँ, समाज में रहना है, इज्जत की जिंदगी जीनी है। पाप नहीं करुंगा तो सबका पेट कैसे भरुंगा। या फिर कह देता है कि भगवान् अगर देख रहा है तो वह देखता क्यों है, वह मुझे छुड़ाए ना। कहने का भाव यह है कि उसको वह डर भी नहीं रहा। और देखते ही देखते वह भ्रष्टाचार और पापाचार की दलदल में धंसता ही जा रहा है। तो शास्त्रों में यह बात मनुष्यों को पापकर्म से बचाने लिए कही गई थी। इसका एक अन्य भाव यह भी था कि द्वापरयुग में कुछ ऐसी शिरोमणी भक्त आत्मायें थीं जिनकी भगवान से बेहद प्रीत थी, जैसे मीराबाई। उनका भगवान से इतना प्यार था जिससे अभिभूत होकर उन्होंने कह दिया कि जहाँ देखूं वहाँ तू ही तू है। जैसे कोई व्यक्ति किसी के प्यार में खोया हुआ होता है तो उसके मन में उस प्रियतम की छवि अंकित रहती है। वह अगर कहीं बैठे- बैठे कुछ देख रहा होता है या वहाँ से कोई व्यक्ति गुज़रता है तो उसको लगता है कि वही है। वह जो भी चीज़ देखता उसमें भी उसको अपने प्रिय की छवि ही नज़र आती है। अत: भाव वश होकर उन्होंने यही कह दिया कि ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ तू नहीं है। इन्हीं दो भावनाओं के आधार पर शास्त्रों में ईश्वर के सर्वव्यापकता की बात आयी। आज भी अगर हम इस भाव को लेकर जीवन में चलें कि भगवान हमारे साथ है तो उसका एहसास हमें हर पाप कर्म से बचाकर रखेगा, हर बुरी छाया से सुरक्षित रखेगा परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हर चीज़ में परमात्मा है इसलिए अगर हम एक- एक चीज़ की बैठ कर पूजा करने लगेंगे तो यह अंधश्रद्धा हो जायेगी। कहने का भाव है कि ईश्वर सर्वव्यापी है, यह भावनात्मक सत्य है, सैद्धान्तिक सत्य नहीं है।''

पाँचवीं मान्यता है कि **परमात्मा निराकार है** – अब 'निराकार' का शाब्दिक अर्थ तो यही होता है कि उसका कोई नाम, रूप या आकार नहीं है। अब सोचने की बात है कि क्या नाम, रूप आकार के बिना इस संसार में किसी चीज़ का अस्तित्व संभव है? अतः निराकार का शाब्दिक अर्थ नहीं समझना चाहिए। जैसे यदि कोई किसी हॉल को देखकर कहता है कि यह हॉल बड़ा है तो जरूर उसकी बुद्धि में कोई छोटा हॉल होगा जिसकी भेंट में हॉल बड़ा लगता है। ठीक इसी प्रकार हमारी बुद्धि में कोई आकृति है जिसकी भेंट में हम कहते हैं कि वह निराकार है अर्थात् यहाँ 'निराकार' शब्द विशलेषण के रूप में

लिया गया है। जैसे परमात्मा को निर्गुण भी कहा गया है लेकिन अगर निर्गुण का शाब्दिक अर्थ लिया जाय तो जिसमें कोई गुण नहीं परन्तु परमात्मा तो गुणों का सागर है। तो निर्गुण का भाव है कि जिसके गुण मनुष्य सदृश्य नहीं हैं। इसी प्रकार प्रकृति के पाँच तत्वों में हवा है, जो दिखाई नहीं देती, लेकिन उसका नाम भी है और आकार भी है। जब कोई चित्रकार हवा का चित्र बनाता है और अगर उसमें उसको चक्रवात या तूफान दिखाना हो तो वह अपने चित्र में उस हवा को भी आकार दे देता है। लोग चित्र को देख कर यही कहेंगे कि बड़ी तेज़ हवायें चल रही हैं। इसी प्रकार अगर उसे शांत प्रकृति दिखानी है जैसे कि हवा चल ही नहीं रही है या एक पत्ता भी नहीं हिल रहा है, तो उसके लिए वह सारे प्राकृतिक दृश्य का प्रतिबिंब तालाब में दिखा देता है और चित्र देखने वाले यही कहेंगे कि बड़ी शांत प्रकृति है। अत: जब हवा का आकार नहीं होते हुए भी एक चित्रकार उसको अपने चित्र में ढाल देता है। तो क्या परमात्मा - जिसे सारी सृष्टि का रचयिता माना गया है क्या वह नाम-रूप-आकार के बिना हो सकता है?

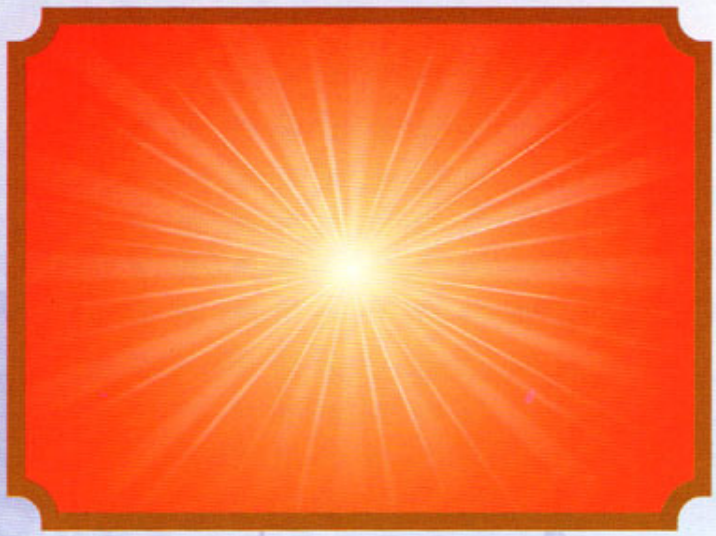

वास्तव में परमात्मा का नाम भी है और उनका स्वरूप भी है। '**निराकार**' शब्द का भाव है जिसका मनुष्य सदृश्य नाम-रूप-गुण नहीं है। उसका नाम और स्वरूप मनुष्य से भिन्न है। वह स्वरूप कौनसा है? जैसे मनुष्य का पिता मनुष्य है, पक्षियों की उत्पत्ति पक्षियों से होती है और पशुओं की पशुओं से, तो आत्माओं के परमपिता परम आत्मा भी एक आत्मा हैं। जैसा स्वरूप आत्मा का है वैसा ही उसके पिता परमात्मा का स्वरूप भी है। आत्मा का स्वरूप है - चैतन्य ज्योतिपुँज। परमात्मा भी आत्माओं के समान चैतन्य प्रकाशपुँज हैं। 'परमात्मा' में दो शब्द हैं 'परम' और 'आत्मा'। परम का अर्थ आकार से नहीं, लेकिन परम का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। भारत में परमात्मा की पूजा ज्योतिर्लिंगम् के रूप में करते हैं। लिंग अर्थात् आकृति, चिन्ह, ज्योतिर्लिंगम् का अर्थ है जिसका आकार ज्योति स्वरूप है, मानव ने पूजा करने के लिये और अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए इसे एक आकार दे दिया इसलिये ज्योतिस्वरूप परमात्मा का यादगार ज्योतिर्लिंगम् है। इसको ही 'सदाशिव' नाम दिया गया है। 'सदाशिव' अर्थात् जो सदा कल्याणकारी है। जब किसी छोटे बच्चे को देखते हैं

तो उसे शिव बालक कहते है क्योंकि जैसे बच्चा पवित्र है वैसे परमात्मा परमपवित्र हैं तो शिव माना परमपवित्र, शिव माना शांति इसलिए जहां अशांति होती है वहां यही कहा जाता बोलो शिव अर्थात् शांति करो तो शिव अर्थात् शांति, और कोई व्यापारी होगा तो कहेगा लगाओ शिव अर्थात् बिन्दी लगाओ तो शिव माना बिन्दी। अतः परमात्मा का गुणवाचक और कर्तव्यवाचक नाम 'शिव' है। मनुष्यों के नाम गुणवाचक नहीं होते हैं। आज किसी मनुष्य का नाम होगा शांतिभाई, लेकिन जीवन में होगा-तनाव ही तनाव। किसी का नाम होगा अमीरचंद लेकिन होगा फकीर। परमात्मा का नाम गुणवाचक है और उसके मन्दिरों के नाम भी गुणवाचक या कर्तव्यवाचक हैं। भारत के अन्दर बारह ज्योतिर्लिंगम् की पूजा होती है और वे सभी महान से महान तीर्थस्थान के रूप में माने जाते हैं। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं में उनकी पूजा होती है। उत्तर में 'अमरनाथ' के रूप में उसकी पूजा होती है क्योंकि वह अमर आत्माओं का नाथ है। दक्षिण में 'श्रीरामेश्वरम्' के रूप में उसकी पूजा होती है क्योंकि वह श्रीराम के भी ईश्वर हैं।

पूर्व में 'काशी-विश्वनाथ' के रूप में उसकी पूजा होती है। पश्चिम में 'सोमनाथ' के रूप में उनकी पूजा होती है। भारत से बाहर, नेपाल में 'पशुपतिनाथ' के रूप में पूजा होती है। जितने भी परमात्मा के मन्दिर हैं उन सबके नाम नाथ या ईश्वर में पूरे होते हैं। जैसे अमरनाथ, बबूलनाथ, भोलेनाथ, सोमनाथ, विश्वनाथ या रामेश्वर, गोपेश्वर, विश्वेश्वर, पापकटेश्वर, महाकालेश्वर, ओम्कारेश्वर आदि आदि। ये सब परमात्मा के मंदिर हैं जो सर्व का नाथ और ईश्वर है। परमात्मा की पूजा सारे भारत भर में होती है। भारत में कोई गांव भी ऐसा नहीं होगा जहां महादेव जी का मंदिर न हो। जब कि देवताओं

की पूजा हर राज्य में अलग-अलग की जाती है। जैसे उत्तर में जायेंगे तो श्रीराम व श्रीकृष्ण की पूजा अधिक मिलेगी, लेकिन दक्षिण में चले जाओ तो श्री वेंकटेश व बालाजी की पूजा अधिक मिलेगी। कलकत्ता की तरफ चले जाओ - काली पूजा, दुर्गापूजा अधिक मिलेगी। गुजरात या महाराष्ट्र में चले जाओ गणेशपूजा अधिक मिलेगी। तामिलनाडु में कार्तिकेय की पूजा अधिक मिलेगी। परमात्मा 'शिव' देवों के भी देव, महादेव हैं। जिनकी पूजा स्वयं देवताओं ने भी की है। अब अगर देवता ही भगवान थे तो उन्होंने शिव की पूजा क्यों की? रामेश्वरम् में श्रीराम ने शिव की पूजा क्यों की? क्योंकि स्वयं श्रीराम बहुत अच्छी तरह जानते थे कि जिसके सामने वे युद्ध करने जा रहे थे, उस रावण को अपनी शक्ति पर बहुत घमण्ड था क्योंकि वह शक्ति रावण की नहीं थी। रावण ने भी वे शक्तियाँ परमात्मा 'शिव' से प्राप्त की थीं, क्योंकि वह शिवभक्त था इसलिए अगर श्री राम को रावण पर विजय प्राप्त करना हो तो वही परमात्म शक्ति उसे भी प्राप्त करनी होगी। तभी उन्होंने रामेश्वरम् पहुंच कर सर्वप्रथम शिव की पूजा की। इसी तरह दिखाते है कि अधर्म वा बुराईयों पर विजय प्राप्त करने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण ने वा पांड़वों ने भी स्थाणेश्वर में परमात्मा शिव की पूजा की। अगर श्री कृष्ण भगवान थे तो फिर उन्होंने महादेव की पूजा क्यों की और पांड़वों से अपनी पूजा क्यों नहीं कराई? क्योंकि स्वयं श्री कृष्ण जानते थे कि अधर्म पर विजय प्राप्त करानी है और वह महादेव की शक्ति के बिना असंभव है, इसी तरह जिन देवियों की पूजा करते हैं, नवदुर्गा की, वे नवदुर्गे कौन थीं? कहते भी हैं जब संसार में असुर बढ़ गए थे, तो असुरों का संहार करने शिव ने अपनी शक्तियों को उत्पन्न किया और सारे भारत भर में उन्होंने असुरों का संहार किया। वास्तव में ये शक्तियां शिव की उत्पन्न की हुई हैं, तभी तो उनकी आरती में उन्हें शिवशक्ति कहते हैं। लेकिन यहाँ भारतवासी शिव और शंकर

दोनों को एक ही समझ लेने की गलती कर देते हैं। जबकि दोनों का नाम अलग है - शिव और शंकर, दोनों का स्वरूप भी अलग है। एक है निराकार ज्योतिर्लिंगम् दूसरा है आकारी देवपुरुष। दोनों के कर्तव्य भी अलग-अलग है, एक है सदाशिव अर्थात् सदा कल्याण करने वाले, और दूसरे हैं विनाशकारी। कहते हैं जब उनका तीसरा नेत्र खुलता है तो महाविनाश हो जाता है।

जब एक कल्याण करने वाले और एक प्रलयकारी हैं तो फिर दोनों एक कैसे हो सकते हैं। परमात्मा शिव ज्योतिर्लिंग स्वरुप हैं और शंकर के साथ उनका पूरा परिवार अर्थात् उसे गृहस्थधर्म में दिखाया गया हैं, माता पार्वती, पुत्र गणेश और कार्तिकेय। जब भी कोई मंत्र देते हैं तो वह 'ऊँ नमः शिवाय' का मंत्र देते हैं, कभी 'ऊँ नमः शंकराय' का उच्चारण नहीं करते। भारत में सभी जब शिवरात्रि का त्यौहार मनाते हैं तो उसको कभी शंकर रात्रि नहीं कहते। शंकर को हमेशा ध्यान मुद्रा में दिखाते हैं तो सवाल उठता है कि वह किसका ध्यान करते हैं? अगर शंकर ही महादेव थे तो फिर कैलाश पर्वत पर बैठकर उन्होंने किसकी आराधना की, किसकी तपस्या की? उनसे श्रेष्ठ कौन था? जो भी कैलाश मानसरोवर जाते हैं वह यही कहते हैं कि कैलाश पर्वत दुनिया का सबसे बड़ा शिवलिंग हैं, पूरा पर्वत ही शिवलिंग के आकार में है। वहाँ बैठकर शंकर ने भी तो शिव की ही तपस्या की थी। उनको तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी? क्योंकि उनको एक महत्वपूर्ण कार्य सौंपा हुआ था कि आँख खोलते ही महाविनाश होना चाहिये। इस कार्य को करने के लिये कितनी प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता थी, इसलिए इतने सालों तपस्या कर उन्होंने परमात्मा शिव से वह शक्ति प्राप्त की तब वह अपना कार्य यथार्थ रूप से कर पाये। इसी तरह कई लोग अमरनाथ की यात्रा पर जाते हैं। अमरनाथ का महत्व इतना ज्यादा क्यों है जो हर साल लाखों यात्री वहाँ की यात्रा पर जाते हैं? शास्त्रों के अनुसार बताया गया है कि अमरनाथ का महत्व इसलिये है कि वहाँ पर शंकर ने पार्वती जी को अमरनाथ की अमर कथा सुनाई थी। अब शंकर ने पार्वती जी को कौन से

अमरनाथ की कथा सुनाई? कहने का भाव है कि अमरनाथ और शंकर एक हैं या अलग? उस कथा के साक्षी के रूप में वो दो कबूतर दिखाते हैं। अब अगर शंकर ने भी पार्वतीजी को अमरनाथ की अमरकथा सुनाई तो इसका मतलब शंकर और अमरनाथ अलग हैं तभी तो कथा सुनाई, नहीं तो पार्वतीजी को तो पता ही होना चाहिये थी ना? फिर सुनाने का मतलब ही क्या? भावार्थ यह है कि परमात्मा एक है। जिनको किसी भी प्रकार का व्यक्त आकार नहीं है। जो इस दुनिया के व्यक्त आकारों से परे है क्योंकि वे एक चैतन्य शक्ति हैं और उनका ज्योतिबिन्दु रूप है। इस संबंध में एक सुन्दर कहानी याद आती है:-

''एक बार एक भिखारी था, हर रोज़ राजा के द्वार पर जाकर भीख मांगता था। राजा का भी नियम था कि मेरे द्वार पर जो भी आएगा, खाली हाथ नहीं जाएगा। कुछ-न-कुछ देना ज़रूर है। हर रोज़ कुछ न कुछ देता था। एक दिन भिखारी के मन में विचार आया कि यह राजा लाता कहां से है? अगर उस स्रोत को मैं भी जान लूं तो मुझे भीख मांगनी ही न पड़े। मैं भी उस स्रोत से ही प्राप्त करूं। उसने सोचा कि जरूर राजा सुबह-सुबह ही उस स्त्रोत से प्राप्त करते होंगे और फिर सारा दिन जो उनके द्वार पर आते हैं उनको देते जाते होंगे। उस स्त्रोत का पता लगाने भिखारी राजा के द्वार पर सुबह जल्दी पहुंच गया। यही सोचकर कि आज मुझे देखना है कि राजा इतना कहां से प्राप्त करता है जो सारा दिन लोगों को देता रहता है? सुबह-सुबह राज महल के द्वार पर पहुंच कर उसने द्वारपाल से जाकर पूछा, हे द्वारपाल, तुम मुझे बताओ कि इस वक्त राजा कहां होगा और क्या कर रहा होगा? द्वारपाल ने कहा, राजा तो अभी मंदिर में बैठे हैं, पूजा कर रहे हैं। भिखारी ने सोचा, ज़रूर वहाँ कोई स्रोत होगा। भिखारी ने पूछा - क्या मैं वहाँ जा सकता हूँ? द्वारपाल ने कहा जा क्यों नहीं सकते? ज़रूर जाओ - लेकिन पीछे बैठना, आगे नहीं जाना। भिखारी ने कहा मैं पीछे ही बैठूंगा। वह धीरे से जाकर पीछे बैठ गया, थोड़ी देर में राजा ने अपनी प्रार्थना में भगवान से कहा - हे प्रभु, मेरी झोली हमेशा भरी रखना ताकि मैं अनेकों की झोली भर सकूँ। जैसे ही भिखारी ने ये बात सुनी उठ कर के बाहर आ गया। द्वारपाल ने पूछा बड़ा जल्दी बाहर आ गया, क्या बात है? भिखारी ने कहा आज पता चला कि हमारे राजा भी भिखारी हैं। वे भगवान से माँगते हैं। भगवान उनकी झोली इतनी भर देते हैं लेकिन वे हमारी झोली तो थोड़ी सी ही भरते हैं। तो मैं भी भगवान से ही क्यों न माँगू? और वह वहां से निकल चला, चलते-चलते भिखारी के विचार चलने लगे। कि ये राजा पूजा कर रहे थे हनुमानजी की। इसका मतलब हनुमान जी ने राजा की

झोली भरी, राजा ने हमारी झोली भरी। लेकिन हनुमान जी की झोली किसने भरी ? तो मन में विचार आया कि हनुमानजी तो श्रीरामभक्त थे। इसका मतलब श्रीरामजी ने हनुमानजी की झोली भरी, हनुमानजी ने राजा की झोली भरी और राजा ने हमारी झोली भरी। फिर विचार चला, कि श्रीरामजी की झोली किसने भरी ? तो मन में विचार आया कि उन्होंने तो भोलेनाथ को याद किया। इसका मतलब भोलेनाथ के इतने सारे भक्त हैं उसमें से उन्होंने एक हिस्सा श्रीराम को दिया। श्रीराम के भी इतने सारे भक्त, उसमें से उन्हों ने एक हिस्सा हनुमानजी को दिया। हनुमानजी के भी इतने सारे भक्त, उनमें से एक हिस्सा राजा को मिला। और राजा को भी इतने सारे लोगों को देना पड़ता है, उसमें से एक हिस्सा मेरे पास आया। तो भिखारी गंभीर सोच में पड़ गया कि अरे इतने सारे हिस्से से होते-होते जब मेरे पास आता है तो इतना कम हो जाता है। तब भिखारी ने सोचा क्यों न मैं डायरेक्ट भोलेनाथ को ही याद कर अधिक प्राप्ति कर लूँ।''

इसी प्रकार कहीं हम भी उस भिखारी की तरह बहुत सारे देवी-देवताओं से होते-होते तो प्राप्त करने में लगे हुए नहीं हैं? इस कहानी से यही प्रेरणा प्राप्त होती है कि इतने उलझे रहने से तो एक परमात्मा से ही सीधा संपर्क कायम करें जिससे सर्व प्राप्तियाँ सहज हो जाएँ। और वैसे भी वह परमात्मा भोलानाथ है तो जल्दी प्राप्ति हो जाती है।

इसी तरह अकबर-बीरबल की कहानी का भी एक उदाहरण हैं -

''एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा, बीरबल, हमारे राज्यकोश में इतना कम जमा क्यों हो रहा है ? बीरबल तो हर बात में हाज़िरजवाब था। उसने एक बर्फ का टुकड़ा मंगाया। सभी दरबारियों के हाथ से गुज़ार कर अंत में राजा के हाथ में पहुंचाया। जब राजा के हाथ में आया तो बर्फ का बड़ा सा टुकड़ा बहुत छोटा हो गया था। बीरबल ने राजा से कहा, जब इतने हाथों से गुज़रता है तो कम तो होना ही है। ठीक इसी प्रकार परमात्मा का दिया हुआ खज़ाना जब अनेक हाथों से गुज़रता है और हम केवल अपने से पहले वाले अर्थात् आखिर वालों को ही याद करते रहेंगे तो कितना आएगा ? इसीलिये क्यों नहीं परमात्मा को सीधे याद करके उनसे सर्व शक्तियों को प्राप्त करें ? यह हुई भारतवालों की बात।''

इस्लामधर्म

भारत से बाहर, इस्लाम धर्म में मूर्तिपूजा नहीं है। परन्तु एक समय था जब मक्का में तीन सो साठ देवी-देवताओं की मूर्तियाँ होती थीं। हरेक के अपने-अपने इष्ट होते थे। लेकिन

जब मोहम्मद पैगम्बर साहब आये तब उन्होंने कहा कि अल्लाह एक हैं। लोगों ने मोहम्मद पैगम्बर साहब से कहा कि क्या यह हमारे इष्ट नहीं है? मोहम्मद पैगम्बर साहब ने बस एक ही बात कही कि अल्लाह एक है, इस बात से लोग उन पर काफी नाराज़ हुए और उन्होंने मोहम्मद पैगम्बर साहब को मदीना भेज दिया। परन्तु फिर भी यह विचार-धारा चलती रही और काफी लोग इस बात से सहमत होने लगे कि अल्लाह एक है। जब काफी संख्या में लोग इस बात को स्वीकार करने लगे तब वह सब पुनः मक्का आये और उस समय काफी लड़ाई-झगड़ा, खून-खराबा हुआ, कहा जाता है कि तब एक आकाशवाणी हुई कि आप लड़ाई झगड़ा मत करो, मुझे इस स्वरूप में याद करो और ऊपर से एक पवित्र पत्थर मक्का में गिरा, जहाँ उसको स्थापित कर दिया गया। और उसी समय वह तीन सौ साठ देवी-देवताओं की मूर्तियों को नष्ट कर दिया गया। इस पवित्र पत्थर को काबा का पवित्र पत्थर कहते हैं, जो निराकार है, जिसकी कोई साकार आकृति नहीं है। दुनिया का हर मुसलमान यह मानता है कि जीवन में कम से कम एक बार इस पवित्र पत्थर का दर्शन अवश्य करना चाहिये, तभी जीवन सफल होगा इसलिये इनकी हज-यात्राएं निकलतीं हैं। हज में भी सभी नहीं जा सकते उसके लिए बहुत सख्त नियम है और जो उसका पालन करता है वही हज के लिए जा सकता और सारा गांव उनको बड़े सम्मान और इज्जत के साथ विदाई देता हैं। वहाँ जाने के बाद हर मुसलमान अपने पापों का प्रायश्चित करता है, फिर शैतान को पत्थर मारते हैं, उस पवित्र पत्थर को चूमते हैं और उसकी सात बार परिक्रमा करते हैं। यह परिक्रमा सिर्फ मक्का में होती है और किसी मस्जिद में नहीं होती और अन्त में एक वाक्य कहते है - जिसके बिना उनकी हज यात्रा को सम्पूर्ण नहीं माना जाता। वह यादगार वाक्य है - **'हे परवरदिगार, नूरे इलाही, मेरा हज कुबूल हो।'** तब उनका हज कबूल होता है। परवरदिगार परमेश्वर के लिये कहा, नूरे इलाही – अर्थात् अल्लाह नूर है, नूर माना तेज या प्रकाश। जिसको हिन्दुओं ने ज्योतिर्लिंगम् कहा, उन्होंने उसे नूर कहा इस तरह दोनों मतों में समानता हो गई।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म में भी मूर्तिपूजा को स्वीकार नहीं किया जाता लेकिन हजरत मूसा जब पर्वत पर गया था वहां उसको दो पत्थरों पर परमात्मा के दस आदेश (the ten commandments) मिले थे। उस समय हज़रत मूसा ने भी

एक दिव्य प्रकाश का साक्षात्कार किया था। जिसको देख कर के हज़रत मूसा ने कहा- येहोवा अर्थात् दि सुप्रीम लाईट the Supreme Light। क्राइस्ट Christ ने कभी अपने आपको गॉड उद् नहीं कहा। उसने यही कहा - गॉड इज़ लाईट, आई एम द सन ऑफ गॉड God is Light, I am the son of God - परमात्मा परम प्रकाश है - मैं परमात्मा का पैगम्बर हूँ। और इसीलिये जब उनको क्रॉस पर चढ़ा रहे थे तब उन्होंने अंतिम प्रार्थना की कि - हे प्रभु, आप इन्हें क्षमा कर देना क्योंकि इन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं Oh God Please forgive them as they do not know what they are doing। आज भी वेटिकन Vetican में परम प्रकाश का एक प्रतीक चिन्ह रखा है और हर चर्च में मोमबत्ती जलाते हैं। उसमें भी एक बड़ी मोमबत्ती होती है बाकी सब छोटी-छोटी मोमबत्तियां होती हैं। बड़ी मोमबत्ती परमात्मा का प्रतीक है, छोटी मोमबत्तियां आत्माओं का प्रतीक हैं। स्पष्ट है कि परमात्मा के स्वरूप के विषय में ईसाईयों ने प्रकाश वा लाइट कहा, मुसलमानों ने नूर कहा, हिन्दुओं ने ज्योति कहा, बात तो एक ही है।

सिखधर्म

गुरु नानकदेव जी ने जितने स्पष्ट शब्दों में परमात्मा की महिमा की है, उतनी स्पष्ट व्याख्या और किसी ने नहीं की — 'एक ओंकार, सतनाम, कर्तापुरुष, निरभय, निर्वैर, अकालमूरत, अजूनि.....' जो किसी योनी में नहीं जाते, वही एक निराकार है, निर्वैर है, उनका नाम ही सत्य है, जिसको काल कभी नहीं खा सकता इसलिए तो गुरु गोविंद सिंहजी ने शिव की महिमा गाई है 'देह शिवा वर मोहे....।'

जैनधर्म

जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए हैं और उन सभी को ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है। वह सभी किसके ध्यान में मग्न है? महावीर स्वामी ने भी किसकी तपस्या की? उनसे श्रेष्ठ कौन

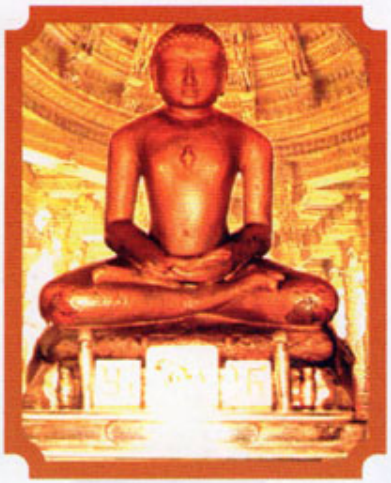

था? महावीर स्वामी ने कभी अपने आप को भगवान नहीं कहा। आज भी जैनी लोग जब दिवाली के दिन महावीर स्वामी का निर्वाणदिन मनाते हैं तो अपनी प्रार्थना में यही कहते हैं - कि आपने जो शिवधाम को प्राप्त किया है वही गति हमें भी प्राप्त हो। ये कौनसा शिवधाम था? ये शिव कौन हैं? उनके लिये जैन लोग कहते हैं - सिद्धशिलापति। सिद्धशिलापति अर्थात् जो सर्वश्रेष्ठ है, और उस श्रेष्ठ गति को प्राप्त करने लिये तीन बातें बताते है ज्ञान, दर्शन और चरित्र। भावार्थ ज्ञान होना आवश्यक है, चरित्र श्रेष्ठ और दर्शनीय मूर्त होना चाहिए।

बौद्धधर्म

महात्मा बुद्ध ने कभी मूर्ति पूजा के लिए किसी को प्रेरित नहीं किया। वह स्वयं ध्यान मुद्रा में हैं तो किसका ध्यान कर रहे हैं? किसकी तपस्या कर रहे हैं? आज भी जापान चले जायें तो वहां शिन्टँइज़म संप्रदाय वाले - तीन फुट की ऊँचाई पर स्थापित किया हुआ और तीन फुट दूर एक थाली के अन्दर लाल पत्थर रखते हैं। इसे कहते हैं करनी का पवित्र पत्थर। बिल्कुल निराकार शिवलिंग के आकार का है - और उसको उन्होंने कहा - चिनकुनशेकी। चिनकुनशेकी का मतलब है जो शांति का दाता है। जिसका ध्यान करने से हमें शांति मिलती है इसलिए वह उसके सामने बैठ कर मेडिटेशन करते हैं।

पारसी धर्म

पारसी लोग जब ईरान से भारत आये थे तो जलती हुई ज्योति को साथ ले आये थे और उनके मंदिर को अगियारी कहा जाता है जहाँ यह अखण्ड ज्योत जलती रहती है और आज भी जब उनकी कोई नई अगियारी स्थापित होती है तो जलती हुई

ज्योत का एक टुकड़ा ले जाकर वहां स्थापित करते हैं। इसलिए उनकी अगियारी को फायर टेम्पल (Fire Temple) कहते हैं।

सर्व धर्म मान्य

इस तरह परमपिता परमात्मा का सर्व धर्म मान्य स्वरूप है निराकार ज्योतिस्वरूप, प्रकाश, ज्योत, नूर, लाइट आदि। लोगों ने इसे अलग-अलग नामों से जाना, पहचाना, किसी ने गॉड, अल्लाह, ईश्वर, प्रभु, मालिक, सिद्धशिलापति, चिनकुनशेकी या वाहेगुरु कहा। जिस तरह एक व्यक्ति को कोई अलग-अलग सम्बोधन करके बुलाता चाचा, मामा, ताऊ, भाई, पिताजी कहे लेकिन वह व्यक्ति का स्वरुप तो एक ही रहेगा। इसी प्रकार परमात्मा को बेशक अलग-अलग नाम से सम्बोधित किया जाए लेकिन उनका स्वरूप तो सभी धर्म में एक ही दिखाया है, तो निराकार ज्योति स्वरूप परम प्रकाश पुंज जो सर्वधर्ममान्य है, जो देवों का भी देव महादेव है।

सर्वोच्च शक्ति

सर्वोच्च शक्ति, (Supreme Authority) वह है जिसके ऊपर और कोई न हो। जिसका कोई माता-पिता, कोई शिक्षक-गुरु आदि नहीं है फिर भी जिसकी तरफ सभी ने अपनी अंगुली का इशारा करके दिखाया। इसीलिये शिव के साथ एक शब्द जुड़ता है - 'शिवशम्भू'। शम्भू का मूल शब्द है - स्वयम्भू। स्वयम्भू का अर्थ है जो स्वयम् प्रगट

हुआ है, उनको उत्पन्न करने वाले कोई माता-पिता नहीं हैं। उनका कोई शिक्षक या गुरु नहीं है। लेकिन फिर भी वह सबके मात-पिता, बंधु, गुरु, शिक्षक व रक्षक हैं।

सर्वोपरि

तीसरी कसौटी कि परमात्मा सर्वोपरि है अर्थात् जो सभी चक्रों से ऊपर हैं। संसार में मनुष्य अनेक चक्र के बंधन में हैं। जैसे जन्म और मृत्यु का चक्र, देह और देह के सम्बन्धों का चक्र, कर्म और कर्म के फल का चक्र, पाप और पुण्य का चक्र, सुख और दु:ख का चक्र, लेकिन परमात्मा सभी चक्रों से परे है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान ने अपना वास्तविक परिचय देते हुए यही कहा, 'मैं अजन्मा हूँ, काल मुझे नहीं खा सकता है, मैं कालों का महाकाल हूँ। मैं अव्यक्त हूँ, मुझे व्यक्त देह नहीं है, मैं सदा शाश्वत हूँ, पुनर्जन्म रहित हूँ, मैं किसी माता के गर्भ से नहीं आता हूँ परन्तु मेरा जन्म दिव्य और अलौकिक है जो इन चर्म चक्षु से देखा नहीं जा सकता। मैं इस जगत् का नियंता हूँ, नित्य दिव्य प्रकाश स्वरूप हूँ, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म अशरीरी हूँ।' तभी अर्जुन को भी संशय पड़ा कि - 'हे प्रभु, अगर आप अजन्मा हो, अकर्ता हो, अभोक्ता हो, अव्यक्त हो, तो फिर यह आपका स्वरूप कैसे है? अगर मुझे योग्य समझते हो तो मुझे वह दिव्य चक्षु प्रदान कीजिए जिससे मैं आपका वास्तविक रूप देख सकूं। आपका वास्तविक रूप कौन सा है?' तब भगवान ने भी अर्जुन को वह दिव्य चक्षु प्रदान किये और अपने हज़ारों सूर्य से अधिक तेजोमय स्वरूप का साक्षात्कार कराया। जिसका तेज स्वयं अर्जुन भी नहीं सह सका और उसने कहा - 'बस करो, प्रभु, यह तेज मुझसे सहन नहीं होता है।' वही सर्वश्रेष्ठ शक्ति जो सभी चक्र से ऊपर है, और वह किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेते, लेकिन अवतरित होते हैं - अर्थात् परकाया प्रवेश करते हैं।

सर्वज्ञ

चौथी कसौटी परमात्मा सर्वज्ञ है अर्थात् सब कुछ जानने वाला। शिवलिंग पर तीन लकीरें लगाई जातीं हैं। इन तीन लकीरों का भाव है कि वह तीनों कालों का ज्ञाता। जो आदि, मध्य, अन्त का ज्ञाता है, और उनके पास सत्य ज्ञान होने के कारण, उसको सत्यम् कहा जाता। उन तीनों लकीरों के बीच में एक आँख होती है अर्थात् वो त्रिनेत्री है। ज्ञान का दिव्य चक्षु प्रदान करने वाला है, जिससे मनुष्य

हर बात में, हर घटना में कल्याण का दर्शन कर सकता है, इसीलिये उनको शिवम् कहा क्योंकि कल्याण का दर्शन कराता है। तीसरा- उनकी पूजा में तीन पत्र का बेलपत्र चढ़ता है जो एक डंडी के साथ जुड़ा हुआ होना चाहिये। अलग-अलग पत्ते नहीं होने चाहिये अर्थात् वो ब्रह्मा-विष्णु-शंकर के भी रचयिता हैं और उसकी हर रचना अति-सुंदर होने के कारण उनको सुन्दरम् कहा गया। तो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, उनका वास्तविक रूप है।

सर्व गुणों में अनन्त सर्वशक्तिमान् हैं

पाँचवी कसौटी है कि परमात्मा सर्व गुणों में अनन्त है। रेखागणित वा ज्योमेट्री Geometry के अन्तर्गत जब एक बिन्दु लगाया जाता है तो उस बिन्दु की व्याख्या है - अनन्त, (Infinite)। विज्ञान में सबसे सूक्ष्म अणु को माना जाता है और जितनी बार ऍटम को फ्यूज़ ले करो उतनी बार वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है इसीलिए गीता में भगवान ने कहा - 'हे अर्जुन, मैं सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म अणु से भी सूक्ष्म हूँ' इसीलिये परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं।

इस प्रकार परमात्मा का सम्पूर्ण परिचय यहाँ सम्पन्न होता है। इसके अन्तर्गत हमने जाना कि परमात्मा का नाम क्या है। उनका स्वरूप क्या है। उनकी योग्यता वा गुण क्या हैं। साथ ही पता वा एड्रेस क्या है और उनके दिव्य कर्त्तव्य क्या हैं। इन पाँचों बातों में उनका सम्पूर्ण परिचय आ जाता है। इस अध्याय में परमात्मा के परिचय सम्बन्धी इन पाँचों बातों का समावेश हो गया।

1 परमात्मा का **नाम** है - सदाशिव, येहोवा, गॉड, अल्लाह, सिद्धशिलापति, चिनकुनसेकी, वाहेगुरु, सबका मालिक एक।

2 परमात्मा का दिव्य **स्वरूप** है अति सूक्ष्म दिव्य ज्योति-बिन्दु स्वरूप, नूर, प्रकाश, लाइट।

3 उसकी **योग्यता** है - सर्व धर्म मान्य, सर्वोच्च, सर्वोपरि सर्वज्ञ, सर्व गुणों में अनन्त, सर्वशक्तिमान्।

4 उनका **निवास स्थान** है - ब्रह्मलोक, परमधाम, निर्वाणधाम, शांतिधाम में रहने वाला ईश्वर।

5 उनका **कर्त्तव्य** है - अधर्म का नाश और सतधर्म की स्थापना करना।

मन को परमात्मा में एकाग्र करने की विधि

कुछ समय के लिए हम अपने मन को परमात्मा के सानिध्य में ले चलेंगे और परमात्मा की सर्वशक्तियों से आत्मा को भरपूर करेंगे। उसके लिए हमें परमात्मा से कुछ मांगने की आवश्यकता नहीं है, कि हे प्रभू हमें शांति दो या सुख दो। जैसे समुद्र के पास जाकर हम समुद्र से यह मांगते नहीं है कि हे समुद्र आप हमें शीतल हवाएँ दो या बाहर सूर्य के सामने खड़े होकर हम यह नहीं मांगते हैं कि हे सूर्य हमें अपनी गर्माहट दो, बाहर धूप में खड़े रहने से हमारे रोम-रोम में गर्माइश समा जाती है। परन्तु जब हम आत्मा भाव में अपने मन को स्थित करते हैं तो धीरे-धीरे मन परमात्मा की ओर जाने लगता है।

कुछ क्षण के लिए मन को बाह्य सभी बातों से समेट लेते हैं और मन को आत्म भाव में स्थित करते है। मैं एक अति सूक्ष्म आत्मा हूँ... अंतर चक्षु से स्वयं को देखो, भृकुटि के मध्य में चमकते हुए दिव्य सितारे के रूप में... मैं आत्मा ज्योति पुंज हूँ... मैं सतोगुणी स्वरूप हूँ... धीरे-धीरे मन को ले चलते है एक यात्रा पर अपने परमधाम की ओर... सूर्य, चाँद सितारों से दूर... सूक्ष्म जगत से भी पार... अपने घर शांतिधाम में... जहां चारों ओर दिव्य प्रकाश फैला हुआ है... लाल सुनहरा प्रकाश... कितनी अनन्त शांति है... शांति के प्रकम्पन्न चारों ओर फैले हुए हैं... धीरे-धीरे मैं आगे बढ़ते हुए अपने पिता परमात्मा के सानिध्य में पहुँच जाती हूँ... जैसे मैं आत्मा ज्योति पुंज हूँ.....वैसे मेरे पिता परमात्मा भी दिव्य प्रकाश पुंज है... अनन्त प्रकाशमान हैं... दिव्य तेजोमय हैं... सर्वशक्तिमान् हैं... चहुँ ओर परमात्मा की शक्तियों की किरणें फैल रहीं हैं... कितना सकून मिल रहा है... मैं परमात्मा मात-पिता के प्रेम की पात्र आत्मा बन गई... परमात्मा शिव मेरे अति मीठे अति प्यारे बाबा है... प्यारे शिवबाबा के असीम प्रेम की छत्रछाया में स्वयं को महसूस कर रही हूँ... यह कितना सुन्दर प्रभू मिलन है... मीठे बाबा की सर्वशक्तियों की किरणों को स्वयं में समाकर भरपूर हो रहीं हूँ... परमात्म-शक्ति से मुझ आत्मा की कितने जन्मों की अशुद्धि धुल रही है और मैं आत्मा स्वच्छ होती जा रही हूँ... कितना सुन्दर अनुभव है यह... कुछ क्षण इसी अनुभव में समा जाती हूँ... अब धीरे-धीरे मैं आत्मा वापस अपने इस पंच तत्वों की दुनिया में आती हूँ... शरीर में भृकुटी के मध्य में विराजमान होती हूँ... और सर्व कर्मेन्द्रियों को अपने अधिकार में लेती हूँ और परमात्मा की शक्ति की उर्जा को सर्व कर्मेन्द्रियों में प्रवाहित होने देती हूँ... ओम् शांति, शांति, शांति।

यदि तुम
भगवान का
ध्यान करोगे
तो वह तुम्हारा
ध्यान रखेगा।

राजयोग स्तंभ
REMEMBERING GOD WHILE AT WORK

राजयोग का आधार, विधि एवं विभिन्न अवस्थाएँ

राजयोग भारत का सबसे प्राचीन योग माना गया है। योग शब्द सुनते ही मनुष्य के मन में शारीरिक या कोई आसन आदि क्रियाएँ करने का भाव उत्पन्न होता है। परन्तु योग शारीरिक क्रियाओं पर अवलम्बित नहीं हैं, क्योंकि जब भगवान ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद् गीता में योग का उपदेश दिया तो कहीं पर भी आसन नहीं सिखाया। लेकिन बार-बार उसे मन को ईश्वर में एकाग्र करने की प्रेरणा दी। व्यक्ति को भटकाने वाली कर्मेन्द्रियाँ ही होती हैं। इसीलिये कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण रखने के लिए योग का विशेष महत्व है।

राजयोग स्वयं को सुसंस्कृत करने का विज्ञान है। जहाँ हम अपनी कर्मेन्द्रियों को अनुशासित करते हैं। साथ ही राजयोग व्यक्ति को सकारात्मक जीवन जीने की सुन्दर कला सिखाता है। जहां हमें मन को मारना नहीं है, लेकिन मन को सही दिशा देकर मन को मित्र बनाना है। जिसके लिए ही कहा जाता कि मन जीते जगत जीत। राजयोग ही आत्मा की अंतर्निहित योग्यताओं का पूर्ण विकास करता है।

राजयोग सर्वश्रेष्ठ है। सर्व योग इसी में समाये हुए हैं।

इसी योग को **ज्ञान योग** भी कहा जाता है क्योंकि योग या ध्यान का आधार ज्ञान है। ज्ञान बिना ध्यान नहीं। जब आत्मा, परमात्मा का वास्तविक ज्ञान हो तभी ध्यान संभव है। इसी योग को **कर्मयोग** भी कहा जाता है क्योंकि यह योग अभ्यास करने लिए हमें कोई कर्म, जिम्मेदारियाँ या कर्तव्य को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इस योग से कर्म में कुशलता आती है।

इसी योग को **संन्यास योग** भी कहा जाता है, जहाँ हमें अपनी नकारात्मकता, बुरी आदत, बुरी वृत्ति या बुरे संस्कारों का त्याग करना है। जो मन को विचलित करते हैं और मन की एकाग्रता में विघ्न रूप बनते हैं। इसी योग को **भक्तियोग** भी कहा जाता है क्योंकि भक्ति माना परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम भाव। राजयोग में परमात्मा में मन को सहज एकाग्र करने लिए अनन्य प्रेम भाव होगा तभी ध्यान यथार्थ होगा और सहज ही मन्मनाभव हो सकेंगे।

इसी योग को **बुद्धियोग** भी कहा जाता है क्योंकि मन को सुसंस्कृत करने लिए बुद्धि की लगाम को अंकुश में लेना जरुरी है।इस योग को **समत्व योग** भी कहा जाता है जहां हम मन-बुद्धि के संतुलन से अपने जीवन में संतुलन ला सकते हैं और हर कर्म करते सहज ही स्थित प्रज्ञ स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। इसी योग को **हठयोग** भी कहा जाता है जहां हम हठ यानि दृढ़ता सम्पन्न अभ्यास कर सकते हैं। कहने का भाव यह है कि संकल्प में दृढ़ता लाकर कोई भी कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार यह योग सभी योगों में श्रेष्ठ एवं राजा है। राजयोग करने से सर्व योग सहज कर सकते हैं।

राजयोग द्वारा अनुभूति करने के लिये मुख्य आधार कौनसे हैं और उसकी विधि क्या है? किसी भी साधना के लिए तीन बातें आवश्यक हैं; 1.साधक; 2.साध्य; और 3.साधन। साधक हम स्वयं है, साध्य परमात्मा है और साधन है मन। राजयोग मन की आध्यात्मिक यात्रा है। मन की एक स्वाभाविक प्रकृति है कि उसको घूमना अच्छा लगता है, कभी किन्हीं विचारों में चक्कर लगाता, कभी दुनिया के किसी दूसरे कोने में बैठे व्यक्ति के पास पहुँच जाता है तो कभी बचपन की किसी घटना की स्मृति में चला जाता है।मन के लिए समय या स्थान बंधन नहीं बन सकता। मन की इसी प्रकृति को हम राजयोग में परमात्मा के ध्यान के लिए परिवर्तित कर लेते हैं और मन को एक रुहानी यात्रा पर,

परमात्मा के सान्निध्य में ले जा सकते हैं।

राजयोग में आध्यात्मिक यात्रा के तीन कदम

1. सबसे पहला कदम है कि यह भीतर की यात्रा है – भीतर की यात्रा से तात्पर्य है स्वयं का चिन्तन करना। स्व चिंतन अर्थात् आत्म-चिंतन से ही हम मन को आत्म भाव में स्थित करतेहैं। जैसे कोई भी यात्रा प्रारम्भ करने लिए एक प्रस्थानबिंदु की आवश्यकता होती हैं। वैसे आत्मचिन्तन मन को परमात्म चिन्तन की ओर ले जाता है और परमात्म अनुभूति में एकाग्र करता है।

हम चाहते हैं कि हमारा मन परमात्मा की याद में सहज एकाग्र हो परन्तु मन के अन्दर अनेक प्रकार की बातों की हलचल रहती है अथवा कारोबार सम्बन्धी इतने विचार दौड़ते हैं कि मन शान्त होने का नाम ही नहीं लेता। ऐसा अशान्त मन, ईश्वर की तरफ कैसे जाएगा?

इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है -

''एक व्यक्ति ने सोचा कि वह रात में ही यात्रा करके अपनी मंजिल पर पहुंच जाए तो अच्छा है। वह नदी किनारे गया, एक छोटी सी नाव में बैठा और सारी रात उसे चलाने के लिये पतवार चलाता रहा। उसने हिम्मत नहीं हारी, सारी रात पतवार चलाता रहा लेकिन सुबह होते ही उसने देखा कि वह वहीं का वहीं है। उससे केवल एक भूल हो गई थी कि वह लंगर उठाना भूल गया था।''

ठीक इसी प्रकार अगर हम अपने मन और बुद्धि का लंगर देह और देहधारियों की बातों, देह के कारोबार की बातों में फंसा के रखेंगे और अपने मन को परमात्मा की ओर ले जाना चाहेंगे तो यह संभव नहीं है। इसलिये अपने मन को सभी बाहरी बातों से विरत करके आत्म-भाव में या आत्म स्वरूप में अपने आपको स्थित करेंगे तब हम इस यात्रा पर आगे बढ़ सकेंगे। तभी तो भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को भी यही कहा कि तुम स्वयं को आत्मा निश्चय करो। भाव यह है कि हमें सदा यह स्मृति रखनी है कि मैं यह देह नहीं लेकिन इस देह में विराजमान एक चैतन्य शक्ति हूँ, एक प्रकाशपुंज, एक ज्योतिपुंज आत्मा हूँ, और आत्मा के अनादि सातो गुणों (ज्ञान, पवित्रता, प्रेम, शांति, सुख, आनंद और शक्ति)को धारण करते हुए मन को स्थित करना है। इस चिन्तन के साथ-साथ अपने अंतर्मन में उस स्वरूप को देखना भी है और महसूस भी करना है। यह

स्वरूप जितना अधिक बुद्धि में स्पष्ट होगा उतना इस देह और देह की दुनिया से हमारी बुद्धि का लंगर छूटेगा। उदाहरण के लिये:

''जैसे कोई डॉक्टर जब छुट्टी वाले दिन अपने घर होता है तो अपनी चेतना में वह स्वयं को घर का सदस्य समझता है और घर के काम-काज में रुची लेता है। जैसे वह बगीचे में काम करेगा या बच्चों के साथ समय बितायेगा, उनके साथ खेलेगा क्योंकि उस समय वह अपने को डॉक्टर या सर्जन नहीं समझता, लेकिन जब वह डॉक्टर या सर्जन अपने व्यवसाय के स्थान पर जाने के लिये सुबह-सुबह तैयार होता है तब वह उस स्मृति में स्वाभाविक आ जाता है कि मैं डॉक्टर हूँ। उस समय उसको अस्पताल, मरीज़, दवाईयां, ऑपरेशन आदि ही याद आएगा क्योंकि अब वह उस भाव में स्थित है, उस समय उसको अपने बच्चों की याद नहीं आती, उस समय उसको बगीचा याद नहीं आता, उन सभी बातों से उसकी बुद्धि उपराम होती है। अब उसे जहाँ जाना है, जिस कार्य के लिये जाना है, उससे सम्बन्धित बातें स्वत: ही दिमाग में आने लगतीं हैं और धीरे-धीरे जैसी उसकी स्मृति होती है वैसा ही उसका स्वरूप बनता जाता है। अस्पताल पहुंचते ही वह अपने अधिकारिक स्वरूप में स्थित होकर अपना कर्म करना आरम्भ करता है। उसकी चाल-चलन, बात-चीत का तरीका और विचारों में स्वत: ही परिवर्तन आ जाता है।''

इसी प्रकार अगर कोई अध्यापक या प्राध्यापक जब स्कूल या कॉलेज में पढ़ाने जा रहे होते हैं तो उन्हें अपने विद्यार्थी ही याद आयेंगे या यह याद आयेगा कि कक्षा में कौन सा पाठ पढ़ाना है आदि-आदि। उस समय उन्हें अपना परिवार याद नहीं आएगा। इसी प्रकार एक पति के रूप में उसे अपनी पत्नी की स्वाभाविक याद आती है, या जब स्वयं को पिता समझता है तो उसे अपने बच्चों की सहज याद आती है, इसी प्रकार जब वह स्वयं को बच्चा समझता है तो अपने मात-पिता की याद आती है, इसी प्रकार जब वह स्वयं को आत्म भाव में या आत्म स्वरूप में स्थित करता है तो स्वाभाविक रूप से उसे परमात्मा की याद आने लगती है। जब वह अपने अंतर्चक्षुओं से स्वयं को ज्योति स्वरूप आत्मा देखता है, तो आत्मा के गुणों की वास्तविकता स्वतः उसके स्वरुप में समाने लगती है। जैसे मान लो वह स्वयं को आत्मा समझ अपने

पवित्र स्वरूप को अंतर्चक्षु से देखता है और अपने शांति के स्वधर्म में मन को स्थित करता है तो धीरे-धीरे उसके विचार शांत होने लगते हैं, आसपास शांति के प्रकंपन महसूस होने लगते है, तभी कहा जाता है कि जैसा सोचोगे वैसा बन जाओगे।

यह है राजयोग का पहला कदम - **पहले आत्म चिन्तन के माध्यम से अपने आत्मिक स्वरूप में स्थित होना है। एक भूमिका तैयार करनी है जिससे हम सहज मन की उड़ान प्रभु की यादों में भर सकें।**

2. इस यात्रा का दूसरा कदम है- परमधाम की यात्रा करना- परमात्मा के सानिध्य की ओर हम अपने मन को ले चलते हैं। जैसे ही हमारा मन देह, देहधारियों एवं देह की दुनिया की सभी बातों से अनासक्त होकर आत्म स्वरूप में स्थित होता है, वैसे ही परमात्मा की याद में मन को एकाग्र करना सहज हो जाता है। जिस तरह जब दो तारों को जोड़ना हो, तो सबसे पहले दोनों तारों के ऊपर का बिजली अवरोधक रबर (insulation rubber) उतारना पड़ता है। तब दोनों तारों को जोड़ने से करंट चालू होता है। इसी प्रकार परमात्मा से सर्वशक्तियों की करंट प्राप्त करने लिए परमात्मा से भी मन का तार जोड़ना पड़ेगा परन्तु परमात्मा पर कोई आवरण का रबर नहीं हैं लेकिन मनुष्यात्मा पर देहाभिमान का आवरण, देह के सम्बन्धों के मोह का आवरण और देह के पदार्थो की आसक्ति का आवरण रूपी रबर चढ़ा हुआ है। इसलिए न तो परमात्मा से संबंध जुट पाता है और न ही शक्तियों की ऊर्जा प्राप्त हो सकती है। जब पहले कदम के द्वारा हम मन को आत्म स्वरूप में स्थित करने से सारे आवरणों को एक-एक करके उतार देते हैं तब परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ना आसान हो जाता है। परमात्मा की स्मृति से हमें परमात्मा से सर्व शक्तियां प्राप्त होती हैं और क्षीण ऊर्जा वाली आत्मा शक्तियों और गुणों से भरपूर हो जाती हैं। परन्तु यहाँ सवाल पैदा होता है कि क्या ऐसे हमारी आत्मा रूपी बैटरी चार्ज हो सकती है?

यदि होती है तो उसका क्या प्रमाण है? कहीं यह एक कल्पना तो नहीं कि बैटरी चार्ज हो रही है लेकिन वास्तव में कुछ न हो रहा हो! इसे स्पष्ट करने के लिए बैटरी चार्ज होने की प्रक्रिया को समझना होगा।

जिस प्रकार आज की भौतिक दुनिया में रिचार्जेबल बैटरीज़ आती हैं। जिन्हें फिर से चार्ज करके उपयोग में लाया जाता है। चार्ज करने के लिए बैटरी को चार्जर में रख कर उसे ऊर्जा के स्रोत के साथ जोड़ना पड़ता है। जब बैटरी को करंट मिलता है तो वह पुन: चार्ज हो जाती है। बैटरी के डिसचार्ज और रिचार्ज के पीछे विज्ञान का सरल सा तर्क यही होता है कि जब बैटरी के अन्दर के रासायनिक अवयव (chemical components) पूर्ण रूप से अव्यवस्थित (dis-organised) हो जाते हैं तो कहा जाता हैं कि यह बैटरी डिस्चार्ज हो गई। फिर उसको चार्जर में रखना पड़ता है, लेकिन चार्जर में रखने से वह अपने आप चार्ज नहीं होती। इसके लिए उसको बिजली के स्रोत के साथ जोड़ते हैं तो उसमें विद्युत प्रवाह शुरू हो जाता है। वह विद्युत प्रवाह इन स्थूल नेत्रों से दिखाई नहीं देता। जैसे ही विद्युत शक्ति का प्रवाह मिलता है वैसे ही जब बैटरी के अव्यवस्थित रसायन पुन: व्यवस्थित हो जाते हैं तो बैटरी चार्ज हो जाती है। इस प्रक्रिया में चार्जर की क्षमता के आधार पर कुछ समय अवश्य लगता है।

ठीक इसी प्रकार आज के युग के अन्दर आत्मा की बैटरी भी डिस्चार्ज हो गई है। उसका प्रमाण यह है कि आज कल छोटी-छोटी बातों में चिड़चिड़ापन अथवा तनाव आ जाता है, किसी ने कुछ कहा तो सहन नहीं होता तो फिर बहुत गुस्सा आने लगता है। व्यक्ति अपने आप पर अंकुश नहीं रख पाता है। कभी ईर्ष्या आ रही है, कभी द्वेष आता है, कभी कोई उल्टी-सीधी नकारात्मक बातें आती हैं। तभी तो व्यक्ति अपने आप से परेशान सा होने लगता है। वह सोचता है कि पहले तो ऐसे नहीं होता था।

आजकल ऐसे क्यों होता है कि मुझे गुस्सा बहुत जल्दी आ जाता है। आत्मा की इस कमज़ोरी के परिणाम स्वरूप आत्मा की तीनों शक्तियों – मन, बुद्धि और संस्कार में ताल-मेल बिगड़ जाता है। अतः व्यक्ति जो सोचता है वह बोल नहीं पाता और जैसा बोलता है वैसे कर नहीं पाता। जब इस प्रकार का अंतर्द्वंद्व चलता है तो आत्म विश्वास कम होने लगता और हताशा बढ़ने लगती है। इन सभी लक्षणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा रूपी बैटरी डिस्चार्जड़ अर्थात् कमज़ोर हो गई है।

राजयोग वह माध्यम है जिसके द्वारा आत्मा का परमात्मा के साथ यदि ठीक कनेक्शन जुड़ जाता है तो स्वतः ही सर्वशक्तियों की ऊर्जा मिलने लगती है। सर्वशक्तियों की प्राप्ति जीवन में सदा खुशियों का अनुभव कराती है। राजयोग मेडिटेशन का यह मतलब कदापि नहीं कि जब हम ध्यान में बैठेंगे तो हमारी आँखों को कुछ दिखाई देने लगेगा। कई लोग सोचते हैं कि जैसे ही हम मेडिटेशन में बैठेंगे तो भगवान की आकृति दिखाई देगी, या फिर कोई रंग दिखाई देगा आदि। मेडिटेशन के दौरान कुछ दिखाई नहीं देता, बल्कि यह विधि है जिससे हम अपने मन के तार परमात्मा के साथ जोड़ते हैं और उससे हम अपनी आत्मा को सर्वशक्तियों और सर्वगुणों से सम्पन्न कर लेते हैं। वास्तव में आत्मा में शक्ति भरने वाला एक मात्र स्त्रोत एक परमात्मा ही है। इस बात का प्रमाण यह है कि इससे हमारे स्वभाव में, संस्कारों में, व्यवहार में एक परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। जिसे हम स्वयं भी महसूस करते हैं और हमारे आस-पास रहने वाले भी महसूस करते हैं। कई लोग बताते भी हैं कि जबसे उन्होंने राजयोग मेडिटेशन करना आरम्भ किया है तबसे उनमें काफी सकारात्मक परिवर्तन आया है। दूसरे लोग उनके बारे में कहते हैं कि इस व्यक्ति का स्वभाव शांत होता जा रहा है। उसके मन की एकाग्रता बढ़ने लगी है। उनके अंदर एक स्थिरता आने लगी है। अपना काम वह ठीक ढ़ंग से करने लगे हैं। इस तरह हमारे मन-बुद्धि-संस्कार की सूक्ष्म शक्तियां सुव्यवस्थित होने लगती हैं। पहले वह चाहते हुए भी अपने स्वभाव को बदली नहीं कर पाता था क्योंकि उसमें शक्ति नहीं थी। अब उसे राजयोग से ताकत मिलती है इसलिए वह जीवन में श्रेष्ठ परिवर्तन ला सकता है। धीरे-धीरे हमारे **जीवन** में एक सुव्यवस्था आने लगती है।

जैसा हम सोचते हैं वैसे ही हमारी **भावनाएं** उस सोच के अनुकूल प्रवाहित होने लगती हैं। **मन** की चंचलता भी समाप्त हो जाती है और सकारात्मक दिशा में परिवर्तन हो जाता है। साथ ही साथ **दृष्टि** और **दृष्टिकोण** में भी सकारात्मकता आ जाती है और हमारी **वाणी** में माधुर्य और परिपक्वता आने लगती है।

ऐसे ही हमारा **कर्म** और **व्यवहार** भी अनुकूल होता जाता है। कहीं पर भी दुविधा वाली बात नहीं रहती, क्योंकि मन-बुद्धि-संस्कार आत्मा की तीनों शक्तियां एक दूसरे से सामंजस्य में चलने लगती हैं। जीवन में विशेष सुसंवादिता आ जाती है। ऐसा होते ही हमें अपने मन में सुकून मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे जीवन में जो परिवर्तन आया वह परमात्मा से शक्ति प्राप्त करने से आया।

3. इस यात्रा का तीसरा कदम है-अपने सुख, शांति और पवित्रता की तरंगें विश्व में चारों ओर फैलाना-जिससे वातावरण में भी परिवर्तन आने लगता है। अगर किसी व्यक्ति को राजयोग का अभ्यास करके तुरंत गुस्सा आ जाए, तो दुनिया में भी लोग कहते हैं कि पाँच मिनट भी शांत नहीं रह सके तो उसका क्या लाभ? इसीलिये कई बार देखा जाता है कि कई लोग जब पूजा-पाठ करके उठते हैं और जब उन्हें कोई इच्छित वस्तु तुरंत नहीं मिलती तो एकदम गुस्से में आ जाते हैं। उस समय घर में बच्चे भी माँ-बाप से कहने लगते हैं कि क्या पूजा करने पर भी आपके मन में शांति नहीं है? भगवान को याद करने के बाद भी अगर इतना अशांत हो जाते हैं तो फिर पूजा करने का मतलब क्या? ठीक इसी प्रकार अगर राजयोग या मेडिटेशन करने के बाद पाँच मिनिट भी अगर शांति के अनुभव में नहीं रहते हैं तो मेडिटेशन से क्या लाभ हुआ? जबकि राजयोग या मेडिटेशन से प्राप्त शक्ति का अनुभव तो दिन भर व्यक्ति को शक्तिशाली स्थिति में रखता हैं। अगर मेडिटेशन करने से कोई प्राप्ति ही न हो, स्वभाव में कोई परिवर्तन न हो तो वह सिर्फ बाहरी रूप से शांति में बैठे हैं परन्तु मन अन्य बातों में भटक रहा है। बाह्य रूप से शांति में बैठना यह ध्यान या मेडिटेशन नहीं है।

वास्तव में आज के युग में मडिटेशन की आवश्यक्ता क्यों है?

आज के युग में मेडिटेशन की आवश्यक्ता इसलिए है क्योंकि चारों ओर वातावरण में नकारात्मक ऊर्जा व्याप्त है। नकारात्मक ऊर्जा मनुष्य की सकारात्मक ऊर्जा को सोख लेती है। ऐसा लगता है कि मनुष्य की शक्ति निचुड़ गई है, तभी व्यक्ति दिन के ढलने तक स्वयं को एकदम थका हुआ या शक्तिहीन महसूस करता है। जैसे-जैसे नकारात्मक

ऊर्जा उसके व्यक्तित्व पर हावी होने लगती है वैसे-वैसे उसका स्वभाव भी नकारात्मक होने लगता है। दूसरी ओर, मेडिटेशन करने से वह अपनी सकारात्मक ऊर्जास्तर (positive energy level) को बढ़ाता जाता है। यह सकारात्मक ऊर्जा ही व्यक्ति का प्रभामंडल कहलाती है। आज की दुनिया में यह सकारात्मक ऊर्जा का प्रभामंडल (aura) मनुष्य के लिए एक सुरक्षा कवच का कार्य करता है। जो व्यक्ति सुबह-सुबह मेडिटेशन के द्वारा अपने आस-पास यह सकारात्मक ऊर्जा का सुरक्षा कवच धारण कर लेता है, वह कैसी भी नकारात्मक ऊर्जा वाले वातावरण में यदि चला भी जाता है तो उस पर उस तमोगुणी वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। वह दिन भर उमंग-उत्साह वाली सकारात्मक ऊर्जा से कार्य कर सकता हैं। इससे उसकी कार्यक्षमता तो बढ़ती ही है साथ-साथ कोई भी बात या घटना जल्दी तनाव में नहीं लाती, ना ही वह शीघ्र क्रोध में आकर कोई निर्णय लेता है। वह न खुद परेशान होता न किसी को परेशान करने के निमित्त बनता है। दिन के अन्त में भी वह उसी सकारात्मक ऊर्जा के साथ स्वस्थ रहता है यानि उसकी आत्मा रूपी बैटरी चार्जड़ रहती है। तभी तो श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि योग से व्यक्ति की कार्य कुशलता बढ़ती है और वह जीवन के हर संघर्ष या युद्ध में विजयी होता है।

मेडिटेशन - एक टैलिपैथिक कनेक्शन Meditation is a Telepathic Connection

सरल शब्दों में मेडिटेशन एक टेलिपैथिक कनेक्शन है जिसमें आप अपने मन की बात दूर बैठे व्यक्ति तक पहुँचा सकते हैं। मान लीजिए कि आप किसी व्यक्ति को याद कर रहे हो और थोड़ी देर में ही उस व्यक्ति का फोन आ जाता है तो आश्चर्य भी होता है और खुशी भी होती है कि यह कैसे हो गया कि हम मन ही मन उसको याद कर रहे थे और उसका फोन आ गया? उस व्यक्ति से अगर पूछा जाए कि आपने फोन कैसे किया? तो वह यही कहेगा कि बस आपकी याद आ गई तो सोचा आपसे बात कर लूँ। परन्तु यह हमेशा या हरेक व्यक्ति के साथ नहीं होता। ऐसा तभी सम्भव होता है जब उन दो

व्यक्तियों की मानसिक तरंगे एक ही स्तर पर प्रवाहित हो रही हों। ऐसा अनुभव स्पष्ट रुप से होता है। इसी को टेलिपैथिक कनेक्शन कहते हैं। पहले के समय में जब यह मोबाईल नहीं थे, टेलीफोन नहीं थे, टेलीग्राम भी नहीं था तब लोग इसी टेलिपैथिक कनेक्शन से एक दूसरे से संदेशों का आदान-प्रदान करते थे। मनुष्यों के मन के संकल्पों में अथाह क्षमता है। कितना भी दूर कोई व्यक्ति बैठा हो उसके साथ भी वह टेलिपैथिक कनेक्शन के माध्यम से संवाद कर सकता था। लेकिन जैसे-जैसे आधुनिक दुनिया में टेकनोलोज़ी विकसित होती गई तो मनुष्यों की यह मानसिक शक्ति क्षीण होती गई और वह साधनों के अधीन होता चला गया। आदि शंकराचार्य की बात याद आती है:

''जब आदि शंकराचार्य जी बचपन में संन्यास लेना चाहते थे परन्तु उनकी माताजी उन्हें संन्यास लेने से रोक रही थीं। लेकिन माँ की आज्ञा के बिना वह संन्यास धारण नहीं कर सकते थे। एक दिन उनकी माँ नदी पर कपड़े धोने गई, बालक शंकर भी उनके साथ चला गया, जब वह नदी में नहाने लगा उसी समय मगरमच्छ ने उनका पैर पकड़ लिया। वह जोर से चिल्लाया और उसने अपनी माँ को आवाज़ लगायी और कहा कि देखो माँ तुम मुझे संन्यास नहीं लेने दे रही हो, अब ये मगरमच्छ मुझे खा जायेगा, फिर तुम क्या करोगी ? माँ का मोह तो था, उसने तुरंत भगवान से प्रार्थना की और कहा, 'हे प्रभु, मैं उसे संन्यास लेने दूंगी आप उसे बचा लो !' और तब मगरमच्छ ने उसके पैर को छोड़ दिया। बालक शंकर नदी से बाहर

आये और माँ से कहा कि 'देखो माँ, अभी तो आपने भगवान से वायदा किया है कि आप मुझे संन्यास लेने दोगी।' माँ ने कहा कि 'ठीक है, मैं तुम्हें संन्यास लेने दूंगी, लेकिन मेरी एक शर्त है कि जब मैं मरूं तो तेरे कंधे पर जाऊं।' बालक शंकर ने माँ से कहा, 'ठीक है, जब आपका अंतिम समय आये तो आप सिर्फ मुझे याद करना, मैं पहुँच जाऊँगा।' बालक शंकर माँ का आशीर्वाद लेकर निकल पड़े और काफी दूर निकल गये। समय बीतता गया और काफी सालों के बाद एक दिन जब वह अपनी तपस्या में बैठे थे कि उन्हें माँ की याद आयी और महसूस हुआ जैसे उनका अंतिम समय आ गया है, और वह उनको याद कर रही है। वह तुरंत अपनी तपस्या से उठे और चलने लगे अपने गांव की ओर। जैसे ही वह अपने घर पहुँचे तो देखा कि सचमुच उनकी माँ का अंतिम वक्त आ गया था। दरवाज़े पर खड़े होकर उन्होंने अपनी माँ को कहा, माँ, उनकी माँ ने आँखे खोली और उनकी ओर देखा, आदि शंकराचार्य जी ने कहा, माँ मैं आ गया हूँ। माँ के चेहरे पर एक मुस्कान और संतोष के भाव आये और सहज ही उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। इसको कहते हैं टैलिपैथिक कनेक्शन।''

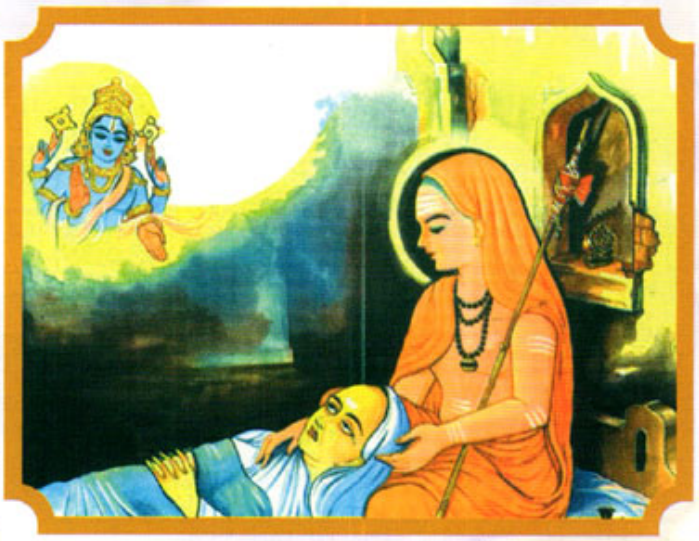

मेडिटेशन भी परमात्मा के साथ एक टैलिपैथिक कनेक्शन हैं। जब हम भगवान को याद करें और उसका प्रत्युत्तर अनुभव हो तो कितनी खुशी होगी। यदि जीवन में कभी इत्तेफाक से ऐसा अनुभव हुआ भी होगा, लेकिन शायद उसे समझ नहीं पाए। जैसे मान लो आपने सुबह अपनी प्रार्थना में मन ही मन कोई संकल्प भगवान के सामने किया हो और दिन में आपका वह संकल्प पूरा हो जाए तो मन में आश्चर्य भी होगा और खुशी भी होगी। तब लगता है जैसे भगवान हमारे मन की बात सुनता है। लेकिन यह कभी-कभी अनुभव होता है परन्तु अगर यह अनुभव निरंतर करना हो तो उसके लिये क्या करें? यह अनुभव तभी सम्भव है जब व्यक्ति निरन्तर अभ्यास के द्वारा ईश्वर से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। परमात्मा की फ्रीक्वेंसी उच्च स्तर की होती है और मनुष्य की फ्रीक्वेंसी का स्तर निम्न होता है। अतः दोनों का मेल कठिन होता है। इसलिए मनुष्य को ही अपनी फ्रीक्वेंसी का स्तर ऊँचा बढ़ाकर ईश्वर के स्तर तक लाना होगा। जिसके कारण उनसे मेल हो सके। अपनी चेतना को ऊपर उठाने के लिए हमें देहभान की स्मृति

को बदल कर स्वयं को आत्म-भाव में स्थित करना होगा। आत्म-स्वरूप में मन को स्थित करने से हमारे संकल्प परमात्मा की फ्रिकवन्सी से मिलने लगते हैं और तब हमारा ईश्वर के साथ एक स्वाभाविक संवाद कायम हो जाता है। और सहज ही मन के हर भाव का प्रत्युत्तर प्राप्त हो जाता है। फिर तो हम भी उसकी हर बात का संकेत समझ सकते हैं और परमात्मा भी हमारे मन की हर बात को सुन सकते हैं, समझ सकते हैं। कई बार आपने जीवन में ऐसा अनुभव किया होगा कि आप सुबह के समय एकदम विश्राम की (relax) स्थिति में बैठे हो और आप को जैसे कुछ घटित होने का आभास होता है। परन्तु उसे स्पष्ट समझ न सकने के कारण आप उस पर ध्यान नहीं देते। बाद में जब वह घटना प्रत्यक्ष घटित होती है तो आप सोचते हैं कि सुबह-सुबह ही मुझे यह आभास हुआ था, जिसका संकेत ईश्वर ने पहले ही दिया था। लेकिन उसको समझ नहीं पाए। इसलिए जितना आत्मस्थिति में स्थित होने का अभ्यास करेंगे उतना ही उन संकेतों को भी समझना आसान हो जायेगा और जीवन में एक दिव्य आनंद का अनुभव होगा। योग का दूसरा नाम है प्रयोग। कभी यह प्रयोग करके ईश्वर के सामीप्य का अनुभव करें।

जिस प्रकार रास्ते चलते हमें हज़ारों लोग मिलते हैं लेकिन हरेक के साथ अपनी मेंटल फ्रिकवन्सी की ट्यूनिंग नहीं होती भावार्थ हम हरेक को याद नहीं करते क्योंकि याद करने के भी कुछ आधार होते हैं जो इस प्रकार हैं:

याद के चार आधार :

1. **परिचय**- जिसके साथ हमारा थोड़ा भी परिचय होता है,हम उसको याद करते हैं। परिचय के बिना किसी की भी याद संभव नहीं है।

2. **सम्बन्ध**- जिसके साथ हमारा थोड़ा बहुत भी सम्बन्ध होता है, तो उस सम्बन्ध के आधार पर उसकी याद आ जाती है।

3. **स्नेह-प्यार** -जिसके साथ हमारा स्नेह-प्यार होता है, उसको हम याद करते हैं।

4. **प्राप्ति**- जहाँ से कुछ मिलने वाला हो, कुछ प्राप्ति होने वाली हो उसको याद किया जाता है।

संक्षेप में किसी को **याद करने के ये चार आधार** हैं - **परिचय, सम्बन्ध, स्नेह और प्राप्ति**। इन चार आधारों पर चार प्रकार की याद होती है।

जहाँ सिर्फ परिचय है, वहाँ याद करने की मेहनत होती है। जैसे मान लो कि घर में कोई पार्टी है और उसमें सभी परिचित व्यक्तियों को बुलाना है तो एक-एक को बैठ कर याद करेंगे। एक लिस्ट तैयार करेंगे ताकि कोई भी छूट न जाए और याद करके उसको निमंत्रण पत्र भेजेंगे अर्थात् **जहाँ सिर्फ परिचय है, वहाँ याद करने की मेहनत है।** जहाँ सम्बन्ध है वहाँ याद भी स्वाभाविक होती है जैसे कभी-कभी सम्बन्धियों की तीव्र याद सताती है। जैसे माँ का अपने बच्चे के साथ सम्बन्ध है। मान लीजिये कि बच्चा कहीं हॉस्टल में रह कर पढ़ रहा हो, और वहाँ से खबर आ जाए कि बच्चे की तबीयत ठीक नहीं है। तो माँ को क्या होगा? उस बच्चे की याद सताएगी। खाना बना रही होगी - याद बच्चे को करेगी कि क्या वह भी खाना खा रहा होगा? क्या कर रहा होगा? अपना ध्यान रखता होगा या नहीं, दवाई समय पर लेता होगा या नहीं। कितने विचार चलते हैं? कभी-कभी तो बच्चे की याद इतनी सताती है कि रात को नींद भी उड़ जाती है। भले ही दूसरे दिन चाहे बच्चे का फोन आ जाए कि अब वह बिल्कुल ठीक है। फिर भी माँ का दिल यही कहता है कि शायद वह ठीक नहीं है। आखिर जब वह एक बार उसे देख लेती है तब उसका मन शांत हो जाता है। इसका भावार्थ है कि **जहाँ सम्बन्ध है, वहाँ याद सताती है।**

जहां स्नेह-प्यार है वहाँ याद सुखदायी होती है। स्नेह और प्यार से भरी याद में व्यक्ति समाये रहना चाहता है। जैसे किसी कन्या या कुमार को यह पता नहीं कि उनका भावी जीवन साथी कौन है तब तक उनका मन भटकता है। कौन होगा? कैसा होगा? उनके मन में अनेक प्रकार के विचार आते रहेंगे। लेकिन जिस दिन उनका एक दूसरे से परिचय हो जाता है, आपसी सम्बन्ध जुड़ जाता है, उसके बाद उनको कहना नहीं पड़ता है कि अब तुम अपने भावी जीवन साथी को प्यार से याद करो। सिखाना नहीं पड़ता है। जब वे एकान्त में बैठे होंगे तो एक दूसरे की यादों में खो जाएँगे। थोड़ी देर बाद अगर कोई

आकर पूछता है कि यहाँ से कोई गया? तो यही कहेंगे कि माफ करना हमें मालूम नहीं या कहेंगे मेरा ध्यान नहीं था। तो ध्यान कहां था? ध्यान किसको कहते हैं? और ध्यान करने लिए आँखें खुली चाहिए या बंद करनी पड़ती हैं। मनुष्य जब अपने प्रिय व्यक्ति की याद में होता है तो ध्यान लग जाता है, और ईश्वर की याद में बैठो तो मनुष्य कहते हैं कि ध्यान नहीं लगता। **वास्तव में ईश्वर में ध्यान न लगने का मूल कारण यह है कि शायद ईश्वर के साथ हमारा इतना स्नेह-प्यार ही नहीं है।** इसलिए मन लगता नहीं है। जैसे जिस मनुष्य के साथ स्नेह है, प्यार है तो सहज ही उसका चेहरा सामने आ जाता है और मन उनकी यादों में खो जाता है। ईश्वर के साथ हमारा प्यार इसलिए नहीं है क्योंकि हमें न तो ईश्वर का परिचय है और न ही उसके साथ कोई यथार्थ सम्बन्ध है। वैसे मंदिरों में जाकर हमने अपनी प्रार्थना में यह जरूर गाया कि 'तुम मात-पिता हम बालक तेरे'... या 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'...परन्तु उस सम्बन्ध का एहसास न होने के कारण, हमें परमात्मा के प्यार का अनुभव नहीं है। इसी कारण प्राप्ति का भी अनुभव नहीं होता। कहने का भाव यह है कि **जहाँ स्नेह है, प्यार है वहाँ यादों में समा जाते हैं और ऐसी याद में भी सुख और आनन्द का अनुभव होता है।**

जहाँ प्राप्ति है वहाँ याद भी स्वार्थ के आधार पर होती है। जैसे एक बड़ा व्यापारी हो और उसे पता चले कि बड़े शहर से एक व्यक्ति आएगा जो शहर के नामीग्रामी होटल में रुकने वाला है और वह कोई बिज़नेस डील (business deal) करने आने वाला है। उसके साथ अगर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जाए और यह सौदा पक्का हो जाए तो उसे बहुत लाभ हो जाएगा। परन्तु उसके पहुंचने के वक्त का कोई ठिकाना नहीं है क्योंकि वह अपनी गाड़ी से निकला है।

इसलिये रात को देर से भी पहुँच सकता है। उस व्यापारी को प्राप्ति का पता होने के बाद क्या नींद आएगी? सारी रात भी उसे बैठकर इंतज़ार करना पड़े तो बैठेगा या कहेगा कि जाने दो मुझे तो बहुत नींद आ रही है। तभी तो कहा जाता जिन सोया तिन खोया, जिन जागा तिन पाया। परन्तु जब उस सेठ से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जाए और वह मालामाल हो जाए, उसके बाद कभी उस सेठ को याद नहीं करता है। इसका भावार्थ यह है कि **जहाँ प्राप्ति है वहाँ याद स्वार्थ भरी या मतलबभरी होती है।**

संक्षेप में याद के चार आधार एवं चार प्रकार निम्नलिखित हैं:-

जहां परिचय है वहां याद करने की मेहनत है।

जहां सम्बन्ध है वहां याद सताती है।

जहां स्नेह-प्यार है वहां याद में समा जाते है और यह सुखदायी याद होती है।

जहां प्राप्ति है वहां याद स्वार्थ भरी या मतलब भरी होती है।

आज इस तनाव एवं भय के युग में, जहाँ संसार में चारों ओर दुःख-अशांति हैं तो मनुष्यों की याद ईश्वर के साथ किस प्रकार की होगी? मनुष्य की चाहना यही रहती हैं कि परमात्मा की याद सुखदायी हो, परन्तु वह ऐसा कर नहीं पाता।

आज के समय में मनुष्यों की याद ईश्वर के साथ किस प्रकार की है? मनुष्य, ईश्वर को:-

1.स्वार्थ से याद करता है, या

2.भय से याद करता है, या

3.याद में शिकायतें करता है, या

4.गलत सम्बन्ध के आधार पर याद करता है।

ये चारों ही प्रकार की याद अज्ञानता के कारण है।

1. परमात्मा को स्वार्थ से याद करने का तात्पर्य यह है कि वह बार-बार भगवान के साथ एक व्यापारिक सम्बन्ध जोड़ता हैं। कोई भी काम हो जिसमें वह स्वयं को असमर्थ महसूस करता है तो वह कार्य पूर्ण करने लिए अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए परमात्मा को याद करता है और विनती करता है कि हे प्रभु मेरा इतना काम हो जाए तो दो नारियल चढ़ा देंगे। भावार्थ इस काम का भाव दो नारियल है, अगर भगवान कर देगें तो उसको वह दो नारियल चढ़ा देंगे और अगर नहीं किया तो.....?

स्वाभाविक है कि नहीं चढ़ाएँगे। अगर कोई बड़ा काम हो तो परमात्मा के आगे मिन्नतें करेंगे और मन्नत मानेगें कि 101 रुपया का चढ़ावा चढ़ा देंगे या 1001 रुपया चढ़ावा चढ़ा देंगे। जैसा–जैसा काम होगा वैसा-वैसा भाव हम लगाएंगे। उसमें भी कभी-कभी देखा जाता है कि काम हो जाता है तो भूल जाते हैं कि मैंने ऐसी मन्नत भी मानी थी। फिर जब दुबारा ऐसी परिस्थिति आती है तब याद आता है कि अरे! पहले वाली मन्नत भी पूरी करनी बाकी है।

2. जब मनुष्य भगवान को भय से याद करते है तो मनुष्य के मन में हमेशा परमात्मा का

डर बना रहता है। जैसे मान लो कोई व्यक्ति भगवान के सामने यह मन्नत मानता है कि वह प्रतिदिन पाँच बार माला फेरेगा, वह हर रोज़ नियमित रूप से माला फेरता भी है परन्तु मान लो किसी दिन ज्यादा काम की वज़ह से नहीं फेर सके तो उसके मन में एक भय बना रहेगा कि आज 5 बार माला नहीं फेरी अब भगवान नाराज़ हो जायेगें और श्राप दे देंगे। सोचने की बात यह है कि भगवान नाराज़ क्यों होंगे वह श्राप क्यों देंगे? आज मान लो आपका बेटा हो और आप ने उसे कोई काम दिया हो और वह कर न सके तो क्या आप उससे नाराज़ होकर उसे श्राप दे देंगे? इसका मतलब तो यह हुआ कि वह भगवान को प्यार से याद कर माला नहीं फेर रहे थे लेकिन श्राप के भय से माला फेर रहे थे। तभी तो किसी ने सही कहा है - भगवान को याद करो तो प्यार से करो, भय से नहीं। (Don't be God fearing children but be God loving children).

3. कई लोग भगवान को जब याद करते हैं तो जो कुछ उनके पास है उसके लिए भगवान का शुक्रिया नहीं करते लेकिन जो चीज़ उनके पास नहीं होती उसकी शिकायतें जरूर करते हैं। जैसे पड़ोसी के भाग्य को देखकर भगवान से शिकायत रहती कि– 'हे प्रभू, मेरे पड़ोसी का भाग्य तो इतना अच्छा है, मेरा भाग्य ऐसा क्यों नहीं? मेरा भाग्य लिखते समय तुम व्यस्त हो गये थे क्या?' ऐसी शिकायतें जरूर रहती हैं।

4. कई बार लोग अज्ञानता के कारण ईश्वर से गलत सम्बन्ध जोड़ लेते, जैसे कह देते –'हे प्रभु, मैं तेरे चरणों का दास हूँ या तेरे चरणों की धूल हूँ'...या फिर भगवान को बहुत उच्च और स्वयं को नीच समझ लेते.....। अब समझने की बात है कि एक तरफ तो मनुष्य प्रार्थना में यह गाता है तुम मात-पिता हम बालक तेरे और दूसरी तरफ स्वयं को दास समझता, तो आख़िर वह क्या है, बालक या दास क्योंकि दोनों एक साथ तो नहीं बन सकता या तो वह बालक है या तो वह दास है। अब दोनों सम्बन्धों में अंतर क्या है? जैसे घर में बालक होता है या दास या नौकर होता है। दास का घर में कोई अधिकार नहीं होता। वह मालिक को ऊँच और स्वयं को सेवक ही समझता है। मान लो उसे कुछ पैसे की आवश्यकता हो और वह मालिक के सामने जाता है और बड़े संकोच के साथ मालिक से कहता है कि उसे पाँच सौ रुपए की आवश्यकता है, तो मालिक उसे तुरंत निकाल के नहीं दे देता परन्तु पूछेगा कि क्या काम है? जब वह कार्य का उद्देश्य स्पष्ट करता है और मालिक को महसूस होता है कि वह ज्यादा ही मांग रहा है तो वह उसे आधा देकर कहेगा कि वैसे तेरा काम इतने में हो जाना चाहिए फिर भी अगर नहीं हुआ तो बताना। लेकिन वहीं अगर बच्चा आता है और उसे पाँच सौ रुपए चाहिए तो वह

अधिकार से अपने पिताजी से मांगता है और अगर पिता के पास पाँच सौ रुपए नकद नहीं है और हज़ार रुपए का नोट है तो वही निकाल कर दे देता है। यह अंतर है एक दास और बालक के अस्तित्व में। अब हमें निर्णय लेना है हमें कौन सा सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ना है?

दूसरा, कई बार मनुष्य भगवान के पास जाते हैं तो स्वयं को नीच और भगवान को बहुत उच्च समझ भजन गाते हैं कि हे प्रभु आप महान हो, श्रेष्ठ हो, आदि आदि..... और स्वयं के लिए कहते हैं कि मैं नीच, पापी, खल कामी, गंदा बंदा आदि आदि..... और सोचता है ऐसा कहने से प्रभु मेरे गुनाहों को क्षमा कर देंगे। लेकिन सोचने की बात है कि मान लो आप का बच्चा रोज़ आपके सामने आकर कहे कि हे पिताजी आप तो बहुत बुद्धिशाली हो, होशियार हो आदि आदि..... और मैं आपका बच्चा मूर्ख हूँ, निकम्मा हूँ, मुझमें कोई योग्यता नहीं आदि आदि..... तो क्या आप यह बातें अपने बच्चे के मुख से सुन खुश होंगे? आप यही समझेंगे कि यह क्या बोल रहा है? आप प्रसन्न नहीं होंगे लेकिन आप अपने बच्चे को अपने जैसा या अपने से भी आगे देखना चाहते हैं। तो भगवान भी हमारा पिता है वह हमारी ऐसी प्रार्थना सुन खुश नहीं होते। वह हमें भी अपने जैसा देखना चाहते हैं। कई लोग सोचते हैं हम तो हैं ही परमात्मा के बच्चे? लेकिन रोज़ मंदिर में प्रार्थना गा लेने से भी बच्चे नहीं बन जाते। जैसे एक राजा का बेटा राजकुमार होता है तो उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, बोल-चाल, व्यवहार कैसा होता है? उसमें राजसी संस्कार होता है, उसे सिखाना नहीं पड़ता कि तू राजकुमार है और तुम्हें ऐसा करना चाहिए या ऐसा नहीं करना चाहिए परन्तु अपने आप उसमें वह बातें स्वतः आने लगती हैं। ठीक इसी प्रकार हम भी भगवान के बच्चे हैं तो क्या हमारा उठना, बैठना, बोल-चाल सब ईश्वर के बच्चे कहलाने जैसा है? अगर नहीं तो हम अपने को भगवान के बच्चे कैसे कहला सकते? हमें भी भगवान जैसी वह दिव्यता धारण करनी है। यह है आध्यात्मिक समझ।

परमात्मा से यथार्थ सम्बन्ध जोड़कर प्यार से याद करना ही राजयोग है। सवाल है कि

कितने प्रकार के सम्बन्ध हम परमात्मा के साथ जोड़ सकते हैं? हमने अपनी प्रार्थना में तो गाया कि:

"त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव,
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् ममदेव देवा..."

हम ने इस प्रार्थना का कभी प्रत्यक्ष में अनुभव नहीं किया कि परमात्मा मात-पिता हैं तो कैसे हैं? या वह बन्धु या सखा हैं तो कैसे हैं? मनुष्य के अति निकट के छह सम्बन्ध हैं जिससे उसका लगाव होता है, जिसकी याद उसे बार बार सताती है। वह छह सम्बन्ध इस प्रकार हैं :-

1. मात-पिता और बच्चे का सम्बन्ध:

शारीरिक माता-पिता को याद करना सहज है। माता-पिता को उनके गुणों के आधार पर उनकी विशेषताओं के आधार पर, प्यार भरी पालना के आधार पर या कभी उनकी सख्ती या शिष्टाचारों में भी उनका हमें योग्य पात्र बनाने की शुभभावना के आधार पर याद किया जाता हैं। ऐसे ही परमात्मा अगर हमारे माता-पिता हैं तो उनको कैसे याद करें? परमात्मा को भी उनके गुणों के आधार पर, उनकी प्यार भरी पालना के आधार पर याद करना है। इस बात को समझने के लिये एक कहानी याद आती है:

"एक बार एक व्यक्ति स्वप्न में अपनी जीवनयात्रा देखता है। उसे ऐसा लगता है जैसे वह समुद्र के किनारे-किनारे चल रहा है। ध्यान से देखता है तो कहीं-कहीं उसे चार पैरों के निशान दिखाई पड़ते है और कहीं-कहीं दो पैरों के निशान दिखाई देते हैं। जब वह और ध्यान से देखता है तो महसूस करता है कि जब-जब उसके जीवन में सुखभरे दिन थे, उत्साहभरे दिन थे, तब चार पैरों के निशान दिखाई दिये, और जब उसके जीवन के दर्दभरे दिन थे, कठिनाईयों भरे दिन थे, तब उसको सिर्फ दो पैर के ही निशान दिखाई

दिये। वह मन ही मन भगवान से बातें करता है, 'हे प्रभु, मैं तो समझता था कि आप हर वक्त मेरे साथ हो लेकिन ये आज मैं क्या देख रहा हूँ ? जब मेरे जीवन के सुखभरे दिन थे, उत्साहभरे दिन थे, तब तो आप मेरे साथ- साथ चलते रहे। यह दो आपके पैरों के निशान और दो मेरे पैरों के निशान। लेकिन जब मेरे जीवन के दु:खभरे दिन थे, कष्टों भरे दिन थे, जब मुझे आपकी सबसे ज्यादा आवश्यकता थी तब तो आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गए थे ? यह दो ही निशान क्यों दिखाई दे रहे हैं ? तो ईश्वर मुस्कुराते हैं – और उसको कहते हैं –'नहीं बेटा, तब भी मैं तो तेरे साथ ही था। तेरे खुशीभरे दिनों में, उत्साहभरे दिनों में तेरी उंगली पकड़कर चल रहा था इसलिये जो चार पैरों के निशान दिखाई दिये उसमें दो तेरे और दो मेरे हैं, लेकिन तेरे कष्टों भरे दिनों में, तेरे दर्दभरे दिनों में तेरा दर्द मुझसे भी सहा नहीं गया, इसलिये मैंने तुम्हें अपनी बाँहों में उठा लिया था। तुझे चलने का और कष्ट नहीं देना चाहता था। ये दो पैरों के निशान जो दिखाई दे रहे हैं ना, 'वो तेरे नहीं हैं – मेरे हैं।' तो यह है ईश्वर का प्यार।''

अगर हम अपनी जीवन यात्रा में भी मुड़ करके देखें कि जब भी हमारे जीवन में कोई कठिनाई आई, कोई दु:ख-दर्द आया, उस वक्त उस दु:ख को पार करने की जो शक्ति मिली वह कहाँ से मिली थी? दुनिया के लोग, मित्र-सम्बन्धी जब मिलने आते हैं तो सहानुभूति के दो बोल सुना कर चले जाते। लेकिन इतने बड़े दर्द की घटना को पार करने की जो शक्ति अदृश्य रूप में प्राप्त हुई, वह कहाँ से प्राप्त हुई थी? यही तो ईश्वर का प्यार है। सिर्फ उसको महसूस करना पड़ता है। ऐसा होता है मात-पिता और बच्चे का सम्बन्ध। कभी परमात्म प्यार को भी महसूस करके तो देखो।

2. शिक्षक - विद्यार्थी का सम्बन्ध :

एक बच्चा जब स्कूल जाता है तो वहाँ उसका अपने शिक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। घर आएगा तो अपने मात-पिता के सामने शिक्षक की ही बातें करेगा। माँ-बाप को शिक्षक में कोई विशेष रुचि नहीं होती। परन्तु शिक्षक के साथ बच्चे का एक बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। हमें समझना होगा कि अगर बच्चे का अपने शिक्षक से प्यार होगा तभी तो पढ़ाई से भी प्यार होगा ना? एक योग्य शिक्षक का हर कर्म रूपी बीज फलदायक होगा, निष्फल नहीं। इस पर एक सत्य घटना

याद आती है:

''एक बार एक बच्चा सातवीं क्लास तक अपनी कक्षा में पहले नम्बर पर रहा करता था। पहला नम्बर आने वाले बच्चे के साथ टीचर का स्नेह का सम्बन्ध अपने आप ही हो जाता है। उस टीचर को वह बच्चा बहुत अच्छा लगता था।उसको लगता था कि यह होवनहार है, इसलिए पढ़कर कुछ बड़ा बनकर दिखाएगा। आठवीं क्लास में उस टीचर ने बच्चे को देखा ही नहीं। कुछ दिन तक जब वह स्कूल नहीं आया तब शिक्षक ने उसके दोस्तों से पता किया तो उसके दोस्तों ने बताया कि उसके पिताजी ने कहा कि उनके पास फीस भरने के लिए पैसा नहीं है। इसलिये उसने उसे अपने साथ घर के काम में लगा दिया और कहा जो मैं करता हूँ वही करो। सातवीं तक पढ़ लिया बहुत हो गया। उस शिक्षक को बड़ा दर्द हुआ कि इतना अच्छा बच्चा, पढ़कर जीवन में जरूर कुछ बनता। उसे खेती में क्यों लगा दिया ? उस दिन शाम वह शिक्षक उसके पिता से मिलने गया, कि वह इस बच्चे का भविष्य खत्म न करे, ये बहुत ही होवनहार है। उसके पिता ने कहा कि देखो भाई पढ़ाना कौन नहीं चाहता लेकिन फीस भरने का भी तो पैसा होना चाहिये ? मेरे पास उसकी फीस भरने का पैसा नहीं है। तो उस शिक्षक ने कहा - उसकी फीस मैं भरूँगा। आप उसको स्कूल भेजो। उस साल आठवीं की फीस शिक्षक ने भर दी। इतना प्यार था उनको उस बच्चे से। बाद में, उसने उसको छात्रवृत्ति (scholarship) दिलाकर पढ़ने के लिए विदेश भेज दिया। वह बच्चा जब वैज्ञानिक बन कर वापस भारत लौटा, तो उसके मित्र उसको लेने गए थे। जब गाड़ी गाँव पहुंची तो गाड़ी से उतर कर उसने अपने दोस्तों से कहा कि तुम सामान घर में ले जाओ, मैं अभी आता हूँ। वह वहाँ से सीधा अपने उसी शिक्षक के घर गया। उसने देखा वह बहुत बुज़ुर्ग हो चुके थे, आँखों से दिखाई भी नहीं दे रहा था। सेवा-निवृत्त जीवन जी रहे थे। उनके पास जा करके उनके पैरों को स्पर्श किया। तो उस टीचर ने पूछा - कौन हो ? तो लड़के ने कहा - मैं आपका विद्यार्थी हूँ और वैज्ञानिक बन कर आया हूँ और इसके पहले कि कोई काम शुरू करूँ, उसके लिए आपका आशीर्वाद चाहता हुँ। उस शिक्षक को इतनी खुशी हुई उस वक्त कि उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगीं कि आज सचमुच यह कुछ बन गया है। नहीं तो वहीं खेती कर रहा होता। उसको गले लगा लिया। खूब प्यार किया उसको। उसके बाद शिष्य अपने घर में गया। उसके दोस्तों ने कहा अरे कहाँ चला गया था ? अपने शिक्षक से तो सुबह भी मिल सकते थे। तब उस लड़के ने कहा कि आज मैं जो कुछ भी बना हूँ, उनकी वजह से बना हूँ। इसलिये उनका बहुत बड़ा उपकार है। यह है शिक्षक और छात्र का प्रेमयुक्त सम्बन्ध।''

परमात्मा भी हमारा परम शिक्षक है और जीवन में कई परिस्थितियाँ हमें पाठ पढ़ाकर अनुभवी बनाती हैं, और परमात्मा ही हमें परिपक्व बनाने के लिए कई उलझी हुई समस्याओं के रूप में परीक्षा लेते हैं। इस तरह एक-एक का जीवन संवारतें हैं। दुनिया में शिक्षक कुछ विद्यार्थियों का जीवन बना सकता है लेकिन वह परम शिक्षक परमात्मा ऐसा शिक्षक है जिसने कितने ही लोगों का जीवन बना दिया, तो कमाल किसका है? परम शिक्षक परमात्मा की है। इसलिये उस परम शिक्षक की हर शिक्षा और उसकी हर बात से हमारा इतना प्यार हो जाता है। अब क्या ऐसे परम शिक्षक की याद न आए ऐसा हो सकता है, जिसने इतना सुन्दर जीवन बनाया हो?

3. परम सद्गुरु और शिष्य का सम्बन्ध :

दुनिया में अनेक गुरु है लेकिन परमात्मा सर्व का परम सद्गुरु है। उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। जब कोई शिष्य, गुरु के सामने जाता है या सेवा करता है, तो उसके मन में यही भावना होती है कि मैं स्वयं को गुरु के आशीर्वाद का पात्र बनाऊँ। इसी प्रकार परमात्मा भी हमारे परम सद्गुरु हैं, तो हम उनके आशीर्वाद के पात्र कैसे बनें इस सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर दृष्टांत इस प्रकार है:-

''एक बार एक महात्मा एक राज्य की सीमा के बाहर अपनी छोटी सी कुटिया में रहते थे और तपस्या करते थे। उस राज्य से जो भी लोग आते-जाते थे वह महात्मा को देखकर झुककर प्रणाम करते थे। महात्मा की नज़र उन पर पड़ती थी तो वह अपने आशीर्वाद का हाथ उन पर रख देते थे। महात्मा बड़े सिद्ध पुरुष थे। उनका आशीर्वाद लोगों के कष्ट दूर कर देता था। सारे राज्य में यह बात फैल गई कि राज्य की सीमा के बाहर जो महात्मा रहते हैं वह बहुत सिद्ध पुरुष हैं। धीरे-धीरे यह बात राजा के कान तक पहुँचीं। उस राज्य का राजा बड़ा लालची था। राजा सोचने लगा कि ऐसे महात्मा को तो राज्य की सीमा के अन्दर ही रहना चाहिए ताकि वह लोगों के कष्ट दूर करें और लोग

राज्य को धन-धान्य से सम्पन्न करें। राजा ने अपने मंत्री से यह सलाह की और फिर मंत्री को महात्मा के पास अपना प्रस्ताव रखने लिए कहा। मंत्री राज दरबार के कुछ लोगों को लेकर गये और महात्मा से बड़ी विनम्रता के साथ अपने राजा की बात सुनाई और कहा कि महात्मा जी, आप राज्य में आकर रहिए और उसके लिए आपको जो भूमि चाहिए वह उपलब्ध कराई जायेगी। आश्रम बनाने लिए जितना सोनाया मोहरें चाहिए वह भी दी जाएँगी। महात्मा अपनी कुटिया में गये और एक कमण्डल लेकर बाहर आये और मंत्री से कहा चलो राजा के पास। मंत्री जी को बड़ा आश्चर्य लगा कि महात्मा इतना जल्दी तैयार हो जायेंगे। मंत्री जी ने राजा को संदेश भिजवा दिया और वह राज महल पहुँचे तो राजा ने बड़े सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया। बड़े आदर के साथ महल में ले गये और राजा ने पुन: सारी बात दोहराई, महात्मा जी ने कमण्डल को आगे किया और राजा से कहा कि कमण्डल भरके सोना दे दीजिए। राजा ने जैसे ही कमण्डल उठाया तो देखा कमण्डल बहुत अस्वच्छ था, और उसमें से बदबू भी आ रही थी। राजा ने अपने दास को बुलाकर वह कमण्डल स्वच्छ कर लाने लिये कहा। उस दास ने उसे बहुत अच्छी तरह साफ करके राजा के हाथ में दिया। राजा ने उसमें सोना और मोहरें भर दीं और महात्मा जी के हाथ में देकर करबद्ध होकर नमन करने लगा, यही सोचकर कि अभी महात्माजी उन्हें भी कोई आशीर्वाद देंगे लेकिन महात्मा जी मौन हो गये और कुछ भी नहीं कहा। राजा ने निवेदन किया महात्मा जी कोई आशीर्वाद दे दीजिए। फिर भी महात्मा जी मौन रहे। राजा ने फिर निवेदन किया महात्मा जी कोई वरदान देकर हमें अनुग्रहीत कीजिए। तब महात्मा जी ने कहा पहले पात्र साफ करो। राजा ने कहा कि मैं समझा नहीं कि आप क्या कहना चाहते हैं ? महात्मा जी ने कहा कि जैसे आपको कीमती सोना और मोहरें इस कमण्डल में डालनी थीं और कमण्डल अस्वच्छ था तो आपने पहले पात्र को साफ कराया। ठीक इसी प्रकार आशीर्वाद बहुत अमूल्य होता है उसे रखने के लिए मन रूपी पात्र भी साफ होना चाहिए।"

भावार्थ यह है कि परम सद्गुरु परमात्मा के वरदानों को प्राप्त करने लिए हमें भी अपना मन साफ रखना होगा और तब हमारा जीवन धन्य हो जायेगा।

इस तरह हम **परम मात-पिता, परम शिक्षक और परम सद्गुरु के साथ अपना सम्बन्ध** जोड़ सकते हैं। यह तीन सम्बन्ध ऐसे हैं जिनसे हम लेते अधिक हैं, इसलिए हम इन सम्बन्धों का ऋण कभी चुका नहीं सकते।

4. ईश्वर से मैत्री सम्बन्ध (खुदा दोस्त) :

परमात्मा से हम दोस्ती का सम्बन्ध भी जोड़ सकते हैं। दुनिया में खुदा दोस्त की बहुत कहानियाँ हैं। कभी खुदा को अपना दोस्त बनाकर के तो देखो कैसा दोस्त है? संसार में जो शिरोमणि भक्त आत्मायें हुई है उन्होंने भी ईश्वर से कोई न कोई सम्बन्ध जोड़ा तब उसके प्यार को वह अनुभव कर पाये। जैसे सुदामा ने भी दोस्ती का सम्बन्ध जोड़ा था तो चावल मुट्ठी के फल स्वरूप महल पा लिया, इसी तरह नरसिंह मेहता ने भी दोस्ती का सम्बन्ध जोड़ा तो उसका सारा कार्य सफल हो गया। भगवान से जो भी सम्बन्ध जोड़ कर उसे याद करें तो परमात्मा भी उस सम्बन्ध में बंध जाता है। हम चाहे निभाने में चूक कर सकते हैं लेकिन वह वफादारी से सम्बन्ध निभाता है। दोस्ती का सम्बन्ध भी बड़ा प्यारा सम्बन्ध है। परन्तु हर किसी को दोस्त नहीं बनाया जाता। दोस्ती का भी कुछ आधार है। दोस्ती का आधार है समानता। जहाँ कोई न कोई समानता होती है वहाँ दोस्ती होती है। चाहे विचारों की समानता हो, या उम्र की समानता हो, या एक जैसी पसन्द की समानता हो। इसी तरह क्या ईश्वर के साथ हमारी भी कोई समानता हो सकती है? जरूर हो सकती है।

सबसे पहली समानता है **स्वरूप की समानता**। परमात्मा प्रकाशपुँज है, मैं आत्मा भी प्रकाशपुँज हूँ। दोनों का एक जैसा स्वरूप है। दूसरी समानता है **गुणों की समानता**। आत्मा सतोगुणी स्वरूप है और परमात्मा सर्व गुणों का सागर है। तो गुणों की समानता अर्थात् स्वभाव की समानता – दोनों की नेचर, प्रकृत्ति एक जैसी है। तीसरी समानता है **धाम की समानता।** मानो कोई विदेश में चला जाए और वहां कोई अपने गाँव का व्यक्ति मिल जाए, तो वहाँ भी दोस्ती हो जाती है - अपने गाँव से है ना! तो परमात्मा के साथ हम एक ही धाम के हैं। परमात्मा भी परमधाम का निवासी है और हम आत्माएँ भी परमधाम के निवासी हैं।

जब यह तीन-तीन समानताएं हैं फिर दोस्ती हो ही सकती है। दोस्त को कैसे याद करना होता है? मन में कोई भी बात हो तो हो सकता है मात-पिता से छुपा लें लेकिन दोस्त को

मन की हर बात सुना देते हैं। परमात्मा से भी दोस्ती का संबंध जोड़कर तो देखो कितना सुखद अनुभव होता है। जैसे हर बात में हमारे पास एक ऐसा सहारा है जिस पर हम भरोसा कर सकते हैं। जो कभी धोखा नहीं देंगे। इस दुनिया के दोस्त तो मतलबी होते हैं और समय आने पर दिखाई भी नहीं पड़ते परन्तु भगवान निःस्वार्थ भाव से सदा साथ निभाते हैं। तो हमें भी मतलब से उससे दोस्ती नहीं जोड़नी है लेकिन वफादारी से दोस्ती का अनुभव करें। दोस्ती के संबंध पर एक कहानी याद आती है :

''एक बार एक बंदे की दोस्ती खुदा से हो गई। दोनों बहुत प्यार भरी बातें करते थे। एक दिन बंदे के मन में एक बिचार आया और उसने खुदा से कहा कि ऐ खुदा, आप तो जन्नत के मालिक हो। कभी मुझे भी अपनी जन्नत के सुख का अनुभव कराओ। खुदा ने पूछा कि आखिर तुम्हारा भाव क्या है। बंदे ने कहा कि वह दस दिन के लिए जन्नत में रहकर जन्नत का सुख अनुभव करना चाहता है। खुदा ने कहा बस सिर्फ दस दिन के लिए ? बंदे ने हामी भरी और खुदा उसे जन्नत में ले गए और खुदा ने कहा लो आज से दस दिन के लिए मैं तुम्हें स्वर्ग का मालिक बनाता हूँ और तुम जितना सुख, आनंद भोगना चाहो भोग लो। पहले दिन ही बंदे ने महसूस किया कि उसने दस दिन कहकर गलती कर दी है लेकिन अब क्या कर सकता था। परन्तु उसने देखा कि स्वर्ग में हर कार्य बहुत जल्दी हो जाता है तब उसे मन में विचार आया कि क्यों नहीं मैं अपने लिए एक ऐसा ही स्वर्ग दस दिन में तैयार करवा दूँ। उसने सारे संसाधन लगाकर दस दिन में अपने लिए वैसा ही स्वर्ग तैयार करवा दिया और दस दिन के बाद खुदा को उसकी जन्नत लौटा दी। जब खुदा ने देखा कि उसने अपने लिए ऐसा ही स्वर्ग तैयार करवा दिया तो खुदा को भी उस बंदे पर हंसी आ गई कि इस बंदे ने मुझे भी नहीं छोड़ा लेकिन गुस्सा नहीं आया। खुशी हुई कि चलो अब बराबर की दोस्ती तो हो गई। यह है खुदा के साथ सम्बन्ध निभाने की विधि, एकदम न्यारी और प्यारी।''

5. प्रियतम का सम्बन्ध :

इसी तरह परमात्मा को प्रियतम बना कर के देखो और उसको आशिक-माशूक रूप में याद करो। दुनिया में लोग अपने पति को परमेश्वर मानते हैं लेकिन यहां परमेश्वर को अपना पति बनाना है यह भी बड़ा अपनेपन का रिश्ता है। जब भगवान को अपना जीवन साथी बना देते और प्यार से उसे याद करते हैं, यही तो यथार्थ भक्तियोग है, जहाँ

परमात्मा भी कदम-कदम पर हमारा ध्यान रखता है। मीराबाई ने श्री कृष्ण से प्रियतम का सम्बन्ध जोड़ा था और उसी स्वरूप में प्यार से याद करती थी और श्री कृष्ण भी प्रियतम बनकर उसके सामने आये और राणा के द्वारा भेजे हुए ज़हर के प्याले को अमृत बना दिया। इसी तरह परमात्मा को प्रियतम बनाने से जीवन का विष भी परिवर्तन होकर

अमृत बन जाएगा। वह प्रियतम इतना अच्छा है जो आपकी हर बात का टेन्शन स्वयं ले लेता है। दुनिया में ऐसा प्रियतम कोई मिलेगा? दुनिया में थोड़ा भी कुछ ऊपर-नीचे हो जाता है तो जीवन साथी दुःख भी देते, मूड भी बदलते, डाँट भी सुननी पड़ती है और कभी हँसाएँगे, कभी रुलाएँगे। यहाँ हमारा प्रियतम इतना अच्छा है कि कभी दुःख नहीं देता। कभी मूड ऑफ नहीं करते, सदा हर्षाते हैं, सदा प्रीति की रीत निभाते हैं। अगर कोई गलती हो भी जाती है तो प्यार से उसे सुधार लेते और किसी के सामने प्रत्यक्ष भी नहीं होने देते। इतना प्यार वह करता है हमें। उसी ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ करके देखो कितना **सुन्दर समय बीत जाता** है। **यह है पाँचवा सम्बन्ध - प्रियतम का।** उसकी याद तो सदैव बनी रहती है। अब आप सोचो कि क्या ऐसे भगवान की याद भूल सकती है?

6. भगवान को अपना बच्चा बनाना:

भगवान को कभी अपना बच्चा बनाकर के देखो, वह बच्चे का सुख भी आपको अनुभव कराता है। वह कोई जायदाद का हिस्सा नहीं मांगता, कोई टेन्शन नहीं देता और ही आपकी सेवा करके सुख का अनुभव करायेगा। जैसे शास्त्रों में दिखाया गया है कि सती अनसूइया ने भगवान को बच्चे के रूप में देखा, तो वह भी बच्चा बन करके आ गया। इस संबंध में

एक बहुत सुन्दर बात याद आती है:-

''एक माताजी थी, उनके तीन बेटे थे। परन्तु उन्होंने चौथा बेटा भगवान को माना था। वह जो कुछ भी लाती थी उसके चार बराबर भाग करती थी। उनके तीन बेटे धीरे-धीरे बड़े होते गये और नौकरी करने कोई कहीं, कोई कहीं बाहर चले गये। माता जी अकेली रह गयीं। परन्तु उनको खुशी थी कि चौथा बेटा उनके पास है, उनके साथ है। हर रोज़ वह अपनी आध्यात्मिक पढ़ाई करने ब्रह्माकुमारी आश्रम पर जाती थीं और बहुत खुश रहती थीं। एक दिन वह गई नहीं तो बहनों को चिंता हुई कि यह माता जी हर रोज़ सुबह-सुबह प्रवचन सुनने आती हैं और उस दिन नहीं आयीं। बहनों ने सोचा कि कहीं उनकी तबीयत तो खराब नहीं है, जाकर देखकर आते हैं। वह जैसे ही आश्रम से निकली तो देखा माता जी सामने से आ रही हैं। पास आने पर उनसे पूछा माता जी आज सुबह नहीं आये! तो माताजी मुस्कुराकर कहने लगी कि आज वह अपने बेटे के साथ घर पर ही थी। बहनों को लगा कि उनके तीन बेटों में से कोई तो घर आया होगा। माता जी ने कहा कि मेरे उन तीन बेटों को कहाँ फ़ुर्सत है, मैं तो अपने चौथे बेटे के साथ ही थी। फिर उसने सारी बात सुनाई कि उसको रात से ही बहुत बुखार था और रात को भी उसे नींद नहीं आयी, बदन बहुत टूट रहा था। सुबह वह उठी भी परन्तु इतनी कमज़ोरी लग रही थी कि उसकी हिम्मत ही नहीं हुई कि उठकर रसोई-घर में जाकर पानी भी पी सके। फिर मैनें अपने चौथे बेटे से कहा कि बेटा तुम एक गलास पानी नहीं पिलायेगा। उसने बताया कि कोई आया नहीं लेकिन जो गला सूख रहा था वह गीला होने लगा और ऐसा लगा मानो उसने पानी पिया। फिर लेट गई तो महसूस होने लगा जैसे धीरे-धीरे कोई पैर दबा रहा है, देखती है तो कोई है नहीं लेकिन बराबर ऐसा अनुभव हो रहा था। फिर महसूस होने लगा जैसे कोई प्यार से सिर पर हाथ फेर रहा है और उसी में ही उसे नींद आ गई और दो घंटे इतनी अच्छी नींद आयी जो वह जब उठी तो न बुखार था, न ही बदन दर्द था और शरीर एकदम हल्का हो गया था। जैसे एक नई ताजगी स्वयं में महसूस कर रही थी। फिर तैयार होकर वह आश्रम पर आ गई। वह माता जी इतनी खुश थी कि मेरा चौथा बेटा तो मेरी सेवा भी करता है।''

तो कभी भगवान को अपना बेटा बनाकर देखो, वह कितना सुख देता है और वह बिना किसी अपेक्षा के हर प्रकार से आपकी सेवा भी करेगा। यह सुख भी बड़ा न्यारा और निराला है।

कई बार लोग सवाल करते हैं कि वह जिस विधि से भगवान को याद करते हैं उस विधि में और राजयोग या मैडीटेशन में क्या अंतर हैं?

(1) प्रार्थना और मेड़िटेशन में क्या अंतर?

कई बार कई लोग हमसे यही पूछते हैं कि वह रोज़ प्रार्थना करते हैं फिर प्रार्थना और मेडीटेशन में क्या अंतर है? क्या प्रार्थना करना काफी नहीं है? वास्तव में प्रार्थना और मेडीटेशन एक नहीं है, प्रार्थना और मेडीटेशन में बहुत फर्क है। प्रार्थना करना अर्थात् मन्दिर में गए, हाथ जोड़ा और जो कुछ बोलना था बोल लिया, सर झुकाया और बाहर आ गए। खड़े नहीं रहते सुनने के लिये कि क्या वह भी मुझे कुछ कह रहे हैं? भावार्थ यह है कि प्रार्थना में हम भगवान को बोल कर चले आते हैं। उसकी नहीं सुनते, टाइम नहीं है। ध्यान वा मेडीटेशन का अर्थ है कुछ हम बोलें फिर अपने मन को शांत करें और सुनें कि वह भी हमसे कुछ कह रहे हैं। हम से बहुत अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। इस संदर्भ में एक कहानी याद आती है:-

''एक समय एक ग्वाल-बाल गायों को चराने जंगल में ले जाता था। वह उन्हें एक खुले मैदान में घास चरने के लिए छोड़ देता था। स्वयं वह लड़का अच्छी सी जगह देख बैठ जाता था। सारा दिन अकेले में भगवान से बातें करता रहता था। रोज़ उसके मन में अलग- अलग विचार आते थे। एक दिन उसके मन के अन्दर विचार आया कि जैसे मैंने गायों को छोड़ दिया और सभी घास खा रहीं हैं, और मैं शांन्ति से इस झाड़ के नीचे बैठा हूँ। ऐसे ही ईश्वर ने भी हमें इस संसार में छोड़ दिया है। हर एक अपना- अपना कर्म कर रहा है और अपनी कमाई खा रहा हैं। अब वह भी मेरी तरह शांति से कहीं बैठा ही होगा ना ? वह ग्वाला अपनी भोली समझ से सोच रहा था और मन ही मन

भगवान से बातें करने लगा, 'हे भगवान, आप भी कहां अकेले बैठे होंगे, मैं भी यहाँ अकेला बैठा हूँ, मुझे तो पता नहीं कि आप कहां हो लेकिन आपको तो पता है कि मैं यहां हूँ। क्यों नहीं थोड़ी देर के लिए आप यहाँ आ जाते हम साथ बैठेंगे, कुछ बातें करेंगे, गपशप करेंगे, टाइम पास करेंगे।' वह अकेला- अकेला बड़बड़ा रहा था। उसी समय में वहाँ से एक पंडित जी गुज़र रहे थे। पंडित जी ने देखा यह लड़का अकेला- अकेला कुछ बड़बड़ा रहा है तो पूछा - 'ऐ लड़के ! किससे बात कर रहा है ?' लड़के ने कहा - 'किसीसे नहीं।' पंडित जी ने कहा 'अरे, तू बड़बड़ा रहा है, किससे बातें कर रहा है ?' तब उस लड़के ने कहा, 'किसी से नहीं, भगवान से बातें कर रहा हूँ।' पंडित जी ने कहा, 'भगवान से बातें कर रहा हैं ? क्या बातें कर रहा था, हम भी तो सुनें ?' तो उसने अपने मन के भाव व्यक्त कर दिये कि भगवान से कह रहा था कि थोड़ी देर के लिये वह आ जाये, बैठेंगे, बातें करेंगे, टाईम पास करेंगे। पण्डित जी को उस लड़के पर बड़ा गुस्सा आया और कहने लगे कि भगवान कोई टाइम पास करने के लिये हैं क्या ? तुम जानते भी हो कि भगवान कौन है और यह कोई तरीका है भगवान से बातें करने का ? उस लड़के ने कहा - पंडित जी मुझे तो ऐसा ही आता है, मैं तो रोज़ ऐसी ही बातें करता हूँ। तो पंडित जी ने कहा - ऐसी बातें नहीं करते, पाप लगेगा। तब उस लड़के ने बड़ी विनम्रता से पंड़ित जी को कहा कि फिर कैसी बातें करनी चाहिये आप मुझे सिखाओ, क्योंकि जंगल में सारा दिन मैं अकेला होता हूँ और अकेले में समय बीतता नहीं है। पंडित जी ने कहा ठीक है, बैठो, मैं तुमको सिखाता हूँ, और संस्कृत का एक श्लोक पक्का कराना आरंभ कर दिया। उस बालक को संस्कृत नहीं आती थी। उस श्लोक का एक-एक शब्द पक्का कराते-कराते, रटाते-रटाते दो घंटे लग गए। बच्चे का दिमाग अच्छा था, उसने सारा श्लोक रट लिया। पंडित जी ने कहा - रोज़ ऐसे ही याद करना। यह तरीका है भगवान को याद करने का। लड़के ने कहा पंडित जी, अब बिल्कुल चूक नहीं होगी ऐसे ही रोज़ याद करूँगा। उसने वह रटा हुआ श्लोक बोलना आरंभ कर दिया। पंडित जी वहाँ से चल पड़े और मंदिर पहुंच कर भगवान से प्रार्थना करने लगे और कहा कि 'हे प्रभू, आज मैंने कितना अच्छा काम किया ! एक बालक को आपके साथ बात करने की विधि सिखाई।' इतने में एक आकाशवाणी हुई कि 'तुमने जो किया वह ठीक नहीं किया।' पंडितजी ने कहा 'ठीक नहीं किया ? क्यों प्रभु ?' तब उस आकाशवाणी से सुनाई दिया कि 'वह बच्चा रोज़ जंगल में आता है, कभी क्या बात करता है, कभी क्या ? कभी तो ऐसी बातें करता है जो मुझे भी हंसी आ जाती थी। मैं रोज उसका इन्तजार करता था कि आज वह आकर मुझसे क्या बात करेगा ? वह बच्चा मुझे खुश कर देता था। लेकिन आज से तू उसे जो रटा के आया है, वही रटी-रटाई बातें बोलता रहेगा, बोलता

रहेगा। जिसका भाव भी वह जानता नहीं। उन भावहीन बातों को सुनने में मेरी कोई रुचि नहीं है। आज से तूने मेरे एक बच्चे को मुझसे दूर कर दिया, यह अच्छा नहीं किया।''

कहीं हम भी वही रोज, रटी-रटाई प्रार्थना तो नहीं बोल रहे हैं? अगर रोज रटी-रटाई वही प्रार्थना बोल रहे हैं तो भगवान को उसको सुनने में कोई रुचि नहीं है। भक्ति में भी यही कहा हुआ है –**भगवान भावों का भूखा है। उनको बड़े-बड़े अलंकारिक शब्दों वाली कोई प्रार्थना नहीं चाहिये। उनको तो दिल से कही हुई भाव भरी बातें चाहिएं।**

(2) विचार शून्य अवस्था और मेडीटेशन में क्या अंतर हैं?

कई लोग सोचते हैं कि क्या मेडीटेशन में विचारशून्य हो जाना चाहिये। परन्तु मेडीटेशन एक लेटिन शब्द 'मेडिरी से निकला है जिसका मतलब है स्वयं की भीतरी रुहानी शक्ति से स्वयं को नीरोग करना (to heal thyself from within)।' अगर कोई विचार शून्य हो जाए तो अपने आप को भीतर से स्वस्थ कैसे कर सकेंगे। मेडीटेशन में विचार शून्य होने की भी आवश्यकता नहीं है। वैसे भी कोई कितनी देर विचार शून्य रह सकता है। विचार मानव मन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मन की उस प्रक्रिया को न तो दमन करना चाहिए और न ही उसे अमन बनाना चाहिए, परन्तु उसे सुमन बनाना चाहिए अर्थात् उसे एक सकारात्मक दिशा देनी चाहिए। इस बात को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है:-

''जैसे एक नदी है, जिसका बहाव बहुत तेज़ है। कोई एक व्यक्ति सोचता है कि कितना पानी व्यर्थ बह रहा है, क्यों नहीं एक दीवार बनाई जाए ताकि पानी का सदुपयोग किया जाए। ऐसा सोचकर वह एक दीवार बना देता है। पानी रुक जाता है, लेकिन एक समय आया जब पानी की शक्ति दीवार की शक्ति से बढ़ गई और वह दीवार ढह गई और चारों ओर पानी फैल गया जिससे बहुत नुकसान हुआ। परन्तु वहीं एक इंजीनियर आता है और वह एक बांध बनाता है।''

पानी से बिजली उत्पन्न करता है साथ ही नहर बनाता है जिससे वह बहुत दूर तक पानी

को पहुंचाता है, जिससे कई गांवों की बंजर ज़मीन को पानी मिलने लगता है और हरियाली आ जाती है। उस पानी का सदुपयोग हो जाता है। ठीक इसी प्रकार हमारे मन के विचार भी पानी के बहाव की तरह हैं, जो सारा दिन चलते ही रहते हैं, उसे भी हम सिर्फ रोक लें तो वह कितनी देर रोक पायेंगे। सारा दिन तो नहीं रोक पायेंगे क्योंकि हमें तो कर्म करना है। इसलिए अभ्यास ऐसा करें जो हम सही अर्थ में कर्मयोगी बन सकें। उसके लिए हमे विचारों को रोकने की या विचार शून्य होने की जरूरत नहीं लेकिन अपने विचारों को एक सकारात्मक दिशा देने की आवश्यकता है, जिससे हमारा मन, सुमन बन जायेगा। भगवान से प्यार भरी बातें ही तो करनी है, वही सकारात्मक विचार बन जाते हैं। कई बार कई लोग सोचते हैं कि परमात्मा से क्या बातें करें, कुछ समझ में नहीं आता। इस पर मुझे एक बहुत सुन्दर बात याद आती है :-

''एक बार एक पाँच साल का छोटा बच्चा चर्च में पहुंच गया। उसने देखा कि पादरी जी हाथ जोड़कर भगवान को याद कर रहे थे और कुछ मन ही मन बोल रहे थे। अब बच्चे तो नकल करने में होशियार होते हैं। वह भी बाजु में खड़ा हो गया और हाथ जोड़ कर मन ही मन कुछ बोलने लगा। पादरी जी बार-बार उसके तरफ देखकर सोचने लगे, पता नहीं यह बच्चा क्या बोल रहा है ! आखिर, जब पादरी जी की प्रार्थना (prayer) *पूरी हुई, तो बच्चे ने भी पूरा किया। आश्चर्यचकित होकर पादरी ने उस बच्चे से पूछा, 'बेटा, तूने भगवान से क्या कहा ?' तो बच्चे ने पूछा, 'आपने क्या कहा ?' पादरी जी ने कहा कि 'मैं तो अपनी प्रार्थना कर रहा था।' बच्चे ने उत्तर दिया कि 'मैं अपनी प्रार्थना ही कर रहा था।' पादरी जी ने सोचा इतनी लंबी कौनसी प्रार्थना की होगी ? उन्होंने बच्चे से पूछा, 'बेटे तूने कौनसी प्रेयर की ?' तो बच्चे ने पादरी जी से पूछा कि 'आपने कौनसी प्रेयर की ?' पादरी जी ने अपनी प्रेयर सुना दी। बच्चे ने मुस्कुराकर कह दिया कि वह तो ए, बी, सी, डी.....* (A-B-C-D...) *बोल रहा था। पादरी जी ने कहा –'अरे ! भगवान के सामने कोई ए-बी-सी-डी.... थोड़े ही बोलनी होती है ? बच्चा बहुत ही होशियार था, उसने कहा कि यह तो पता नहीं कि मुझे ए-बी-सी-डी.....बोलनी चाहिये कि नहीं बोलनी चाहिये, लेकिन एक बात अवश्य जानता हूं कि आपकी प्रेयर में ए-बी-सी-डी.....वही छब्बीस अक्षर ही हैं और मेरी प्रार्थना में भी वही छब्बीस अक्षर ए-बी-सी-डी..... के ही हैं। आपकी प्रेयर में शब्द और वाक्य के रूप में यह छब्बीस अक्षर ढंग से लगे थे, मैंने सीधा-सीधा बोल दिया और कह दिया कि जैसे आपको अच्छा लगे, वैसे उसे शब्द और वाक्य के रूप में बना लेना और*

समझ लेना।''

अब भगवान को कौन अच्छा और प्यारा लगेगा? बच्चा ही लगेगा क्योंकि वह सच्चे दिल से भगवान से बातें कर रहा था। उसमें कोई दिखावा नहीं था। भावार्थ यह है कि **भगवान से बातें करो तो दिल से करो। कोई रटी-रटाई बात या प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है। सच्चे मन से, भाव से उससे बातें करना आरंभ करो। उसको भी वही बहुत अच्छा लगेगा।** यही ध्यान है, मेडीटेशन है, योग है। मेडीटेशन कोई बड़ी चीज़ है ही नहीं। कई लोग सोचते हैं ध्यान करना बहुत मुश्किल है। कोई मुश्किल नहीं। क्या बातें करना नहीं आता?

(3) प्राणायाम, योगासन और मेडीटेशन में क्या अन्तर?

प्राणायाम,योगासन शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अच्छा है। मेडीटेशन अर्थात् ध्यान,मन के स्वास्थ्य के लिये बहुत अच्छा है। परन्तु हठयोग के जो आसन शारीरिक स्तर पर किये जाते हैं वह राजयोग में मानसिक स्तर पर किये जाते हैं। जैसे योगासन में पद्मासन करते हैं लेकिन राजयोग में पद्मासन माना पदम जैसा जीवन बनाना है, निर्लिप्त अर्थात् अपने कर्तव्य या जिम्मेदारियों से न्यारे नहीं लेकिन बुरी मनोवृत्तियों से या बुराईयों से न्यारा। इसी प्रकार शीर्षासन अर्थात् सारे शरीर को सिर पर सन्तुलित करना परन्तु राजयोग में हम सिर में रह मन का सन्तुलन करते हैं, क्योंकि जीवन में, व्यवहार में सन्तुलन का बहुत महत्व है। इसी प्रकार कोई शवासन करते अर्थात् शव समान शरीर की स्थिति बना देते। शरीर एकदम रीलैक्स हो जाता है। इसी शवासन को राजयोग में मन की स्थिति को शव समान बनाते अर्थात् योग में जब बैठते हैं तो कुछ क्षण मन को देह, देह के पदार्थ और देह की सभी बातों से दूर कर देते तथा मन को अपने साध्य में एकाग्र करते। मन एकदम रीलैक्स हो जाता है। इस प्रकार योगासन या प्राणायाम शरीर के स्वास्थ्य के लिए उत्तम है और राजयोग मेडिटेशन मन के स्वास्थ्य के लिए उत्तम है।

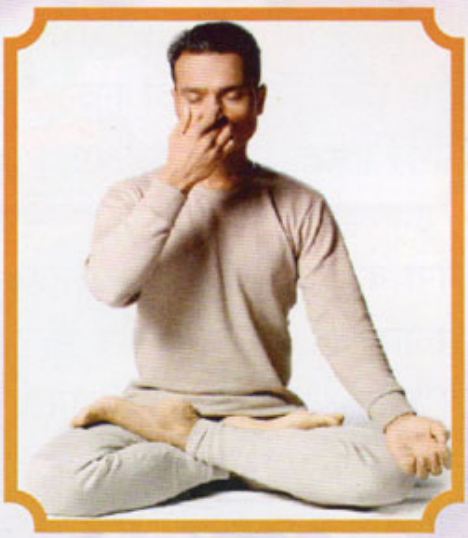

(4) मंत्र जाप और मेडिटेशन में क्या अंतर है?

कई लोग पूछते हैं कि क्या मंत्रजाप करना एक प्रकार का मेडिटेशन नहीं है? मेडीटेशन

कोई मन्त्रजाप नहीं है। मंत्र माना क्या? मंत्र अर्थात् मन को त्राण देने वाला शब्द, त्राण अर्थात् सुरक्षा। भावार्थ मन को सुरक्षित रखना क्योंकि आज के समय में मनुष्य का मन बहुत भटकता है तो भटकने से सुरक्षित रखना। जिससे हमारा मन भटके नहीं और परमात्मा की याद में लगा रहे। जैसे कोई छोटा बच्चा तूफान मचाता हो तो माँ उसे कोई खिलौना देती है जिससे बच्चे की चंचलता भी बंद हो जाती और बच्चा उस खिलौने को खेलने में कुछ सीखता भी जाए और उसके जीवन में आगे बढ़ना भी हो। ऐसे ही मन भी एक छोटे बच्चे के समान है जो शरारत करता है। मंत्र जाप करने से वह मन भी व्यस्त हो जाए और उसमें सही तरह मग्न रहने से वह एकाग्रता को विकसित कर सके। जीवन में सफल होने लिए एकाग्रता ही तो चाहिए।

मन्त्र का दूसरा भाव है सलाह। जैसे मंत्र शब्द से ही मंत्री शब्द निकला है। मन्त्री माना सलाहकार, तो मन्त्र माना सलाह। मन को दी गई सलाह कि तुम इस विधि से परमात्मा में लगो। अब आज की दुनिया में क्या किसी को सलाह अच्छी लगती है? एक छोटे बच्चे को भी रोज सुबह उठते एक सलाह देना शुरु करें कि बेटा, झूठ नहीं बोलना चाहिए, सत्य बोलो, अब यह सलाह रोज़ देने से वह बच्चा भी ऊब जायेगा और चार दिन तो वह सुन लेगा, पाँचवें दिन कहेगा कि मुझे पता है, आप लेक्चर बन्द करो। तभी कहा कि सलाह आजकी दुनिया में किसीको अच्छी नहीं लगती। इसी प्रकार मान लो किसी ने मंत्र दिया हो 'ॐ नमः शिवाय'। अब रोज़ सुबह उठकर हम मन को भी यह सलाह देंगे कि तुम ' ॐ नमः शिवाय' जपो। अब हर रोज़ यह जपने से हमारे मन को कितना अच्छा लगेगा। तभी मन भी कभी-कभी चिड़चिड़ा हो जाता है। मनुष्य का मन बहुत रचनात्मक है, उसे एक ही प्रक्रिया में जोड़ देने से वह ऊब जाता है। उसे हर रोज़ नये विचार देने की आवश्यकता है। "जैसे हमारी जिह्वा है, इस जिह्वा को भी रोज़ स्वादिष्ट खाना चाहिये। एक ही प्रकार की सब्जी रोटी अगर दी जाए तो दो-चार दिन खा लेंगे, या आठ-दस दिन खा लेंगे। फिर पूछेंगे कि और कुछ मिलेगा या यही खाना होगा?

मानो कि बनाने वाले ने कह दिया कि यह आपकी पसंदीदा व्यंजन है, इसलिए हमने यही सीख ली है, अब जिन्दगी भर तीनों वक्त यही मिलेगा। तो क्या करेंगे? यह रोज़ तो खा नहीं सकते। तो दूसरे दिन से बाहर जाना शुरू करेंगे, कभी किसी होटल में जाकर खा के आ जायेंगे तो कभी मित्र-संबंधी के घर खा के आ जायेंगे, कभी कोई शादी-पार्टी में खा के आ जायेंगे। फिर घर में आकर कहेंगे कि हमें भूख नहीं है। अब जो बना रहा है, उसे ही वह खाना पड़ रहा है तो वह कितने दिन खायेगा? आखिर उसका भी तो मन ऊबेगा? फिर बाज़ार में जाकर एक रेसीपी बुक लाकर एक-एक चीज़ देखकर बनाना आरंभ करते हैं और शाम को जब आप घर आते तो आपको परोसा जाता है। खाने के बाद आप क्या कहेंगे?

खाने के बाद आप यही कहेंगे कि इसमें कुछ कम है। बाहर के खाने जैसा स्वाद नहीं है। बनाने वाले व्यक्ति ने कहा कि जैसे किताब में लिखी हुई विधि है, उसी अनुसार सब कुछ नाप-तौल कर डाला है और बनाया है। आप यही कहेंगे कि पता नहीं लेकिन कुछ तो कम है। ठीक इसी प्रकार-मन का भोजन है चिन्तन। उसको भी हर रोज़ अलग-अलग चिन्तन चाहिये। अगर रोज़ उसे भी एक ही प्रकार का चिन्तन दिया जाए, जैसे मान लीजिये किसी ने 'ॐ नमः शिवाय' का मन्त्र दे दिया, तो मनुष्य दो-चार दिन जप लेगा। शायद महीना-दो महीना जप लेगा। उसके बाद मन भी आत्मा से पूछता है कि हे आत्मा, और कोई चिन्तन मिलेगा या यही चिंतन को स्वीकार करना है? आत्मा ने कह दिया यह गुरु मंत्र है, इसलिए जिन्दगी भर जब समय मिले तुमको यही जपना है। अब मन इस चिंतन से ऊब जाता है। तो मन, मुख से कहता है कि हे मुख, तू जपता रह, मैं थोड़ा घूम कर आता हूँ। इसलिये मुख मंत्र का उच्चारण करता जाता है। हाथ में माला भी होगी और मुख 'ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय' बोलता भी जाता है, लेकिन मन देखो तो बाहर चक्कर काट रहा है। कौन आया? कौन गया? क्या बातें हो रहीं हैं? आदि, आदि। अब ऐसा मन्त्रजाप करने से कोई फायदा नहीं क्योंकि उच्चारण करने वाले बन जाते हैं अनुभवी नहीं बनते।" वास्तव में ध्यानाभ्यास या

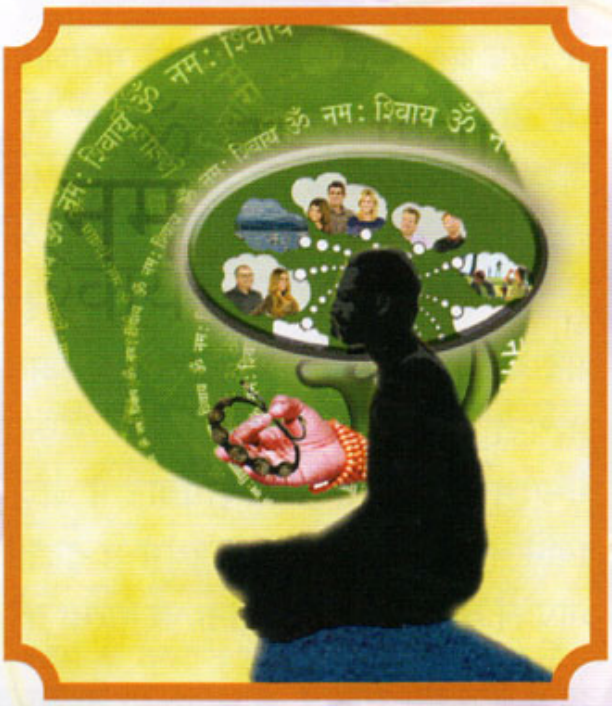

मेडीटेशन में, कोई मन्त्रजाप नहीं किया जाता है। यह आध्यात्मिक ज्ञान ही एक मन्त्र है। हर रोज़ ज्ञान के आधार पर अपने मन को नवीन चिन्तन देना आवश्यक है क्योंकि मानव मन बहुत अधिक रचनात्मक है, उसको हर वक्त सोचने के लिए कुछ नया चिंतन चाहिये, नवीनता चाहिये। जितने नए-नए विचार आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर उसको दे सकेंगे उतनी ही मेडीटेशन की अवस्था श्रेष्ठ होगी।

(5) कल्पना और मेडीटेशन में क्या अंतर है?

कई बार लोग समझते हैं कि क्या मेडीटेशन में हम भगवान की कल्पना करते हैं। नहीं, भगवान की कल्पना नहीं करनी होती। आज अगर आप से यह कहा जाए कि आप अपने शारीरिक माता-पिता को याद करो, तो बिल्कुल सहज है ना? जब आप माता-पिता को याद कर रहे हो और कोई आपसे आकर पूछे कि क्या कर रहे हो?

तो आप यह नहीं कहेंगे मैं अपने माता-पिता की कल्पना कर रहा हूँ। आप यही कहेंगे कि हम अपने माता-पिता को याद कर रहे हैं। कल्पना किसको कहते हैं? कल्पना माने जिसका अस्तित्व है ही नहीं जिसके विषय में सोच-सोच व्यक्ति अपना समय व्यर्थ गंवाता है। लेकिन जिसका अस्तित्व है या था, उसके विषय में सोचना यह कल्पना नहीं है, याद है। परमात्मा का अस्तित्व है, इसलिए मेडीटेशन में जब हम ईश्वर को स्नेह से याद करते हैं तो वह कल्पना नहीं है। अब क्या यह सहज है या मुश्किल है? मेडीटेशन अत्यन्त सहज है, कोई भी कर सकता है और कहीं भी कर सकता है इसलिए श्रीमद्भगवद् गीता में भी भगवान ने अर्जुन को कर्मयोगी बनने की प्रेरणा दी। इसे सहज बनाने के लिये संयम और नियम से दृढ़ता पूर्ण अभ्यास की आवश्यकता है। जितना स्नेह आपका बढ़ता जायेगा उतना परमात्मा की याद में समाना सहज होता जायेगा।

आज तक हम सोचते आए कि परमात्मा की प्राप्ति घरबार छोड़कर, जंगल में जाकर ही हो सकती है। लेकिन राजयोग एक पूर्णतया भिन्न और सम्पूर्ण प्रक्रिया है। इसमें हमें घर-गृहस्थी में रहते ईश्वर पिता में ध्यान लगाना है। राजयोग एक अनूठी विधि है, इससे

हमारा मन शक्तिशाली बन जाता है। हम दुगुने उत्साह से जीवन पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं। हमारे मन पर हमारा सम्पूर्ण अधिकार हो जाता है। राजयोग का सबसे पहले स्वयं को ज्योति बिन्दु चैतन्य आत्मा निश्चय करना है। आत्मा के सातों गुणों की अनुभूति राजयोग द्वारा आसानी से की जा सकती है। फिर दूसरा परमात्मा के सन्निध्य का अनुभव करना। इससे सर्वशक्तिमान् की सर्व शक्तियाँ निरंतर हमारी ओर प्रवाहित होने लगतीं हैं। उसके बाद मन को एकाग्रता करना है और इसके बाद अनुभूति या साधना की अवस्था। राजयोग के अभ्यासी को नकारात्मक और व्यर्थ विचार विघ्न रूप बनते हैं परंतु निरंतर अभ्यास और दृढ़ निश्चय इन विघ्नों को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

थोडी देर के लिए योगाभ्यास करेंगे और पिता परमात्मा को सर्व सम्बन्धों के आधार पर याद करेंगे। स्वस्थ होकर शांत वातावरण में बैठें और अब अपने मन को सुन्दर संकल्प दें और अंतर्चक्षु से उन शब्दों को देखते हुए साथ-साथ उन भावों में अपने मन को ले चलें।

कुछ क्षण के लिए अपने मन को अन्य सभी बातों से समेट लें और स्वयं को आत्म निश्चय करें... मैं अति सूक्ष्म ज्योति बिन्दु आत्मा हूँ... अंतर्चक्षुओं से स्वयं के दिव्य ज्योति पुंज स्वरूप को भृकुटि के मध्य अकाल तख्त पर देख रही हूँ... मैं आत्मा चमकता हुआ दिव्य सितारा हूँ... देह से न्यारी हूँ... धीरे-धीरे अपने मन और बुद्धि बल के द्वारा इस देह से अलग महसूस कर रही हूँ... और चलती हूँ एक रुहानी यात्रा पर... इस साकार देह और देह की दुनिया से दूर... सूर्य चांद तारागण से पार अपने वतन में... जहाँ सर्वत्र शांति है... चारों ओर सुनेहरा लाल प्रकाश फैला हुआ है... इस प्रकाशमय घर में, मैं स्वयं को ज्योति पुंज के रूप में देख रही हूँ... यहां मैं अपने अनादि सतोगुणी सम्पन्न स्वरूप में स्वयं को अनुभव कर रही हूँ... इस परमधाम में स्वयं को अपने पिता परमात्मा के सम्मुख देख रही हूँ... जैसे मैं ज्योति पुंज हूँ वैसे मेरे परमपिता भी प्रकाश पुंज हैं... कितना सुन्दर दिव्य तेजोमय स्वरूप है... मैं स्वयं को शिव पिता के सानिध्य में अनुभव करती हूँ...कितना पारलौकिक सुख का अनुभव है यह... सर्व सम्बन्धों का सुख मेरे प्यारे बाबा से ही मुझे प्राप्त हो रहा है... कितनी अनमोल घड़ी है

यह... सारे कल्प में सिर्फ इस समय परमात्म सुख का अनुभव प्राप्त होता है... मेरे बाबा ही मेरे सच्चे मातपिता है...परमात्मा मातपिता के दुआओं का हाथ मैं अपने ऊपर अनुभव करती हूँ... मैं कितनी भाग्यवान आत्मा हूँ... जो परमात्म वर्से के अधिकारी आत्मा बन गयी... मैं अपने मातपिता के नैनों की नूर हूँ... शिवबाबा ने मुझे नव जीवन दिया है... शिवबाबा ही मेरे परमशिक्षक हैं... ज्ञान के दिव्य चक्षु, दिव्य बुद्धि प्रदान कर मुझे त्रिनेत्री, त्रिकालदर्शी बना दिया है... शिक्षाओं से मेरे जीवन को संवारा है... मुझे सुपात्र और श्रेष्ठ बना दिया... बाबा ही मेरे परमसतगुरु हैं... अपने वरदानी हाथ और साथ से मेरे जीवन को सींचते है... मेरे जीवन को पावन और निर्मल बना दिया... मैं धन्य धन्य अनुभव कर रही हूँ... भगवान ही मेरा सच्चा दोस्त है... मेरे मन का मीत है... मेरा सच्चा साथी भी है... मैं कितनी खुश किस्मत हूँ... जो प्रभु प्यार में पल रही हूँ... धीरे-धीरे अब वापस अपने पाँच तत्त्वों की दुनिया की ओर अपने अकाल तख्त पर विराजमान होती हूँ... ओम् शांति, शांति, शांति।

जैसा समय वैसा अपने को
मोल्ड कर लेना यही है रीयल
गोल्ड बनना।

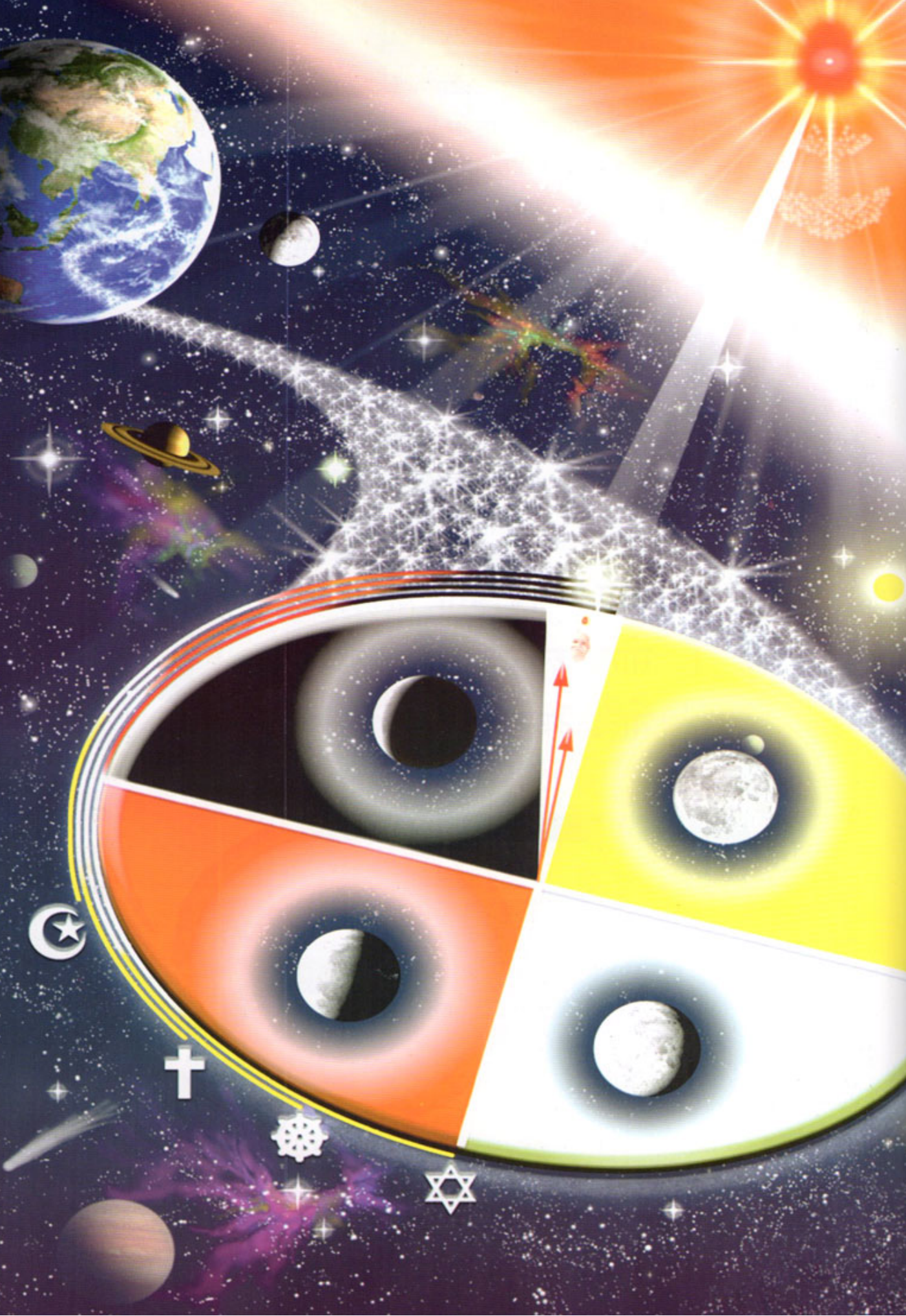

कालचक्र का रहस्य

काल चक्र निरंतर चलता रहता है। समय संसार की सभी घटनाओं के पूर्ण उतार-चढ़ाव का साक्षी है। इस कालचक्र की कहानी में अनेक गुह्य रहस्य समाये हुए हैं, परन्तु आज के मनुष्य के लिए उसे समझना बड़ा कठिन है। इसलिए मनुष्य कई बार वर्तमान के कई दृश्यों को देख कर उलझन में पड़ जाता है और बहुत दुखी होकर सोचता है कि 'मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है?' तीनों कालों के बारे में न जानने के कारण वह भगवान को भी नहीं छोड़ता और कहता है कि भगवान मेरे साथ ही ऐसा क्यों करता है? उसके मन के उलझन भरे सभी प्रश्नों का उत्तर सिर्फ समय के पास है,लेकिन उसके लिए हमें समय की गति को समझना होगा।

समय के विषय में कहा जाता है कि समय बड़ा बलवान है, समय के आगे किसी का जोर नहीं चलता। अगर हमने समय की पुकारको नहीं सुना तो बाद में पश्चात्ताप के अलावा और कुछ भी प्राप्त नहीं होता। मानव जीवन में जब भी कोई परिस्थिति, समस्या या चुनौती आती है, तो वह एक संकेत देकर हम से सकारात्मक या नकारात्मक प्रत्युत्तर की मांग करती है। जब हम समय के इशारे को समझकर सही प्रत्युत्तर देते हैं तो समय हमें जीवन में आगे बढ़ा देता है, परन्तु अगर समय की मांग के विपरीत प्रत्युत्तर देते हैं,तो समय बड़ा कठोर हो जाता है और अच्छों-अच्छों को भी पछाड़ना आरंभ कर देता है। यह अनुभव बहुत दर्दनाक होता है। तभी यह कहा गया है कि **यदि आप समय के अनुकूल परिवर्तन नहीं करते तो समय आपको परिवर्तित होने के लिये मजबूर कर देगा।** व्यक्ति की परिवर्तन की इच्छा नहीं होती, परन्तु उसे समय की मजबूरी से परिवर्तन करना पड़ता है। तभी तो यदि कोई किसी को सुधारने का प्रयत्न करते और वह सुनता नहीं तो यही कहा जाता कि इसे छोड़ दो जब समय के थपेड़े खायेगा तो अपने आप सुधर जायेगा। फिर भी यदि व्यक्ति अपने अहंकार-वश परिवर्तन नहीं करता तो समय महाकाल का स्वरूप भी धारण कर लेता है। तभी तो कहा गया है कि यदि तुम समय को नष्ट करोगे तो समय तुम्हें नष्ट कर देगा। स्पष्ट है कि समय बड़ा बलवान है।

आज की दुनिया में मैनेजमैंट के क्षेत्र में समय प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण विषय बन गया है। लोग अपने समय का सम्पूर्ण सदुपयोग करना चाहते हैं। उसके लिए कई लोग सुझाव देते हैं कि सुबह जल्दी उठ कर के सारे दिन की योजना बनाई जाए, और जो ज़रूरी या आवश्यक कार्य हैं उसे पहले करें और फिर उस योजना के हिसाब से एक के बाद एक

कार्य करते जाएँ तो सारा दिन हम समय का पूर्ण सदुपयोग करके लाभ उठा सकते हैं। लेकिन हरेक का यह अनुभव है कि जिस दिन व्यक्ति अपना समय नियोजन करता है तो एक-दो कार्य तो वह उस अनुसार सम्पन्न कर लेता है परन्तु बाद में कोई ऐसी परिस्थिति या समस्या आ जाती है जिसमें उलझ कर उसका पूरा दिन उसी उधेड़बुन में निकल जाता है। रात्रि को सोने से पहले जब व्यक्ति अपना टाइम-टेबल देखता है तो वह दुःखी होकर सोचता है कि 'आज का दिन भी ऐसे ही चला गया।' इस तरह जीवन में एक-एक दिन ऐसे ही निकलता जाता है। तब कहा जाता है कि **समय का पंछी उड़ता जाए, वो हाथ कभी ना आये**। आज के युग में सभी को समय के विषय में जिज्ञासा रहती है, इसलिए जब भी कोई समय के विषय में भविष्यवाणी करता है तो हमेशा व्यक्ति बड़ी रुचि से सुनता है। खास कर जब नया वर्ष आरम्भ होता है तो समाचार पत्रों में राशियों के हिसाब से वार्षिक, मासिक और साप्ताहिक भविष्य छपता हैं। इसे व्यक्ति जरूर पढ़ता हैं। पढ़ने के बाद भले यह कह देगा मैं इसे नहीं मानता लेकिन फिर भी पढ़ता जरूर है। जहाँ कोई अच्छी या लाभ की बातें लिखी हों तो बड़ा खुश होता है। कहने का भाव यह है कि समय के विषय में हरेक को जानने की जिज्ञासा जरूर रहती है।

हम यह जानते है कि समय के साथ इस संसार में हर चीज़ परिवर्तनशील है तो हमें यह समझना है कि हम जिस कालखंड में जी रहे हैं वह क्या संकेत दे रहा है ?

कालचक्र का सम्बन्ध हमारे जीवनचक्र के साथ है। इसलिए इसे समझना जरूरी है। वर्तमान समय हमसे एक विशेष परिवर्तन की मांग कर रहा है। परन्तु वह कौनसा परिवर्तन है जो हमें अपने जीवन में लाना है? कालचक्र की प्रक्रिया अनन्त है। कालचक्र निरंतर गतिशील है। जैसेः दिन - रात, बदलती ऋतुएँ, जन्म - पुनर्जन्म। जैसे प्रकृति के चक्र को ही देखिए कि समुद्र के पानी से भाप और भाप से बादल बनते हैं। बादल जाकर बरसते हैं और वह पानी नदियों के द्वारा फिर समुन्दर में पहुंच जाता है। यह चक्र भी नित्य चलता रहता है।

मनुष्य ने अपनी व्यवस्था बनाने लिए यह कह दिया कि रात को बारह बजे के बाद दूसरा

दिन आरम्भ हो जाता है लेकिन यह निश्चित नहीं है कि रात को बारह बजे ही यह चक्र शुरु हुआ था। ठीक इसी प्रकार यह कालचक्र भी नित्य चलता रहता है और उसका भी आदि-अन्त नहीं है।

दूसरीबात यह है कि प्रत्येक चक्र को निम्नलिखित चार अवस्थाओं से गुज़रना पड़ता है। जैसे:

- दिन और रात के चक्र की चार अवस्थाएँ हैं - सुबह, दोपहर, शाम और रात्रि। रात्रि के बाद पुन: सुबह होती है।
- ऋतुओं के चक्र में भी चार अवस्थाएँ हैं - ग्रीष्म, बरसात, शीतकाल और बसंत। बाद में फिर ग्रीष्म आ जाता है।
- मानव जीवनचक्र में भी चार अवस्थाएँ होती हैं - बाल्यकाल, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था।

कालचक्र की भी चार अवस्थाएँ हैं –सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। कलियुग के बाद फिर सतयुग आना ही है, क्योंकि यह एक चक्र है। कई लोग सोचते है कि घोर पापाचार वाला युग कलियुग सतयुग में कैसे बदल जायेगा? जिस प्रकार घोर अंधेरी अमावस्या की रात सुनहरी सुबह में बदल जाती है, उसी प्रकार कुदरत की रचना में परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे-धीरे चलती रहती है और रात के बाद सुबह हो जाती है। कोई सारी रात भी यह देखने के लिए बैठ जाए कि सुबह कैसे होती है तो उसे पता भी नहीं चलता और सुबह हो जाती है। इसी प्रकार यह घोर पापाचार वाली कलियुगी दुनिया भी सतयुगी श्रेष्ठाचार वाली दुनिया में परिवर्तित हो जाती है। इसको बदलना किसी मनुष्य का काम नहीं है, कुदरत की रचना में ही ऐसी विधि है जो इस समय के चक्र में भी

परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे-धीरे चलती रहती है और यह काल भी परिवर्तन हो जाता है। ऐसा नहीं है कि एकदम प्रलय होकर फिर नये सिरे से सतयुग शुरु होगा। अगर एकदम प्रलय हो जाए तो फिर नई सृष्टि शुरु कैसे होगी? वर्तमान समय में हम एक महान परिवर्तन के समय से गुज़र रहे हैं। परिवर्तन कुदरत का नियम है। हरेक चक्र एक क्रम में चलता है। यदि उसे नित्य परिवर्तित होते ही रहना है तो उसका पुनरावर्तन भी अवश्य होना है। तीसरा सभी चक्र अपनी-अपनी निश्चित अवधि अनुसार चलते हैं,और उसी अवधि में वह चक्र पूरा होने के पश्चात् उसकी पुनरावृत्ति होती है। जैसेः

1. दिन और रात के चक्र की अवधि चौबीस घंटे की होती है। इसी समय सीमा में उसे यह चक्र पूरा करना होता है।
2. ऋतुओं के चक्र की अवधि एक साल है। एक वर्ष के अन्दर ही उसे एक चक्र पूरा कर लेना होता है।
3. ठीक इसी प्रकार समूचे कालचक्र की भी एक निश्चित अवधि है और इसका समय पाँच हज़ार साल का है परन्तु पाँच हज़ार साल की बात पर कई मनुष्यों के मन में अनेक प्रश्न उभर आते हैं। जैसे पाँच हजार वर्ष की संख्या कहाँ से आई? शास्त्रों में तो लिखा है, लाखों साल का एक युग है। फिर यह पाँच हजार साल का पूरा चक्र - सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग कैसे होगा? क्या सबूत है? किसने कहा? कहाँ लिखा हुआ है? ऐसे अनेक प्रश्न मन में उत्पन्न होने लगते हैं। परन्तु अगर पूछा जाए कि शास्त्रों में जो लिखा है कि लाखों साल का एक-एक युग है क्या उसका कोई सबूत है? फिर बिना सबूत के लाखों वर्षों की बात कैसे मानी जा सकती है। वैसे देखा जाए तो कई बातों का सबूत नहीं है फिर

भी उन्हें मानते हैं, जैसे एक दिन में चौबीस घण्टे होते हैं यह गणना किस आधार पर की गई है? यही कहेंगे कि साठ सेकण्ड का एक मिनिट बनाया, और साठ मिनिट का एक घण्टा बना और इस तरह चौबीस घण्टे में दिन और रात के चक्र को बाँट दिया गया। परन्तु अगर पचास सेकण्ड का एक मिनिट बनाते और पचास मिनिट का एक घण्टा या सौ सेकण्ड का एक मिनिट और सौ मिनिट का एक घण्टा भी बनाया जा सकता था। इससे शायद घण्टे बढ़ जाते या कम हो जाते, लेकिन दिन और रात के चक्र की अवधि तो वही रहती। चाहे उसको 24 घण्टे में बाँटो, 25 घण्टे में बाँटो या 20 घण्टे में बाँटो। दिन और रात का चक्र तो कम-ज्यादा नहीं होने वाला था, वह तो उतना ही रहना था। परन्तु यह प्रश्न कोई नहीं पूछता। बिना कोई सबूत माँगे हमने चौबीस घण्टे को एक दिन की अवधि के रूप में स्वीकार कर लिया और अपने जीवन को उसमें ढाल लिया।

इसी तरह आधुनिक विज्ञान ने कहा कि पृथ्वी को सूर्य का एक चक्कर लगाने में 365 दिन लगते हैं,और सारे संसार ने उसे स्वीकार कर लिया। वह 365 दिन को अंग्रेज़ी कैलेण्डर के रूप में सेट कर साल का चक्र बना दिया गया। परन्तु यदि आप प्राचीन भारतीय विज्ञान के आधार पर बने हिन्दू कैलेण्डर को देखें तो साल में तीन सौ चौवन (354) दिन होते हैं और प्राचीन भारत का विज्ञान भी परिपूर्णथा क्योंकि भारत ने ही सारे विश्व को शून्य दिया था,उसी से आधुनिक विज्ञान भी विकसित हुआ। आज भी हिन्दू कैलेण्डर के हिसाब से पूर्णमासी या अमावस्या पर पूरा समुद्र का पानी ज्वार-भाटे के रूप में उछलता है। सूर्य ग्रहण या चँद्र ग्रहण कब है यह हिन्दू कैलेण्डर के आधार पर ही अच्छी तरह से जान सकते हैं, इंग्लिश कैलेण्डर के आधार पर नहीं।अब प्रश्न यह उठता है कि 365 दिन सही हैं या 354 दिन? भारतवासी दोनों कैलेण्डर लेकर चल रहे हैं। दुनिया का कारोबार अग्रेज़ी कैलेण्डर पर चला रहे हैं और तीज-त्यौहार, मुहूर्त आदि जो कुछ निकालना है वह हिन्दू कैलेण्डर के अनुसार चलते हैं। यह कभी नहीं कहते कि इंग्लिश कैलेण्डर आधुनिक विज्ञान के आधार पर बना है इसलिये हिन्दू कैलेण्डर को फाड़ कर फैंक दो और न कभी कोई सबूत भी माँगा, परन्तु स्वीकार कर लिया।कहने का भाव यह है कि **सारी दुनिया में इस बात का कोई सबूत नहीं है कि दिन और रात की अवधि को चौबीस घंटों में क्यों बांटा गया और चौबीस घंटे की गणना किस आधार पर की गई है? साल के चक्र का कोई सबूत नहीं है कि 365 सही या 354 सही** और 5000 वर्ष का सबूत चाहिये!! और पूछते रहते हैं कि ये 5000 कहाँ से आए? कमाल की बात तो यह है कि छोटी सी गिनती का हमारे पास सबूत ही न हो और 5000 का सबूत माँगें? कई लोग सोचते कैसे मान लें। सोचने की बात है अगर कोई कहे कि मैं 24 घण्टे को कैसे

मान लूं और दुविधा में रहे तो कौन परेशान होगा? वह व्यक्ति जो दुविधा में है, वह खुद परेशान होगा और अपने जीवन को 24 घण्टे के हिसाब से सेट नहीं कर पायेगा। इसलिए वह स्वीकार करके चलता है और सेट कर लेता तो उलझेगा नहीं। ऐसे ही अगर 5000 साल के काल चक्र को जो व्यक्ति स्वीकार नहीं करता तो वह भी अपने जीवन को समझ नहीं पायेगा और जो घटनाएँ जीवन में घटती हैं उसके लिए दूसरों को दोषी समझकर अपने जीवन में परेशान ही रहेगा।

जिस तरह बीज गणित के थियोरम को हल करने लिए (suppose X) 'एक्स' मान लिया जाता है तब उसकोसुलझा कर सही उत्तर मिलता है, वैसे ही जीवन की गुथ्थियों को सुलझाने लिए कालचक्र या सृष्टिचक्र की अवधि को suppose 5000 वर्ष मानकर चले तो जीवन सरल हो जाएगा। और यह जो सवाल बीच-बीच में उत्पन्न होता रहता है कि मेरे साथ ही ऐसे क्यों होता है? उसका उत्तर भी सहज प्राप्त हो जाएगा और हम जीवन की जिन घटनाओं को स्वीकार नहीं कर पाते उन्हें भी सहर्ष स्वीकार कर सकेंगे। इस तरह जीवन को जीने की कला आ जाएगी।

वास्तव में यह 5000 साल का काल चक्र ईश्वर द्वारा बताया गया एक दिव्य रहस्य है और रहस्य के लिए कोई सबूत नहीं होता। उसे स्वीकार ही करना होता है। इस पाँच हजार साल के काल चक्र का वर्णन हर धर्म में किसी न किसी रूप में हुआ है। जिसका विवेचन इस प्रकार है :-

हिन्दू धर्म में काल चक्र:

हिन्दू धर्मकी दृष्टि से शास्त्रों के अनुसार महाभारत युद्ध को पाँच हज़ार साल हुए हैं। महाभारत के अन्तिम पर्व में यह बात लिखी गई है कि जब हर घर के अन्दर महाभारत होने लगे तब समझना कि महाभारत काल पुन: आ गया। आज घर-घर के अन्दर महाभारत ही तो चल रहा है। आज समाज में हर मोड़ पर महाभारत के पात्र दिखाई देते हैं,शकुनि जैसे पात्र घर-घर में रिश्तों में आग लगा रहे हैं। दुर्योधन अर्थात् धन का दुरुपयोग करने वाले पात्रों से दुनिया भरी पड़ी है, और दु:शासन जैसे पात्र शासन का दुरुपयोग करते दिखाई पड़ते हैं। पुत्र मोह में अंधे माता-पिता भी समाज में देखने को मिलते हैं। अब जबकि समाज में महाभारत के पात्र विद्यमान है, इससे समझ लेना चाहिए कि महाभारत काल पुनः आ गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भगवान् ने अर्जुन के साथ वायदा किया कि 'यदा-यदा हिधर्मस्य.....' धर्मग्लानि के चिन्ह भी अभी दिखाई देते है। स्पष्ट है कि यह वही महाभारत का समय है, इससे पाँच हज़ार वर्ष का

कालचक्र सिद्ध होता हैं।

ईस्लाम धर्म में काल चक्र:

ईस्लाम धर्मकी पवित्र धर्म पुस्तक में यह लिखा है कि कयामत का समय हर पाँच हज़ार साल के बाद एक बार आता है। उनकी इस पवित्र धर्मपुस्तक के हिसाब से कयामत का समय आ रहा है। अतः पाँच हज़ार साल का यह चक्र सिद्ध हो जाता है।

ईसाई धर्म में काल चक्र:

क्रिश्चियन धर्मशास्त्र के हिसाब से भी यह स्पष्ट है कि क्राइस्ट के तीन हजार साल पूर्व पृथ्वी पर स्वर्ग था। अर्थात् तीन हजार साल पूर्व और दो हज़ार साल बाद- नोस्त्रादेमोस की भविष्यवाणी के हिसाब से अब वह सुनहरा युग आया कि आया।

मायन संस्कृति में काल चक्र:

मायन संस्कृति में कैलेण्डर 5000 साल का दर्शाया गया है और जिसके लिए उन्होंने बताया था कि 21.12.2012 को उनका कैलेण्डर पूरा होकर 22.12.2012 को उनका नया कैलेण्डर शुरु हो गया है और उसके पहले संसार में परिवर्तन की प्रक्रिया शुरु हो जायेगी, जिसको हम साक्षी होकर देख रहे हैं।

इस तरह हम देख सकते हैं कि हर धर्म में कालचक्र का समय 5000 साल किसी न किसी तरीके से स्वीकार किया गया है। हम इसे समझ नहीं पाए और वर्तमान समय के साथ उसको जोड़ नहीं पाए। अज्ञानता के कारण फिर जिसने जो कहा उसे स्वीकार कर लिया और सोचने लगे कि हाँ लाखों साल का एक-एक युग है। लेकिन किसी भी धर्म में यह वर्णन नहीं है। यहाँ यह सवाल उठता है कि पुरातत्त्व सर्वे में किसी पत्थर को लाखों या करोड़ों वर्ष पुराना बताया जाता है वह सही है या गलत है? वह भी सही है। जैसे एक दिन और रात का चक्र चौबीस घण्टे का होता है लेकिन ऐसे दिन और रात के चक्र कितनी बार घूम चुके हैं? अंग्रेज़ी कैलेण्डर में जीसस क्राईस्ट के जाने के बाद वर्ष की गिनती के साथ ईस्वी लिखा जाता है परन्तु उसके पहले भी दिन और रात का चक्र तो चलता ही था। एक काल चक्र पाँच हज़ार साल का है परन्तु ऐसे पाँच हजार साल का काल चक्र कितनी बार इस पृथ्वी पर घूम चुके हैं। पृथ्वी तो करोड़ों साल पुरानी है ही, बल्कि इसे अविनाशी कहना उपयुक्त होगा इसलिए पत्थर तो अवश्य मिलेंगे।

सृष्टि चक्र - स्वास्तिका के रूप में इस काल चक्र को भारतीय संस्कृति में स्वास्तिका-

चिन्ह के रूप में दिखाया गया है। हम इस स्वास्तिका चिन्ह को हर शुभ कार्य के आरंभ में उपयोग करते हैं। परन्तु अगर किसी से भी पूछा जाए कि स्वास्तिका का अर्थ क्या है या क्यों इसे ही शुभ की निशानी माना गया है तो यही उत्तर मिलता है कि इसे परम्परा से ही एक शुभ-प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है। किसी के पास उसका कोई अर्थ सहित उत्तर नहीं हैं।

स्वास्तिका शब्द का अर्थ -'स्वास्तिक' शब्द संस्कृत के 'सु' + 'अस्ति' के संयोग से बना है। 'सु' अर्थात् 'शुभ', 'अस्ति' यानी 'जो है'। इसका भाव यह है कि - इस काल चक्र की हर घडी सदैव शुभ है। इसकी कोई घड़ी बुरी है ही नहीं इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता के सार में यह कहा गया है कि 'हे, अर्जुन, जो हुआ वो अच्छा, जो हो रहा है वो बहुत अच्छा, और जो होने वाला है वह भी बहुत ही अच्छा। तुम व्यर्थ चिंता कर रहे हो'। दूसरे शब्दों में काल चक्र का भूत, वर्तमान और भविष्य शुभ है। किसी भी घड़ी को अशुभ मानना अज्ञानता है। स्वास्तिका के चिन्ह को हर शुभ कार्य के आरंम्भ में लगाते है ताकि यह संशय न रहे कि पता नहीं यह घड़ी शुभ है या नहीं, लेकिन जिस घड़ी में वह शुभ कार्य आरम्भ हो रहा है वह घड़ी भी शुभ है। ब्राह्मण लोग कोई भी शुभ कार्यकरने के समय स्वास्तिका पर कलश में नारियल रख कर मंत्रोच्चारण करते हुए कार्य आरम्भ करते हैं। भावार्थ यह है कि शुभ कार्य करते समय एक सकारात्मक मनःस्थिति रखते हुए, कलश रखने का अर्थ है ज्ञान युक्त बुद्धि से जब कार्य आरम्भ करते हैं तो वह कार्य सदा शुभ फल ही प्रदान करता है। नारियल को श्रीफल भी कहते हैं। श्रीफल माना इससे श्रेष्ठ फल ही प्राप्त होता है। कितना ऊँचा भाव है भारतीय संस्कृति में लेकिन साधारण लोग इस बात को समझ नहीं पाते।

जब यह कहते हैं कि इस काल चक्र की हर घडी सदा ही शुभ है तो कई बार कई लोग इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते और कहते हैं कि जीवन में या संसार में कई घटनाओं को देख करके लगता है कि ऐसे तो कभी किसी के साथ भी न हो, या भयानक कष्ट वाली घटनाओं को शुभ कैसे समझा जाए? लेकिन यह प्रश्न तब पैदा होता है जब हम सिर्फ वर्तमान काल को देखते हैं, इसे स्वीकार करने के लिए तीनों कालों को देखने की

आवश्यकता है। इस पर राजा अकबर और बीरबल की कहानी प्रस्तुत है:

''एक बार राजा अकबर और उनका मंत्री बीरबल जंगल में शिकार के लिए गये और राजा की अंगुली कट गई और खून बहने लगा। मंत्री बीरबल महा ज्ञानी था उनके मुख से निकल गया कि 'चलो जो हुआ अच्छा हुआ।' यह सुनकर राजा को बहुत गुस्सा आया कि 'मेरी अंगुली कट गई और सहानुभूति दर्शाने के बदले में तुम कहते हो कि अच्छा हुआ, इसमें अच्छा क्या है ?' राजा का गुस्सा सातवें आसमान पर था उसने सैनिकों को आदेश लिया कि बीरबल को कारागृह में बंद कर दो। जाते-जाते भी बीरबल ने कहा कि इसमें भी कोई कल्याण होगा। शिकार करते हुए राजा अकेला आगे

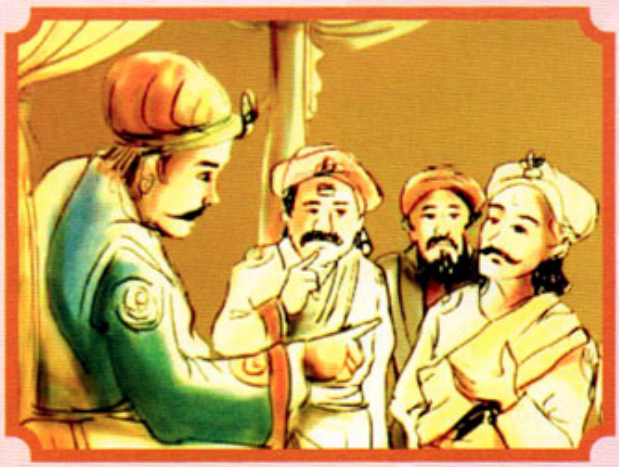

बढ़ता गया। जैसे- जैसे जंगल में चलता गया वहां कुछ जंगली लोग अपने त्यौहार मनाने लिए देवी को नर बलि चढ़ाने लिए किसी मनुष्य को ढूंढ़ रहे थे और राजा को देखते ही उन्हें घेर कर बंदी बना दिया और अपने कबीले के मुखिया के पास ले गये। राजा अकबर उन्हें समझाने का प्रयत्न कर रहा था परन्तु वह उनकी कोई बात सुनने लिए तैयार ही नहीं थे। राजा को बड़ा अफसोस हो रहा था कि बीरबल को उन्होंने भेज कर ग़लती की क्योंकि उन्हें पता था कि वही कोई उपाय सोच सकता था। लेकिन अब कोई फायदा नहीं था और वह शांत होकर अपने भाग्य को कोस रहा था। देवी को बलि चढ़ाने लिए सारी तैयारी हो गई तो उनके पंडित ने राजा की कटी हुई अँगुली देखकर कहा कि हम यह खंडित बलि नहीं चढ़ा सकते,इससे देवी नाराज़ हो जायेगी।जंगली लोगों ने राजा को छोड़ दिया। तब राजा को एहसास हुआ कि बीरबल ने जो कहा था कि अंगुली कटी अच्छा हुआ, आज यही कटी अंगुली के कारण मेरी जान बच गई। वह तुरन्त राज महल पहुंचा और बीरबल को रिहा करने का आदेश दिया और बीरबल को बुलाया और सारी बात सुनायी और उनसे पूछा कि 'चलो मेरी अंगुली कटी यह अच्छा हुआ, यह बात तो मैं समझा परन्तु जब तुम्हें हमने कारागृह की सजा सुनाई और उस वक्त तुमने कहा कि अच्छा हुआ तो उसमें क्या अच्छा था ? कारागृह में तो तुम्हें कष्ट हुआ।' बीरबल ने कहा कि 'यह भी तो अच्छा था क्योंकि अगर आप मुझे सज़ा नहीं देते तो मैं आपके साथ होता और आप तो खंडित बलि

होने कारण बच जाते परन्तु मैं तो सम्पूर्ण था तो मेरी बलि चढ़ जाती तो आपको गुस्सा आया वह भी अच्छा था और सज़ा दी वह भी अच्छा था तो दोनों की जान तो बच गई।"

एक और सत्य घटना भी हमें याद आती है:-

"एक बार एक भाई की कार का एक्सीडैंट हो गया और उसमें उसके दोनों पैरों में फ्रैक्चर हो गए और वह हॉस्पीटल में था। जैसे ही हमें पता चला तो हम उनको मिलने लिए हॉस्पीटल गये। हमने उस भाई से कहा 'भगवान को याद करो सब ठीक हो जायेगा।' यह सुनते ही उस भाई को बहुत गुस्सा आया और कहने लगा 'भगवान का नाम मत लो, भगवान बहुत बुरा है, मेरे साथ भगवान ने ऐसा क्यों किया ?' वह कहने लगा, 'बहनजी, मैंने कभी किसी का बुरा नहीं किया फिर भगवान ने मेरे साथ ऐसा क्यों किया ?' हमें बड़ा आश्चर्य लग रहा था क्योंकि यह शब्द किसी नास्तिक के नहीं थे। भगवान में आस्था रखने वाले मुख से ऐसे शब्द निकल रहे थे। इस घटना से उसकी भगवान में आस्था हिल गई थी और वह बड़ा दु:खी हो रहा था। आखिर हमें महसूस होने लगा कि जितना ज्यादा देर यहां खड़े रहेंगे उतना इस भाई का गुस्सा बढ़ता जायेगा तो बेहतर है कि हम बाहर चले जाएँ। धीरे-धीरे करके हम बाहर जाने लगे तो उस भाई की पत्नी ने हमें देखा और वह तुरन्त बाहर आकर हमसे माफी मांगने लगी और कहने लगी कि 'हम उनके पति की बातों का बुरा न मानें और इस समय उनकी मानसिक स्थिति को समझने का प्रयत्न करें।' हमने उनको पूछा कि 'ऐसी क्या बात है जो एक एक्सीडेंट से इतना मानसिक संतुलन खोकर बार-बार भगवान को दोष दे रहे है, एक्सीडेंट में सिर्फ फ्रैक्चर ही तो हुआ है लेकिन जान तो बच गई।' तब उसकी पत्नी ने बताया कि उसके पति लाईन्स या रोटरी कलब के गवर्नर थे और हमेशा समाज में बहुत अच्छे-अच्छे कार्य करते थे। हर जरुरतमंद की मदद करते थे लेकिन अब उनका कार्य-काल समाप्त हो रहा था और उन्हें विदेश में किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में जाना था और जहाँ उन्हें एवार्ड देकर सम्मानित किया जाना था, लेकिन दस दिन पहले उनका एक्सीडेंट हो गया और ज़ाहिर है कि दस दिन के अंदर तो वह ठीक होकर जा नहीं सकते। वह सोचते थे कि उस सम्मेलन में दुनिया भर के बड़े-बड़े लोगों के बीच इतना बड़ा सम्मान मिलना था, लेकिन अब कुछ भी नहीं मिलेगा इसलिए उनको बहुत दु:ख हो रहा था और बार-बार यही कह रहे थे कि भगवान ने मेरे साथ ही ऐसा क्यों किया ? उसके मन में यह बात थी कि मैंने जो कर्म किया उसका फल लेने का समय आया तो भगवान ने मेरे हाथ से फल क्यों छीन

लिया। हमारे सामने किसी ने उसे कहा कि देखो भाई कोई पूर्व कर्म का फल भी तो भोगना पड़ता है तब उसने कहा कि पूर्व कर्म के फल की कहां मना है परन्तु वहां से वापस आने के बाद भगवान फल दे देता। हम तो वहां से चले गये परन्तु आठ-दस दिन के बाद सतगुरुवार का दिन था तो पुन: हमें उस भाई की याद आई और सोचा कि आज बाबा के घर से सतगुरुवार का भोग (प्रसाद) लेकर जाते हैं, हो सकता है कि भाई की मानसिक स्थिति ठीक हो। हम परमात्म प्रसाद लेकर अस्पताल पहुंचे तो वह भाई और उसकी पत्नी दोनों बहुत खुश नज़र आ रहे थे। हमें देखकर उस भाई ने कहा 'आओ बहनजी आओ, देखो भगवान जो करता है वह अच्छा ही होता है।' मुझे फिर आश्चर्य हुआ तब उन्होंने मुझे अखबार उठाकर दिखाया कि 'जिस हवाई जहाज में वह जाने वाला था वह बीच में ही किसी तकनीकी खराबी की वजह से दुर्घटना ग्रस्त हो गया है। उसमें सवार सारे यात्री मारे गये।' वह भाई कहने लगा कि 'आज अगर मैं जिन्दा हूँ तो इस छोटे से एक्सीडेंट की वजह से, नहीं तो उसी जहाज में होता तो मेरी भी जान जाती।' उस भाई की सारी मानसिकता ही बदल गई थी और वह अच्छी-अच्छी बातें करने लगे कि बहनजी मैंने कभी किसी का बुरा नही किया था न! इसीलिए मेरे साथ ऐसा हुआ। अब वह अच्छी-अच्छी बातें करने लगे कि 'होनी तो मेरे सामने आनी ही थी लेकिन भगवान ने उसे सूली से कांटा कर दिया। सिर्फ दो पैर ही फ्रैक्चर हुए और वह भी थोड़े दिनों में ठीक हो जायेंगे।' उसके बाद कहने लगे कि 'सचमुच आज मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि जैसे भगवान ने मुझे सबसे बड़ा एवार्ड दिया है, जो एक नया जीवनदान दिया है...' जब वह भाई इतनी अच्छी बातें कर रहा था तो उसकी पत्नी ने कहा अगर यही ज्ञान दस दिन पहले आ गया होता था तो कितना अच्छा होता, मेरे जीवन के सबसे खराब दिन गये तो यह दस दिन गये। न जाने भगवान को कितनी गाली दी होगी और जो भी आता था और उसने भी अगर भगवान का नाम लिया तो उनके साथ भी सम्बन्ध खराब होने जैसा व्यवहार करता था, फिर मुझे एक-एक को बाहर ले जाकर हाथ जोड़कर माफी मांगनी पड़ती थी। उस बहन ने कहा, 'बहनजी, मैंने अपने कर्मों के लिए इतनी माफी किसी से नहीं मांगी जितना इसके कर्म के लिए मांगनी पड़ी, तो यह ज्ञान पहले क्यों नहीं आता?' मैंने उस बहन से कहा 'बहनजी, समय का शुक्र मानो कि समय ने दस दिन में परदा खोल दिया कि इस घटना में क्या अच्छा समाया हुआ था, कभी-कभी जीवन की किसी घटना का परदा समय एक साल के बाद खोलता कि उसमें क्या अच्छा समाया हुआ होता है, तब वह साल कैसा जाता, और एक साल बाद जब सच्चाई सामने आती है तब हम यही कहते हैं कि अच्छा हुआ था, ऐसा नहीं होता तो पता नहीं आज क्या हो जाना था।' इसलिए कम से कम जब कोई घटना

आती है तो पहले ही यह सकारात्मक दृष्टिकोण जीवन में अपनायें कि 'जो हुआ वह अच्छा, फिर कोईभी घटना हमें दुःखी, परेशान या अशांत नहीं कर सकेगी। यह सकारात्मक दृष्टिकोण ही जीवन में आध्यात्मिकता का व्यावहारिक स्वरूप है (applied spirituality in life)।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'स्वास्तिका' का ज्ञान व्यक्ति को सकारात्मक और निर्भय बना कर जीवन की हर चुनौती को पार करने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए इस काल चक्र का सम्बन्ध हमारे जीवन चक्र के साथ भी है। जब व्यक्ति यह स्वीकार करना सीख लेता है कि 'जो हुआ वह अच्छा, जो हो रहा है वह अच्छा और जो होने वाला है वह भी अच्छा' तो जीवन में कभी दुःख की लहर आ नहीं सकती। तभी तो कहा जाता है कि सुख और दुःख यह तो मन की स्थिति पर आधारित है। जब मन इस रहस्य को समझ लेता तो कभी दुःख, तनाव और गुस्सा आ नहीं सकता। यह समय का चक्र परमात्मा की सर्वोत्तम रचना है जो एकदम परफेक्ट है, शुभ है और श्रेष्ठ है। इसमें कभी कोई कमी हो ही नहीं सकती। इसमें कमी निकालने का अर्थ है कि अभी हमारी बुद्धि में ज्ञान की पराकाष्ठा की कमी है।

कालचक्र की कहानी

इस काल चक्र को स्वास्तिका के चिन्ह के रूप में दिखाया गया है, जिसके चारों भाग बराबर होते हैं पाँच हज़ार वर्ष के कालचक्र का हर युग 1250 साल का होता है। यह कालचक्र एक घड़ी की तरह (clockwise) घूमता है। इसकी शुरुआत कब हुई यह तो पता नहीं लेकिन जैसे दिन और रात की शुरुआत का पता नहीं होते हुए भी उसका पहला पहर सुबह को माना जाता है, वैसे ही इस काल चक्र का पहला पहर सतयुग को माना जाता है। अब समय की कहानी यह है कि, जैसे बच्चों को कहानी सुनाते है कि बहुत पहले की बात है... (Long long ago...) समय के पहले पहर को सतयुग कहा जाता था।

सतयुग

काल चक्र के पहले पहर की शुरुआत स्वास्तिका के राईट हैंड से होती है और राईट माना रायटियस(पवित्र, सच्चा)। इसलिए कोई भी शुभ कार्य दाहिने हाथ से किया जाता

है। स्वास्तिका का हाथ दाहिनी ओर से आशीर्वाद की तरह है जो इस बात का सूचक है कि सतयुग में सभी आत्मायें परमात्मा से आशीर्वाद की प्राप्ति से सम्पन्न थ। इसीलिए उन्हें भगवान-भगवती के रूप में जाना जाता है। धर्मग्रंथों में इस बात के संकेत मिलते हैं। बाईबल में जेनिसिस चैपटर वन में कहा है कि परमात्मा ने मनुष्यों को अपने जैसा बनाया था (God made man in his own image)। सतयुग से पहले कलियुग था और कलियुगी पतित मनुष्यों को अपने समान पूजनीय बनाया था। गुरु नानक देव जी ने भी कहा कि 'मानस ते देवता किये करत न लागी वार', और हिन्दू धर्म में भी कहा गया है कि 'नर ऐसी करनी करे जो नर नारायण बने और नारी ऐसी करनी करे जो श्री लक्ष्मी बने' अर्थात् कलियुगी नर-नारी ही अपनी करनी द्वारा श्रेष्ठ बन सकते हैं। श्रेष्ठ कर्म का ज्ञान परमात्मा ही आकर देते हैं। उनको भगवान-भगवती इसलिए कहा जाता है क्योंकि 'भगवान' दो शब्दों से मिलकर बना है भाग+वान अर्थात् जिन्होंने परमात्मा से आशीर्वाद में सर्वश्रेष्ठ भाग्य प्राप्त किया। कालचक्र के आदि सतयुग में सम्पूर्ण सत्यता व्याप्त थी, असत्यता का नामो-निशान नहीं था। वहाँ एक मत, एक भाषा, एक धर्म और एक दैवी राज्य था। देवताओं को सूर्यवंशी भी कहा जाता है, भावार्थ जैसे सूर्य सम्पन्न है, उसकी कला कभी घटती-बढ़ती नहीं, वैसे ही इस युग में देवी-देवता, पशु-पक्षी और प्रकृति अपने सम्पूर्णपवित्र सतोप्रधानस्वरुप में स्थित थे। जिनकी महिमा में गायन है सर्वगुण सम्पन्न, 16 कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, मर्यादा पुरुषोत्तम, अहिंसा परमोधर्म..... इस दुनिया के लिए कहा जाता कि वहाँ शेर और गाय भी एक साथ एक घाट पर पानी पीते थे। 'जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती थी बसेरा' अर्थात् जहाँ पवित्रता, सुख-शांति और समृद्धि सम्पूर्ण रूप में विद्यमान थी। तब यह धरती भी अपने धन-धान्य की सम्पन्नता पर गर्वकरती थी। सोलह कला सम्पूर्ण का भाव कोई गिनती वाली बात नहीं लेकिन 16 अंक यह सम्पूर्णता का अंक है। कोई बात 100 प्रतिशत सत्य हो तो उसे सोलह आने सत्य कहते हैं। पूर्णमासी का चन्द्रमाँ भी सोलह कला सम्पन्न होता है। इसी

प्रकार देवी-देवता सोलह कला सम्पन्न थे अर्थात् सम्पूर्ण सम्पन्न थे। उस दुनिया में श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का राज्य था इसलिए श्री नारायण के साथ एक शब्द जुड़ता है -'सत्य नारायण' या 'सूर्य नारायण' जिसका तात्पर्य है कि श्री नारायण सतयुग के महाराजा थे और सूर्यवंशी थे। श्री लक्ष्मी-श्री नारायण ही आदि सनातन देवी-देवता धर्म के महाराजा-महारानी थे। काल चक्र का यह समय वही स्वर्णकाल था, जिसको आज तक सभी धर्म वाले अलग-अलग नामों से याद कर रहे है। किसी ने स्वर्ग या वैकुण्ठ कहा, किसी ने जन्नत या बहिश्त कहा, किसी ने हैविन या पैराडाइज़ कहा, किसी ने एटलांटिस कहा ऐसे अनेक नामों से यह युग जाना गया है।

त्रेतायुग

धीरे-धीरे समय का पहिया घूमता है और सतयुग बीत जाता है। काल चक्र का दूसरा प्रहर शुरु होता है, जिसे त्रेतायुग कहा जाता है जहाँ स्वास्तिका की दाहिनी भुजा (right side) नीचे की ओर झुक जाती है। त्रेता का अर्थ है जहाँ थोड़ी त्रुटि (कमी) आ जाती है। इसलिए त्रेतायुग को चंद्रवंश भी कहा जाता है। चंद्रवशी, सतयुग की सोलह कला सम्पूर्णता की स्थिति से दो कला नीचे उतर आते हैं। हालांकि उनकी पवित्रता की आभा में कोई ज्यादा अंतर नहीं आता परन्तु जैसे सम्पूर्ण चंद्रमाँ को दो दिन बाद

देखो तो उसकी रोशनी में कोई अधिक अंतर नहीं आता फिर भी उसे थोड़ा खंडित माना जाता है। इसी प्रकार देवताओं की सतोप्रधानता के तेज में थोड़ा अंतर आ जाता है। अब वे सतोप्रधान से सतो की अवस्था में आ जाते हैं। पवित्रता, सुख-शांति, समृद्धि इस प्रहर में भी रहती है। इसलिए इस युग को भी स्वर्ग ही माना जाता है। भारत में तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं का गायन किया जाता है। इस युग में राज्य करने वाले श्री राम और श्री सीता जी हैं। श्री राम के साथ चँद्र शब्द जुड़ कर श्री रामचंद्र जी बन जाता है। इसका भावार्थ यह है कि श्री राम से चंद्रवंश आरम्भ हो जाता है। इसलिए श्री राम के पूर्वजों को सूर्यवंशी के रुप में दिखाते हैं। इसी कारण वे तिलक के रुप में सूर्य का चिन्ह लगाते है। श्री राम से राम राज्य आरम्भ हो जाता है। इसलिए महात्मा गांधी ने राम राज्य का स्वप्न देखा था। उन्होंने सोचा था कि सतयुग जितनी परिपूर्णता चाहे नहीं ला सकते लेकिन राम-राज्य तो जरुर ला सकते हैं। राम राज्य की महिमा में यह प्रसिद्ध है:-

'राम राजा, राम प्रजा, राम साहूकार है।
बसे नगरी, जिये दाता धर्म का उपकार है।।'

कई बार लोगों के मन में यह प्रश्न जरूर उठता है कि देवताओं ने ऐसे कौन से कर्म किये जो वह सीढ़ी नीचे उतरे, या उनकी कला कम हो गई?

यहाँ कोई कर्म करने की बात नहीं है लेकिन संसार और प्रकृति का एक नियम यह है कि परिवर्तन एक नित्य प्रक्रिया है। विज्ञान में ऊष्म गति का दूसरा सिद्धांत, जो एन्ट्रोपी का नियम है,(the second principle of thermodynamics, the law of entropy states) वह यही दर्शाता है कि (everything moves from an organized state to a disorganized state) इस संसार में पहले हर चीज सुव्यवस्थित होती है और फिर सुव्यवस्थित स्थिति से अस्त-व्यस्त हो जाती है। जब मकान बनाते हैं तो नया होता है फिर वह समयानुसार पुराना हो जाता है। कोई भी चीज़ ऊपर से नीचे अपने आप आती है। जबकि नीचे से ऊपर जाने के लिए उसे चढ़ाना पड़ता है। पानी ऊपर से नीचे अपने आप आता है, यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ऐसे ही सम्पूर्ण खिला हुआ चँद्रमा पूर्णमासी में एक घड़ी रहता है, दूसरी घड़ी से फिर वह अमावस की ओर चलने लगता हैं अर्थात् कोई भी चीज़ एक ही स्थायी स्थिति में नहीं रहती। ऐसे ही देवी-देवता भी अपनी सोलह कला वाली सम्पूर्ण स्थिति में सदाकाल नहीं रह सकते। धीरे-धीरे उनकी कला का कम होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है क्योंकि इस सृष्टि रूपी नाटक में विभिन्न रोल निभाते-निभाते आत्मा की शक्ति का क्षीण होना भी एक कुदरती प्रक्रिया है।

द्वापरयुग

जब कालचक्र का आधा समय बीत जाता है फिर इसका तीसरा भाग शुरु होता है। स्वास्तिका का हाथ दहिने से बांई ओर मुड़ जाता है। यहाँ सत्यता और एकता समाप्त होने लगती है। इसे द्वापरयुग कहते हैं। द्वापर का अर्थ है जहाँ से दो पुर आरम्भ होते हैं। एक धर्म सत्ता और दूसरी राज्य सत्ता दोनों अलग होने लगते हैं। अब सत्यता के साथ असत्यता भी जीवन में आने लगी। ब्रह्मा का दिन समाप्त हुआ और ब्रह्मा की रात्रि का समय शुरु हुआ। शास्त्रों में यह वर्णन है कि देवी-देवतायें वाम-मार्ग में गये। वाम-मार्ग अर्थात् अपने दिव्यता के मार्ग से विकृत मार्ग या विषय-विकारों के मार्ग पर मुड़ गये। सतयुग-त्रेतायुग की अद्वैत भावना समाप्त हो जाती है और द्वैत भावना के कारण आपस में मत-भेद आरम्भ होता है। मत-भेद के कारण ही दुःख-अशांति आरम्भ होती है और तभी कहा जाता:-

'दुःख में सिमरण सब करे, सुख में करे न कोई,
जो सुख में सिमरण करे तो दुख काहे को होई।'

भावार्थ दुनिया में दुःख इसलिए आया क्योंकि सुख (सतयुग-त्रेतायुग के समय) में किसी ने परमात्मा को याद ही नहीं किया, अगर सुख के समय में यानि सतयुग और त्रेतायुग में परमात्मा को याद करते तो दुःख इस संसार में क्यों आता? जब दुःख में परमात्मा को याद करना आरम्भ करते तब परमात्मा का वास्तविक परिचय किसी को नहीं होता।

प्रश्न उठता है कि किसको याद करें? निराकार परमात्मा की स्मृति होने के कारण परमात्मा शिव की लिंग रूप में पूजा आरम्भ होती है। परन्तु साथ-साथ सतयुग-त्रेतायुग में जो देवी देवता होकर गये थे तो उनकी स्मृति ताज़ा होने कारण उनके मन्दिर बना कर उनकी भी पूजा आरम्भ होती है। जैसे आज की दुनिया में कई संतों के भी मंदिर बनते है और लोग उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। लोगों से जब पूछते हैं कि वह संत तो हमारे जैसे मनुष्य ही थे फिर उनके मंदिर क्यों बनाते? तब लोग यही कहते कि 'वह हमसे श्रेष्ठ हैं इसलिए उनकी पूजा करते हैं।' सोलह कला सम्पन्न देवी-देवताओं को मनुष्य अपने से

श्रेष्ठ समझने के कारण उनके मंदिर बनाकर उनकी पूजा करने लगते हैं। द्वापरयुग के बाद आत्माओं की कलाएँ और कम होती गई और वे धीरे-धीरे देह-अभिमान के वश हो गई। इसी युग में ऋषि-मुनियों ने शास्त्र बनाये, मन्दिरों का निर्माण किया, पूजा-पाठ, रीति रिवाज की विविध विधियां बनाई, इस तरह भारत में भक्ति मार्ग आरम्भ हुआ। भक्त परमात्मा को पुकारने लगे लेकिन यह समय परमात्मा के अवतरण का नहीं है क्योंकि उसका वायदा है - **'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत...'**, जब-जब

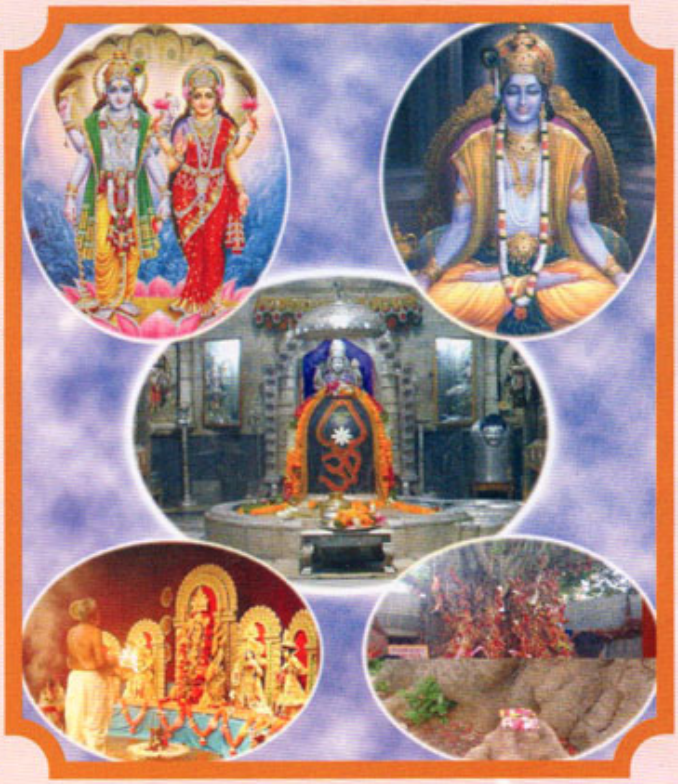

धर्म की अति ग्लानि होती है, तब-तब मैं आऊंगा। द्वापरयुग से तो अधर्म शुरू हुआ है। दु:ख-अशान्ति का समय तो अभी आरंभ हुआ और ऐसे शुरुआत में ही अगर भगवान आ जाएं और गीता का ज्ञान देने लगें तो अधर्म का नाश करके अवश्य ही एक सत्धर्म की स्थापना की होती, लेकिन द्वापर के बाद तो कलियुग आया अर्थात् घोर अधर्म का युग आया। सवाल उठ सकता है कि क्या गीता के ज्ञान से अधर्म के युग की स्थापना हुई? फिर तो भगवान् के आने का उद्देश्य ही सिद्ध नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि अवश्य ही परमात्मा गीता का ज्ञान देने, घोर अधर्म के युग कलियुग में ही आयेंगे तब अधर्म का नाश कर सत्धर्म या सनातन धर्म की पुन:स्थापन करेंगे। तभी उनके आने का उद्देश्य सिद्ध होगा। परन्तु मनुष्यात्माओं ने परमात्मा को पुकारा तो उन भक्तों की पुकार को अनसुना भी तो नहीं कर सकते इसलिए द्वापर में कुछ महान् आत्माओं का जन्म संसार में होता है जो परमात्मा का पैगाम लेकर आते हैं। सबसे पहले **इब्राहिम** आए, जिन्होंने **इस्लाम धर्म** की स्थापना की। उसके बाद **महात्मा बुद्ध** आए। जिन्होंने **बौद्ध धर्म** की स्थापना की और उसके बाद **जीसस क्राइस्ट** आए जिन्होंने **क्रिश्चियन धर्म** की स्थापना की। भारत में हर राज्य में किसी न किसी महान् पुरुष का जन्म हुआ है। किसी भी महापुरुष ने यह नहीं कहा कि हम भगवान हैं। हरेक ने यही कहा कि भगवान एक है, और हम उसका पैगाम लेकर आए हैं। इसलिये सभी धर्मों का मूल सिद्धांत भी एक ही है। कोई धर्म लड़ाई करना नहीं सिखाता। कोई धर्म बुराई करना नहीं सिखाता। हर धर्म की

शिक्षाएं एक जैसी ही हैं। परन्तु इन महान् आत्माओं ने जिस समाज में जन्म लिया था, उस समाज की रचना को देखते हुए उन्होंने समय के संकेत को समझते हुए कुछ प्रचार आरंभ किया।यह प्रचार कार्य अलग-अलग तरीके से किया गया था जिस कारण उनके धर्म या सम्प्रदाय का निर्माण हुआ।

इस्लामधर्म

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक इब्राहिम जहाँ गए थे वहाँ के समाज की रचना में जीवन जीने के सिद्धांतों का अभाव था। इसीलिये उन्होंने अपने प्रचार में जीवन जीने के कुछ सिद्धान्त बताए जो आज भी उनकी पवित्र धर्म पुस्तक में लिखे हुए हैं।

बौद्धधर्म

बुद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध ने समाज की रचना में दो बातों की कमी देखी। एक यह कि मानव दिन-प्रतिदिन बहुत ही धर्म भ्रष्ट और कर्मभ्रष्ट हो रहे है। उनके जीवन में दया नाम की कोई चीज नहीं रही है। तब उन्होंने अपने प्रचार में कहा'दया ही धर्म है, दया धर्म का मूल है। प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखो, और कर्म ही धर्म है।' परन्तु अफसोस की बात यह है कि जिस समाज में इन महात्माओं की शिक्षाओं की गहराई को समाज के लोगों ने समझा नहीं इसलिए उन शिक्षाओं को अपने जीवन में धारण नहीं कर पाये। महात्मा बुद्ध को बहुत मानते है लेकिन महात्मा बुद्ध की मानते नहीं।

क्रिश्चियनधर्म

क्राइस्ट ने भी समाज में दो बातों की कमी देखी। पहली बात मानव जीवन में झूठ का बोलबाला और सत्यता का अभाव है। और दूसरा, उसमें प्रेम भावना का अभाव है। और दिल में नफरत की भावना भरी पड़ी है। तब क्राइस्ट ने इन्हीं दो बातों पर अपना प्रचार किया। उन्होंने कहा 'सत्य ईश्वर है और प्रेम ईश्वर है।' इन दो मूल्यों को ईश्वर के बराबर स्थान दे दिया। परन्तु अफसोस, उन्होंने जिस समाज के लोगों को सत्य और प्रेम के पाठ

पढ़ाए उन्हीं लोगों ने उनके सन्देश की गहराई को समझा नहीं।

कलियुग

इस तरह धीरे-धीरे समय का पहिया घूमते-घूमते कई उतार-चढ़ाव को साक्षी होकर देखते हुए, अनेक प्रकार के अनुभवों को अपने हृदय में समाते हुए काल- चक्र में चौथा युग आया जिसे कलियुग अर्थात् कलह-क्लेश का युग कहा गया। शास्त्रों में यह कहा गया है कि :

''जब कलियुग आया तो राजा परीक्षित का राज्य चल रहा था और कलियुग ने दस्तक दी तब परीक्षित राजा ने पूछा, 'कौन ?' और कलियुग ने जवाब दिया कि 'मैं कलियुग हूँ।' राजा ने पूछा, 'क्या चाहते हो' तो कलियुग ने कहा कि 'थोड़ा सा स्थान आपके राज्य में चाहता हूँ।' राजा ने मना कर दिया कि 'मेरे राज्य में आपको स्थान नहीं मिलेगा।' कलियुग ने कहा 'देखो राजन मेरा समय आ चुका है, मुझे आना ही पड़ेगा आप मुझे स्थान दो' तब कहा जाता है कि परीक्षित राजा ने चार स्थान बताये और कहा कि 'आप शराब खानों में, जुएखानों में, वैश्यालयों में और कसाई खाने में अपना स्थान ले सकते हो लेकिन वहां तक ही सीमित रहना बाहर नहीं आना।' कलियुग ने तब राजा से कहा कि 'राजा मेरा परिवार बहुत बड़ा है आप मुझे एक और स्थान भी दीजिये' तब राजा ने कहा कि 'ठीक है, पाँचवा स्थान आप स्वर्ण में स्वीकार कीजिए' और कलियुग ने वह स्थान स्वीकार कर लिया। राजा के सिर पर स्वर्ण मुकुट था तो कलियुग ने वहां प्रवेश कर लिया और दिमाग को घुमाते हुए अपनी लीला शुरू कर दी। आज इस स्वर्ण में अपना स्थान लेकर वह हर घर में अपना स्थान बना चुका है और धीरे-धीरे वह हर घर में अपने स्वभाव का रंग दिखा रहा है और आज कलियुग में इन्हीं पाँच स्थानों पर हर घर में कलह-क्लेश होने लगे हैं।''

कलियुग में स्वस्तिका का हाथ बांई ओर ऊपर उठा अर्थात् कलियुग में अधर्म हर प्रकार से अपनी चरम सीमा को प्राप्त करता है। कलियुग के दौरान अति **धर्मभ्रष्ट**, **अति कर्मभ्रष्ट**, **अति अत्याचार**, **अति पापाचार**, **अति दुराचार** यानी हर प्रकार की अति

हो जाती है।

इसी युग को दूसरे शब्दों में रावण राज्य भी कहा जाता है। तभी तो इस युग में सभी रामराज्य के स्वप्न देखते हैं और पुनः रामराज्य लाने की चाहना रखते हैं। वर्तमान युग को रावण राज्य क्यों कहते हैं? रावण कोई असुर नहीं था, ब्राह्मण था अर्थात् ऊँची जाति का था। रावण की निम्नलिखित विशेषताएं बताई जाती हैं:-

1 रावण जैसा विद्वान इस संसार में कोई नहीं था। उसमें दस इन्सानों जितनी बुद्धि थी। यह भी कहा जाता है कि रावण ने अपनी बुद्धि की शक्ति से प्रकृति के सभी देवताओं को अपने महल में दास बनाकर रखा था जो उसकी सेवा में तत्पर थे इंद्र देव उसके महल में पानी भरता था, वायु देवता पंखा हिलाता था और अग्नि देवता खाना पकाता था।
2 रावण जैसा शक्तिशाली भी कोई नहीं था। उसके पास दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे।
3 रावण जैसा धनवान् कोई नहीं था। उसकी पूरी लंका सोने की बनी थी।
4 रावण शिव भक्त था। वह बहुत भक्ति और तपस्या करता था।

जीवन में चार प्रकार की आवश्यकताएं मानी जाती हैं - **अर्थ**, **बल**, **बुद्धि** और **भक्ति**। ये चारों ही रावण के पास थे। धन भी अखूट था, बुद्धि भी थी, बल भी था, और भक्ति भी थी। लेकिन सबकुछ होने के बाद भी उसका सर्वनाश हुआ, क्योंकि उसके जीवन में दो कमज़ोरियां थीं।

एक तो उसका अहंकार चरम सीमा पर था, और दूसरा उसमें चरित्रहीनता या अनैतिकता थी।

यह दोनों दोष उसके जीवन में अति में आ गये थे जिस कारण उसका सर्वनाश हुआ। आज की दुनिया की तुलना रावण राज्य के साथ की जाती है क्योंकि इस दुनिया में सभी

प्राणियों में उत्तम प्राणी मनुष्य को माना जाता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं -

- मनुष्य जैसा बुद्धिशाली कोई नहीं, विज्ञान की शक्ति से मनुष्य ने आज भौतिक सुख-सुविधाओं को इतना विकसित कर दिया है कि आज मानव वायु मार्ग से उड़ने लगा है या समुद्र मार्ग से सफर करता है। भौतिकता अपनी चरम सीमा पर है, साथ ही साथ मनुष्य ने भी अपनी बुद्धि की शक्ति से प्रकृति के सभी तत्वों को अपनी सेवा में हाज़िर कर रखा है। जैसे इंद्र देवता को भी नलके में बंद रखा है जो घरों में पानी भरता है और वायु देवता भी स्विचों में बंद है और जब चाहे तब व्यक्ति पंखा या ऐ.सी चालू कर लेता है और वायु देवता उसको शीतलता का अनुभव कराने लिए सेवा में हाज़िर हो जाता है। ऐसे ही अग्नि देवता गैस के सिलींडरों में बंद है और व्यक्ति जब चाहे गैस का बटन दबाये और अग्नि देवता प्रगट होकर खाना पकाना चालू कर देता है। तो प्रकृति के सभी तत्व सेवा में हाज़िर है।
- मनुष्य जैसा शक्तिशाली कोई नहीं। आज उसके पास भी मिज़ाइल पावर है और इन मिज़ाइलों में ब्रह्मास्त्र हैं, अग्नि मिज़ाइल हैं, वायु मिज़ाइल हैं, आदि आदि।
- मनुष्य जैसा धनवान भी कोई नहीं। रात्रि के समय में बड़े शहरों का नज़ारा देखा जाए तो सोने की लंका से कोई कम चमकदार भी नहीं है।
- मनुष्य जैसा भक्त भी कोई नहीं। आज गली-गली में धर्म स्थल बने हैं। भक्ति भी रोज़ की रोज़ बढ़ती जा रही है।

मनुष्य जीवन में भी अर्थ, बल, बुद्धि और भक्ति की चारों उपलब्धियां है। लेकिन आज के युग में मनुष्य आत्माएं भी अपने ही सर्वनाश की ओर आगे बढ़ रहीं हैं क्योंकि आज मनुष्य जीवन में भी दो कमजोरियां मुख्य हैं।

1. उसका अहंकार चरम सीमा पर पहुंच रहा है 2.चरित्रहीनता या नैतिक पतन जीवन में आ गया है।

इसलिये कहा जाता है कि आज की दुनिया भी रावण राज्य बन गई है। ऐसे रावण राज्य में हर इन्सान अपने आपको एक बन्धन में महसूस करता है। किसी को बुरी आदतों का बंधन है तो किसी को व्यसनों का बंधन है, तो कोई अपने नकारात्मक स्वभाव व संस्कारों के बंधन के वशीभूत है। कलियुग में मनुष्यात्मा अपनी ही कर्मेन्द्रियों का और विकारों का गुलाम बन चुका है। जिनके वश होकर मनुष्य की शक्ल-सूरत कितनी विकृत होती जा

रही है और वशीभूत व्यक्ति कितना नकारात्मक और हिंसक बनता जा रहा है। आज के समय में मनुष्य अपनी वास्तविकता को और परमपिता परमात्मा की वास्तविकता को भूल चुका है। परमात्मा का सत्य परिचय न होने के कारण परमात्मा को कहाँ-कहाँ ढूँढ रहा है। कभी अग्नि की पूजा कर रहा है। कभी वृक्षों की पूजा कर रहा है तो कभी नदियों की पूजा कर रहा है। कभी जानवरों की पूजा कर रहा है। प्रकृति के पाँचों तत्वों में ईश्वर को ढूँढना आरंभ कर रहा है। जब ऐसा समय आ जाता है तो कहा जाता है घोर अधर्म का समय या घोर कलियुग है। इतना होने पर भी लोग यही कहते है कि नहीं, कलियुग तो अजुन बच्चा है। कलियुग की आयु 4 लाख और 32 हज़ार वर्ष है और अभी तो 40 हज़ार वर्ष बाकी है। अब सोचने की बात है कि अगर अभी कलियुग बच्चा हो और 40 हजार साल पड़े हों और उसके बचपन में ही यह विकट परिस्थिति आ चुकी हो तो जब कलियुग जवान होगा, बूढ़ा होगा, तो क्या होगा? इस सम्बन्ध में प्रदीपजी का एक गीत बहुत ही सार्थक है- **'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना बदल गया इन्सान.....'**

एक अन्य गीत का उदाहरण भी प्रस्तुत है-

'श्री रामचन्द्र कह गये सिया से, ऐसा कलियुग आएगा.....'

इसी गीत में कवि ने कलियुग में अधर्म के लक्षणों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है कि कलियुग के अंतिम समय में क्या-क्या होगा और वे सारे लक्षणों वाले दृश्य वर्तमान समाज में दिखाई दे रहे हैं। अन्तिम समय की सारी निशानियों को सभी जानते हैं। परन्तु अंतिम समय की एक निशानी जो ध्यान पर आती है कि कलियुग का अन्त कब समझना चाहिये?

शास्त्रों के अनुसार कलियुग का अन्त तब समझना चाहिये जब चार कुओं को एक कुएँ का पानी भर सकता है लेकिन चार कुएँ मिल कर एक कुएँ को भर नहीं सकते। ऐसा समय जब आए तब समझना चाहिये कि कलियुग अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है। मनुष्य सोचता है चार कुओं को एक कुआं भर सकता है, तो क्या चार कुएँ मिलकर एक कुएँ को पानी से भरपूर नहीं कर सकते? यह बात किसी जड़ कुएँ की नहीं है। चैतन्य कुओं की बात है। आज एक माता-पिता चार बेटों के कुएँ को अपने कुएँ के पानी से यानि जितना धन होगा उतने में से पाल पोस कर बड़ा करेंगे, शादी कराके, काम धंधे पर या बिज़नेस में लगा देंगे। लेकिन क्या वे चार बेटे उस एक पिता की आवश्यकताओं को अपने बलबूते पर सम्पन्न कर पाते हैं? जब ऐसा मौका आता है तब वे बंटवारा करके

बारी बांध लेते हैं कि मात-पिता तीन-तीन मास हर एक के साथ रहेंगे। अगर वैसे नहीं होता तो उनके लिए वृद्धाश्रम खोज लेते हैं। यह है आज के समाज की हालत जबकि चार कुएँ मिलकर भी एक कुएँ को नहीं भर सकते। अगर समय ऐसा नहीं होता तो आज मदर टेरेसा, संत मदर टेरेसा क्यों बन जाती?

''मदर टेरेसा (Mother Teresa) *के जीवन का मोड़,* (turning point) *क्या था? वे तो एक सामान्य सिस्टर टेरेसा, एक मिशनरी स्कूल* (missionary school) *चला रहीं थी। फिर यह सिस्टर टेरेसा मदर टेरेसा कैसे बनीं? कहा जाता है एक दिन सुबह वे अपनी कुछ बहनों के साथ प्रात: काल की सैर कर रही थी। चलते-चलते उन्हें बहुत दर्दभरी कराहने की आवाज़ सुनाई दी। वे चारों ओर देखने लगीं लेकिन कोई दिखाई नहीं दिया। बहुत ही दर्द भरी कराहने की आवाज अभी भी सुनाई दे रही थी। उन्होंने आवाज़ की दिशा में जाकर देखा कि एक कचरे के डिब्बे में एक आदमी कराह रहा था। वह कुष्ठ रोगी था। वह इस तरह से उस किचड़े के डिब्बे में पडा था जो हिल भी नहीं पा रहा था। उसके शरीर को चूहे नोंच रहे थे इसलिये वह दर्द से कराह रहा था क्योंकि और कोई उपाय ही नहीं था। मदर टेरेसा का हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने उस व्यक्ति को बाहर निकाला और पूछा, 'तुम अन्दर कैसे गये।' उस व्यक्ति ने रोते हुए कहा कि 'इस बीमारी के कारण जिन्दगी भर मैंने दु:ख देखा लेकिन मुझसे मेरे बच्चे भी तंग हो गए, कल रात मेरे बेटे ने मुझे इस कूड़े के डिब्बे में फैंक दिया और कहा कि यहाँ मर जा बूढ़े, मरता भी नहीं है। मौत भी कैसी है? चूहों ने आधा शरीर का हिस्सा खा लिया फिर भी मुझे मौत नहीं आ रही है।' ऐसा कहकर वह और भी दर्द से रोने लगा। मदर टेरेसा का हृदय द्रवित हो गया। उसने यह संकल्प किया कि आज के बाद मेरा यह जीवन इन कुष्ठ रोगियों के लिये ही रहेगा। जब उन्होंने यह बात अपने समाज वालों से की तो समाज ने इस बात का विरोध किया। उन्होंने अपना वह समाज छोड़ दिया और अपनी एक नई संस्था बना कर यह संकल्प लिया कि आज के बाद मेरा जीवन इसी सेवा के लिए समर्पित रहेगा। वह व्यक्ति तो अधिक समय जिन्दा नहीं रहा। लेकिन मरते वक्त उसने एक बहुत अच्छी लाइन कही कि : 'जिन्दगी भर मैं दु:ख के हाथों में पला, लेकिन आज सुख के हाथ मैं मर रहा हूँ। इससे मुझे विश्वास हो रहा है कि मेरा आगे का जन्म सुखी होगा।' तात्पर्य यह है कि आज वह समय आ गया है कि जब बच्चे माता-पिता को कचरे के डिब्बे में फैंक सकते हैं। अब इससे ज्यादा कलियुग क्या देखना चाहते हैं? क्या यह कलियुग की अति नहीं है? कलियुग का और कौनसा रूप देखने के लिये लालायित हैं? इसलिये अब*

कलियुग बच्चा नहीं है लेकिन थोडा सा बचा है। अब वह अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है। कई लोग यह प्रश्न करते हैं कि अब कलियुग के कितने साल बाकी हैं ?''

कालचक्र की अवधि का ज्ञान परमात्मा संगमयुग (वर्तमान समय) पर देते हैं लेकिन इसके अंत की तिथि नहीं बताते हैं कि कलियुग कब पूरा हो रहा है क्योंकि मान लो आज किसी व्यक्ति को कहा जाये कि तेरे जीवन के केवल चौबीस घंटे शेष हैं तुम जितना चाहो उतना भगवान को याद करलो। तो क्या वह भगवान को याद कर सकेगा? क्योंकि तब वह टाइम कॉन्शयस हो जायेगा। एक-एक घड़ी बीतने के साथ उसका ध्यान मौत की घड़ी पर टिक जायेगा। वह अपने मन को भगवान की याद में एकाग्र नहीं कर पायेगा। उसको कोई कहे चलो तुम भगवान को याद नहीं कर सकते, तो तुम्हारे पास जो कुछ भी है उसका दान करके पुण्य तो कमा लो! तो वह दान भी नहीं कर सकेगा,क्योंकि उसको संशय रहता है कि अगर चौबीस घण्टे के बाद नहीं मरा तो? समय पर उसको भरोसा ही नहीं है इसीलिये न तो वह भगवान को याद कर सकता है और न ही वह दान करके पुण्य कमा सकता है। अगर भगवान भी तारीख, वार, समय, घड़ी बता दे तो कोई भी उसको याद नहीं कर पायेगा क्योंकि हमारा ध्यान भी समय के साथ जुड़ जाता है। इसीलिये भगवान ने केवल यह कहा है कि - बहुत गई थोड़ी रही, अब थोड़ी की भी थोड़ी रही है इसलिए अब ज्यादा वक्त नहीं है। वर्तमान समय के प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति को देखते हुए विज्ञान ने भी इस बात की पुष्टि कर दी है कि अब जिस प्रकार का परिवर्तन वातावरण में आ रहा है, यह भी बता रहा है कि अब समय ज्यादा नहीं रहा है। दुनिया भर के वैज्ञानिक भी ग्लोबल वॉर्मिंग को लेकर चिंतित हैं कि दुनिया का तापमान अगर चार-पाँच डिग्री बढ़ गया तो इस सृष्टि पर मनुष्यों की हालत कैसी हो सकती है उसकी कल्पना शायद आज का मानव नहीं कर सकता। जिस प्रकार ग्रीन हाउस इफेक्ट बढ़ने लगा है, वातावरण में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है, ओज़ोन परत में छेद बढ़ते जा रहे हैं, और ऑक्सीजन का स्रोत वृक्ष कटते जा रहे हैं, इन्सान के जीने के लिये अति आवश्यक वस्तुएं प्राप्त नहीं हो रही है। यह सभी बातें इस बात की पुष्टि करतीं हैं कि अब यह समय ज्यादा नहीं चलेगा।

एक बार हमारा जंगल विभाग के लोगों से मिलना हुआ। उनसे बातचीत करते समय उनसे पूछा कि संसार में इस जनसंख्या को जीवित रहने के लिये कितने प्रतिशत जंगल होने चाहियें? तब उन्होंने कहा, इस जनसंख्या को जीवित रहने के लिये कम से कम तेतीस प्रतिशत जंगल चाहियें। फिर पूछने पर कि इस समय दुनिया के अन्दर अभी कितना प्रतिशत जंगल है? तब उन्होंने कहा कि कागज़ों में चौदह प्रतिशत है जबकि वास्तविकता के धरातल पर मात्र ग्यारह प्रतिशत और यह भी अगर नौ प्रतिशत हो जाए तो मनुष्य जीवन असंभव हो जाएगा। क्योंकि रात्रि के समय में वनस्पति जगत भी ऑक्सीजन लेने लगता है। आधी रात के बाद या ब्रह्ममुहर्त में वातावरण में सिर्फ दो प्रतिशत ऑक्सीजन हो जाता तभी सुबह के समय में कई लोगों को अस्थमा का अटैक या दिल का दौरा अधिक होता है। अब ऑक्सीजन की मात्रा का नौ प्रतिशत रह जाने पर तो मानव जीवन का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा।

जिस तरह प्राकृतिक असंतुलन के कारण संसार में बड़े पैमाने पर भूकम्प भी आ रहे हैं, ज्वालामुखी फट रहे हैं, चक्रवात-तूफान आ रहे हैं, और सुनामी लहरें उठ रही हैं। इसी तरह, मतभेद, जातिभेद, धर्मभेद, भाषाभेद के कारण खून की नदियाँ बहने लगी हैं और फिर यह बात भी तो है कि जो मिज़ाइलें बनाई हैं वे रखने के लिये तो नहीं बनाई हैं। उनका प्रयोग आज नहीं तो कल होना ही है। जब विनाश के सारे साधनों का कमप्यूटरीकरण हो गया है तो केवल एक बटन दबाने की देरी है कि पूरी दुनिया का विनाश हो सकता है। सोचने की बात यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ (united nation) चाहे कितने ही देशों से संधियों पर हस्ताक्षर करा ले कि विश्वयुद्ध न हो परंतु

परिवर्तन की प्रक्रिया में पुरानी दुनिया का विनाश और नई दुनिया की स्थापना होनी है। कहा जाता है कि- नर चाहत कछु और, होवत है कछु और! (man proposes and God disposes) ईश्वरीय योजना के अनुसार यह दुनिया बदल कर नई दुनिया आने वाली है। इसीलिये जब सारे मिज़ाईल और आणविक शस्त्रों का कंट्रोल कमप्यूटर के अधीन है। अगर कमप्यूटर में वाइरस आ जाए, तो एक गलत संकेत मिलने से ही विनाश लीला

शुरु हो सकती है। मान लो कि कमप्यूटर को सुरक्षित रखने लिए एन्टीवायरस प्रोग्राम भी डाल दिया जाए लेकिन मनुष्य के दिमाग में अगर कोई नकारात्मक वृत्ति का वाइरस आ जाय और मति भ्रमित होकर वह सोचे कि दबा दो बटन, खतम करो सब खेल, मरो और मारो, बस। तो कितनी देर लगेगी?

इसलिये अब ज्यादा समय नहीं है। ऐसे अधर्म के समय जब हर बात की अति हो जाती है तो परमात्मा को भी गीता में दिये हुए अपने वायदे के अनुसार इस संसार में आना ही पड़ता है। पूरे विश्व में भारत अविनाशी भूमि है और भारत में भी एक साधारण मनुष्य तन का आधार लेकर ज्ञान और योग की शिक्षा देते हुए, परमात्मा यही संदेश अब दे रहे हैं कि 'बच्चे, अब वापस घर जाना है क्योंकि अब इस दुनिया का महान् परिवर्तन होना है।'

इस समय की मांग को देखते हुए निराकार परमपिता परमात्मा शिव कहते कि 'हे आत्माओ, आत्म शुद्धीकरण करो। योगी बनो, पवित्र बनो।'

परन्तु मनुष्य भाव न समझने कारण कहते हैं कि 'अरे! अगर सारे लोग पवित्र हो गए,फिर यह दुनिया कैसे चलेगी?' ज़रा सोचने की बात है कि क्या दुनिया को चलाने का ठेका मनुष्य का है? वह तो परमात्मा का है। तो क्या उसको मालूम नहीं है कि दुनिया को कैसे चलाना है। फिर दुनिया कैसे चलेगी उसकी चिंता हम क्यों करें?

मुझे याद आता है कि एक बार एक शहर में मेरा सप्ताह का कार्यक्रम था। बहुत सुन्दर एक सप्ताह तक कार्यक्रम चला, हर रोज़ काफी लोग ज्ञान सुनने के लिये आते रहे। अन्तिम दिन एक बुजुर्ग भाई अपना अनुभव सुनाने के लिये मंच पर आकर कहने लगे कि उसने पहली बार ब्रह्माकुमारीज़ का ज्ञान सुना और इनकी एक-एक बात में सत्यता महसूस हुई और आध्यात्मिकता की एक-एक बात तर्क युक्त और प्रैक्टिकल लगी। ऐसा लगा जैसे किसी चीज़ को कूट कूट कर महीन बनाया है जिससे यह ज्ञान की बातें सहज हज़म कर सकें। जीवन में उसे धारण करने की समझ मिली। ये सात दिन जीवन के बहुत अच्छे बीते। परन्तु ब्रह्माकुमारीज़ की एक बात पवित्रता के कारण ही वह कभी उनके आश्रम पर नहीं गये। फिर उन्होंने सुनाया कि इनके बारे में समाज में यह गलतफहमी फैली हुई है कि यह लोगों को अपने गृहस्थ धर्म से छुड़ाकर भाई-बहन बना देते हैं। अरे! ब्रह्माकुमारियों को क्या पड़ी है किसी पति-पत्नी को भाई-बहन बनाने की? ये कार्य ब्रह्माकुमारियाँ नहीं करती, वे तो सिर्फ परमात्मा का पैगाम देती हैं। परन्तु उनकी यह बात सुनने के बाद मन में एक विचार आया कि जब भी भारतवासी मन्दिर जाते हैं तो भगवान

के सामने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना जरूर करते हैं, कि तुम मात-पिता हम बालक तेरे.....। ऐसे नहीं कि यह प्रार्थना सिर्फ भाई ही गाते है और बहनों ने कुछ और कहा हो कि मेरे पति के मात-पिता तो मेरे सास-ससुर, कभी भी किसी ने नहीं कहा। जब गृहस्थ धर्म में रहने वाले पति-पत्नी यह प्रार्थना कर रहे थे तब वे क्या बन गए थे? भावार्थ परमात्मा के सामने तो सभी मनुष्य उनके बच्चे है। वहाँ तो दूसरा कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को भी योगी बनने की प्रेरणा दी, साथ ही काम को महाशत्रु कहकर उसे जीतने की प्रेरणा दी परन्तु कहीं पर भी यह आज्ञा नहीं दी कि तुम अपना गृहस्थ छोड़ दो। लेकिन तब कई लोग सवाल करते हैं कि फिर दुनिया कैसे चलेगी? दुनिया को चलाने की परमात्मा के पास पूरी योजना है। हमें बस उसकी आज्ञा का पालन करना है। वर्तमान समय भी यह संकेत दे रहा है कि आत्म संयम को धारण करो। आज दुनिया में सबसे भयानक बीमारी चल रही है वह एड्स है, जिसका कोई इलाज नहीं है। तो समय भी संकेत दे रहा है कि अगर आत्म-संयम नहीं रखेंगे तो समय के शिकार बन जायेंगे। समय व्यक्ति के अस्तित्व को नष्ट कर देगा। इसलिये इस संसार के परिवर्तन की प्रक्रिया को समझते हुए अब से आत्म संयम को जीवन में अपनाना है।

समय का दूसरा संकेत भी हमें रोज़ मिलता है:- आज कोई भी अखबार उठाकर पढ़ें तो एक खबर हर रोज़ छपती है। वह है कामेशु-क्रोधेशु वाले मनुष्य के कुकृत्य। प्रत्यक्ष में कितनी घटनायें घटती होंगी। हमारा विवेक भी यह मानता है कि दिन-प्रति-दिन यह घटनायें बढ़ेंगी। ऐसे समय आत्मरक्षा का साधन क्या है? कोई इन्सान किसी की रक्षा नहीं कर पाता और ना ही कर पायेगा। यह विकृति इन्सान के दिमाग की है जो दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह भी समय का संकेत है कि एक दिन यही विकृति मनुष्य के सर्वनाश का कारण बनेगी। जिसका वर्णन शास्त्रों में भी दिया गया है कि रावण बहुत शक्तिशाली था। वह सीता जी को सम्मोहित कर के ले आया परन्तु अपने महल में नहीं रख सका। अशोक वाटिका में रखना पड़ा। वह सीता जी को स्पर्श तक न कर सका! सीताजी के पास अपनी आत्मरक्षा के लिये कौनसे शस्त्र थे? एक

घास का तिनका, जो उठा कर सीताजी ने बीच में रखा और रावण को चैलेन्ज कर दिया कि 'हे रावण, इस तिनके से आगे तूने एक कदम भी बढ़ाया तो जल जाएगा, इतनी शक्ति है मेरी।' रावण, जो किसी से कभी डरा नहीं सीता जी की इस चुनौति से डर गया। सीताजी के पास आत्म रक्षा की ऐसी कौनसी शक्ति थी? यह शक्ति 14 साल के ब्रह्मचर्य व्रत की शक्ति, पवित्रता की शक्ति थी। पवित्रता की शक्ति ने उनके चारों ओर एक सुरक्षा कवच बना दिया था और वही उनकी आत्मरक्षा का साधन था। इसी प्रकार आने वाले समय में ऐसे अनेक रावण हो जायेंगे जो अनेकों को अपने विकृत मनोविकारों का शिकार बनायेंगे। ऐसे समय में ब्रह्मचर्य व्रत की शक्ति सुरक्षा कवच का कार्य करेगी और इससे आत्मरक्षा होगी।

महाभारत का कारण भी द्रौपदी का वस्त्रहरण ही बना जो कौरवों के सर्वनाश का कारण बना। आज की दुनिया में भी इसी वस्त्रहरण के कारण दुनिया का बेड़ा गर्क होता जा रहा है और यही संसार के सर्वनाश का कारण बनेगा।

परमात्मा जानीजाननहार है। परमात्मा सर्वज्ञ होने के कारण जानते हैं कि आने वाले समय में नकारात्मक मनोवृत्ति एवं विकृत मनोदशा वाले अनेक हैवान चारों ओर मंडरायेंगे और अनेक आत्माओं को अपनी हवस का शिकार बनायेंगे और कोई किसी की रक्षा नहीं कर पाएगा। ऐसे समय पर सुरक्षित रहने की विधि बताने परमात्मा इस धरा पर आते हैं और बताते हैं कि पवित्रता की शक्ति ही आत्मरक्षा का कवच बन सकती है। अतः योगी बनो, पवित्र बनो। कई बार कई लोगों के मन में यह सवाल भी आता है कि ऐसे समय पर भगवान मदद क्यों नहीं करता?

परमात्मा हर आत्मा को मदद करना चाहता है इसीलिए पवित्र बनने की प्रेरणा देते हैं। जैसे कहावत है कि शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही ठहरता है, अगर कोई साधारण बर्तन में रखा जाए तो वह बर्तन फट जाता है, वह दूध इतना शक्तिशाली होता है। वैसे ही परमात्मा परम पवित्र है और सर्वशक्तिमान है तो उसकी मदद को स्वीकार करने लिए पवित्रता की पात्रता चाहिए। सर्वशक्तिमान की शक्ति को प्राप्त करने के लिए आत्मा के अंदर ब्रह्मचर्य

व्रत की शक्ति जरूर होनी चाहिए तभी परम पवित्र परमात्मा की मदद पा सकेंगे इसीलिये परमात्मा इस अंतिम परिवर्तन के समय में आकर पवित्र बनने लिए कह रहे हैं। पवित्रता की धारणा करने से कैसा भी मुश्किल समय हो, परमात्मा की मदद अवश्य प्राप्त होती है। दुनिया की सर्व आत्माएँ परमात्मा की संतान हैं।

कई लोग यह भी कहते हैं कि ब्रह्माकुमारियाँ अपनी वृत्तियों का दमन करती हैं। नहीं। हम दमन नहीं करते। परन्तु ब्रह्माकुमारियाँ, समय के गुह्य रहस्यों को जानते हुए बड़ी समझदारी से आत्मसंयम को अपनाते हुए मन को सुमन बनाती हैं या मन को अपना मित्र बनाती हैं। इसी तरह ब्रह्माकुमारी संस्था में जो भी संयम-नियम अपनाये जाते है वे समय की पुकार को समझते हुए जानी-जाननहार परमात्मा द्वारा समय के रहस्यों को स्पष्ट करते हुए विपरीत समय में भी सुरक्षित रहने की विधि बताती हैं। करना, न करना यह हर एक मनुष्य की समझ और शक्ति पर निर्भर करता है। लेकिन जो करेगा, सो पायेगा, सुरक्षित रहेगा। जो नहीं करेगा वो समय का शिकार बनेगा।

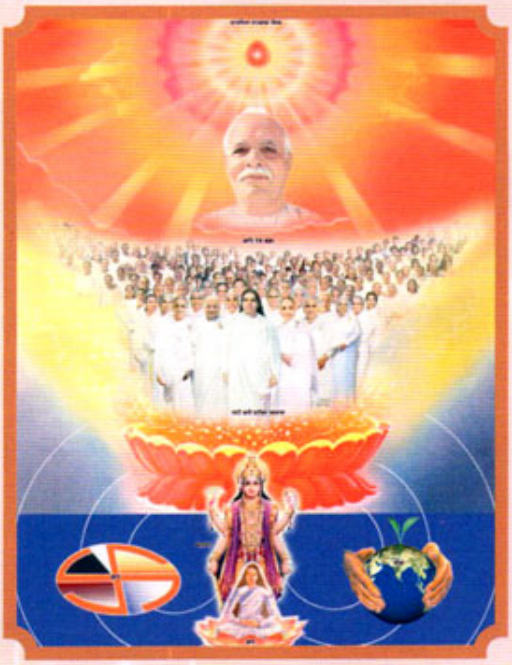

समय बीत जाने के बाद फिर भगवान को दोष नहीं देना कि, हे प्रभु, आप तो जानी-जाननहार सब कुछ जानते थे फिर आपने हमे यह विधि बताई क्यों नहीं? कई लोग यह सवाल उठाते हैं कि फिर यह दुनिया कैसे चलेगी?

हमारे शास्त्रों में यह बात बताई गई है कि पाण्डवों और कौरवों की उत्पत्ति मन्त्रों के बल से हुई थी, अर्थात् मंत्रों के बल से भी उत्पत्ति होती थी। इसी तरह पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुर की उत्पत्ति दृष्टि के बल से हुई थी अर्थात् दृष्टि के बल से उत्पत्ति होती थी। इसी तरह श्री राम की उत्पत्ति यज्ञ के बल से हुई थी। श्रीकृष्ण जिसको योगेश्वर कहते हैं, उसकी उत्पत्ति भी पवित्र विधि - 'योगबल' से हुई इसीलिये तो उनको परम पवित्र मानते हैं। ऐसी पवित्र विधि से जिसकी उत्पत्ति हुई तो वह कितनी श्रेष्ठ और परम पवित्र आत्मा होगी। समय इस बात का साक्षी है कि संसार में समय प्रति समय उत्पत्ति की विधि बदलती रहती है।

ये तो कलियुग में मनुष्य के पास आत्म शक्ति नहीं रही तो भोगबल उत्पत्ति का एक माध्यम बन गया। बाकी इस कालचक्र में सदाकाल से भोगबल से उत्पत्ति नहीं हुई है। आज से दो हज़ार साल पहले ईशु का जन्म कैसे हुआ था? अगर कुमारी मेरी, बिना किसी भोगबल के ईशु को जन्म दे सकती है, उसको किसी ने भ्रष्ट आचार नहीं कहा। मदर मेरी के रूप में आज भी उन्हें पूजा जाता हैं, सिर्फ दो हज़ार साल पहले की बात है, अर्थात् दो हज़ार साल पहले भी पवित्र विधि से उत्पत्ति होती थी। परमात्मा के पास आने वाली सतयुगी दुनिया के लिए भी बहुत सुन्दर, श्रेष्ठ और पवित्र उत्पत्ति का रहस्य है। जिसकी कल्पना करना आज के मनुष्य की समझ की क्षमता के बाहर है इसलिए मनुष्य प्रश्न करता है कि क्या सबूत है कि पवित्र विधि से भी उत्पत्ति होती है? भगवान जानता था कि कलियुगी मनुष्य हर बात में सबूत जरूर मांगेंगे और तभी प्रकृति में मोर पक्षी को रखा है, जो आज भी पवित्र विधि से उत्पत्ति करता है, इसीलिये श्रीकृष्ण के ताज में मोर का पंख सुशोभित है,यह कोई ताज की डेकोरेशन के लिए नहीं है परन्तु जैसे श्रीकृष्ण परम पवित्र हैं इसी तरह यह पक्षी भी पूरे पाँच हज़ार वर्ष तक पवित्र है इसीलिये श्रीकृष्ण ने मोर का पंख अपने ताज में लगाकर उन्हें सम्मान दिया है।

वर्तमान समय में विज्ञान भी इस बात की पुष्टि करने लगा है कि नारी अपने आप में परमात्मा की पूर्ण रचना है जो अपने आप में उत्पत्ति कर सकती है। विज्ञान के अनुसंधान से यह पता चला है कि नारी के 'बोन मेरो' में बीज उत्पन्न करने की क्षमता है। उन्हें किसी सम्भोग की आवश्यकता नहीं है। जैसे दो हज़ार साल पहले कुमारी मेरी ने मदर मेरी बन जीसस को जन्म दिया। इस काल-चक्र की परिवर्तन की वेला में समय के विभिन्न संकेतों से हमने समझा कि समय की पुकार यही है कि योगी बनो, पवित्र बनो और आत्मसंयम को धारण कर आत्मशुद्धिकरण कर परमात्मा की योजना में खुदाई-खिदमतगार बनें अन्यथा किस्मत आपके हाथ में है। किस्मत कैसे बनती है? किस्मत शब्द को अलग करे तो किस+मत अर्थात् अब जीवन में किसकी मत पर चलना है? क्या परमात्मा की श्रीमत यानी श्रेष्ठ मत पर चलना है या मनुष्यों की अल्पज्ञ मत पर चलना है? अब हमें यह समझ मिली है कि इस परिवर्तन के समय में हम दो राहों पर खड़े हैं, जहां से एक रास्ता सतयुग की ओर जाने वाला है, जिस पर चलने लिए खुदा के मददगार बनना होगा और दूसरा रास्ता समय का शिकार बनने की ओर जाने वाला है। अब किस रास्ते पर चलना है यह हमें चुनना है। तभी

तो कहा जाता है कि आपको समस्या स्वरूप बनना है या समाधान स्वरूप बनना है, यह आपकी मरज़ी है। भगवान हमें श्रेष्ठ ज्ञान अर्थात् समझ देते हैं बाकी अपनी तकदीर की लकीर खींचना या तकदीर की लकीर को मिटाना अपने हाथ में है। फिर भगवान को दोष नहीं देना कि आपने मेरी किस्मत ऐसी क्यों बनाई? भगवान कहता है कि किस्मत आपके हाथ में है। किस्मत बने या बिगड़े इसके लिये भगवान ज़िम्मेवार नहीं है। भगवान नई सतयुगी दुनिया का सृजन 'इलेक्शन' से नहीं करते है, लेकिन 'सिलैक्शन' से करते हैं। वह जब आत्माओं में कोई विशेषता देखते हैं तब उन्हें सिलैक्ट करते है और नई दुनिया की रचना में उसकी मदद के बदले में श्रेष्ठ भाग्य प्रदान करते हैं।

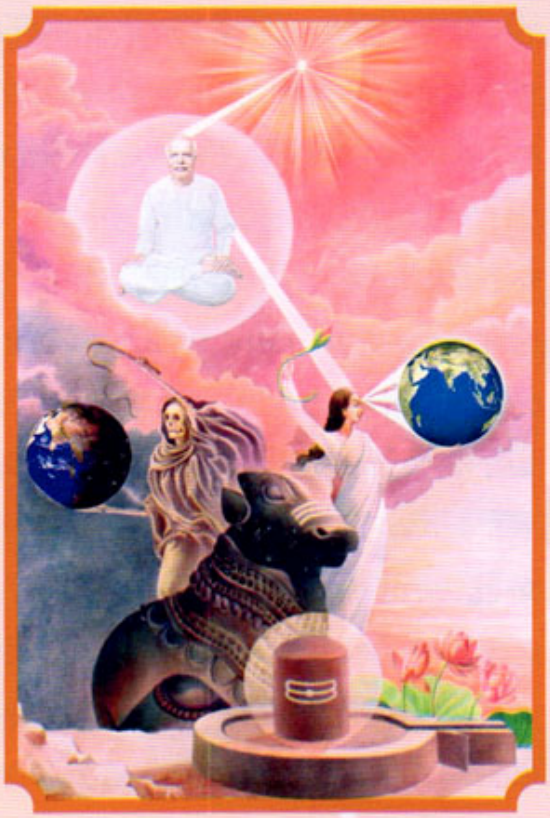

''इस संसार में भगवान को याद करने वाली अनेक आत्मायें है परन्तु भाग्यशाली वह आत्मा है जिसको भगवान याद करे और चुनकर अपना मददगार बनाये। इस सम्बन्ध में नारद की कहानी है कि एक बार नारदजी घूमते-घूमते भगवान के पास पहुँच गये तो उन्होंने देखा कि भगवान के हाथ में एक डायरी थी। नारद जी ने भगवान से पुछा कि 'प्रभु, क्या देख रहे हो?' भगवान ने कहा 'यह मेरी खास डायरी है।' बड़ी जिज्ञासावंश नारद जी ने पूछा, 'भगवान इसमें ऐसा क्या लिखा है?' भगवान ने कहा, 'इसमें कुछ नाम लिखे हैं।' नारद जी ने पूछा, 'प्रभु, किसके नाम लिखे हैं?' भगवान ने कहा कि 'इसमें उनके नाम लिखे हैं जो भक्त मुझे बहुत याद करते हैं।' नारद जी बड़े खुश हुए और कहा कि 'भगवान, मेरा नाम तो सबसे पहले होगा क्योंकि मेरे जितना तो कोई आपको याद नहीं करता है।' भगवान मुस्कुराए और कहा 'हाँ, तेरा नाम सबसे पहला है। तेरे जितना तो कोई मुझे याद नहीं करता।' फिर भी नारद जी को तसल्ली नहीं हुई और कहा 'प्रभु, क्या मैं आपकी डायरी देख सकता हूँ?' भगवान ने कहा 'जरूर देख लो'। अपना नाम पहले नम्बर पर देख कर नारद जी को बहुत खुशी हुई। डायरी में आगे देखने लगे कि इसमें हनुमान जी का नाम कहाँ लिखा है? सारी

डायरी में हनुमान जी का नाम ही नहीं था। अब नारद जी का काम था हनुमान जी में ईर्ष्या की आग जलाना। डायरी भगवान को दी और हनुमान जी को ढूँढने निकले तो देखा कि हनुमान जी एक वृक्ष के नीचे बैठ भगवान का नाम ले रहे थे। नारदजी ने वहां जाकर कहा, 'ये ढोंग बन्द करो।' हनुमान जी ने कहा- 'क्यों?' नारद जी ने कहा 'अभी मैं भगवान के पास होकर आया हूँ और उनके पास एक डायरी थी जिसमें भगवान ने उनके नाम लिखे थे जो भक्त उनको बहुत याद करते हैं और सारी डायरी में आपका नाम ही नहीं था।' अब हनुमान जी कोई जलने वालों में से तो नहीं थे। उन्होंने कहा 'मैं डायरी में अपना नाम लिखवाने के लिये थोड़े ही याद करता हूँ। मैं तो प्रभु के दिल में रहता हूँ।' नारद जी क्या बोलते? फिर वहाँ से चले, घूमते-घूमते फिर भगवान के पास पहुंच गये। इस बार नारद जी ने देखा कि भगवान एक छोटी सी डायरी देख रहे थे। नारद जी ने देखा कि यह डायरी तो अलग लग रही है तो उन्होंने भगवान से पूछा, 'प्रभु, आज क्या देख रहे हो?' भगवान ने कहा 'यह मेरी पर्सनल डायरी है।' नारदजी ने पूछा, 'प्रभु इस पर्सनल डायरी में क्या लिखा है?' तो भगवान ने भी मुस्कुरा कर कहा कि 'इसमें भी कुछ नाम हैं।' नारद जी ने बड़ी जिज्ञासा वश पुछा कि 'इसमें किसके नाम लिखे हैं भगवन्?' भगवान ने कहा, 'इसमें उनके नाम लिखे हैं जिनको मैं बहुत याद करता हूँ।' नारद जी ने सोचा मुझे देखना चाहिए कि भगवान ने इस डायरी में किसके नाम लिखे हैं? नारद जी ने भगवान से पूछा कि 'प्रभु, मैं यह डायरी देख सकता हूँ?' भगवान ने मुस्कराकर कहा 'जरूर, देख लो' और डायरी नारदजी को दे दी। नारदजी ने देखा कि हनुमान जी का नाम सबसे पहला था और नारद जी का नाम कहीं नहीं था। भावार्थ कि भगवान को याद करने वाले इस दुनिया में बहुत होते है परन्तु भगवान जिसको याद करे, वह महान भाग्यशाली होते हैं। इस तरह समय का पहिया घूमते-घूमते अब कलियुग और सतयुग के संधिकाल में आ गया है और समय का संकेत देते हुए समय के अनुकूल परिवर्तन करने की प्रेरणा दे रहा है। अब किस ओर जाना है, यह हमारा चुनाव रहेगा और जो सही चुनाव करता वह परमात्मा के आशीर्वाद के पात्र बन जाता है। समय के चक्र के रहस्य को समझते हुए अपने जीवन में भाग्य को श्रेष्ठ बनाने का पुरुषार्थ करना है।"

अब थोड़ी देर हम योगाभ्यास करते हैं और मन को एक रुहानी यात्रा पर ले चलते हैं... मन में श्रेष्ठ संकल्पों का निर्माण करते हुए अंतर्चक्षु से स्वयं को उस दिव्य स्वरूप में देखते हुए मन में उस भाव को जागृत करते महसूस करना है।

कुछ समय एकांत में मन को सभी बाह्य बातों से समेट लें और अलर्ट होकर शांति में

बैठें... कुछ क्षण स्वयं को आत्म भाव में अपने सतोगुणी स्वरूप में अंतर्चुक्ष से देखें... धीरे-धीरे स्वयं को देह से न्यारा महसूस करें... मैं आत्मा इस सृष्टि नाटक में एक श्रेष्ठ पार्टधारी हूँ... मैं आत्मा स्वयं को अपने अनादि सम्पूर्ण स्वरूप में स्वयं को स्थित करती हूँ... सम्पूर्णता के संस्कार को इमर्ज करती हूँ... सतोप्रधान स्थिति को लिए हुए... परमधाम से नीचे सृष्टि रंगमंच पर सतयुग में अपने सम्पूर्ण पवित्र स्वरूप में अवतरित होती हूँ... सृष्टि के आदिकाल, स्वर्ण काल में मैं चमकता दिव्य सितारा, सम्पूर्ण देवताई स्वरूप को धारण करती हूँ... अंतर्चक्षु से स्वयं को सम्पूर्ण पवित्र दिव्य स्वरूप में देखो... दिव्य नूरानी चेहरा, मस्तक पर तेज, डबल ताजधारी, दिव्यता सम्पन्न... इस पावन वैकुण्ठधाम में सभी देवताओं के बीच... सर्व गुण सम्पन्न, 16 कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, मर्यादा पुरुषोत्तम, अंहिसा परमोधर्म स्थिति में स्थित हूँ... यहाँ श्री लक्ष्मी श्री नारायण का राज्य है... और मेरा पार्ट कितना श्रेष्ठ है... यहां एक धर्म, एक राज्य सत्ता है, यहां सुख, शांति समृद्धि और सम्पन्नता से भरी हुई वसुन्धरा है... शेर और गाय एक घाट पर पानी पीते है... चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्य और खुशहाली फैली हुई है... हीरे जवाहरातों से सजे महल... कितना मनोहारी सुंदर स्वर्गिक नज़ारा है... जहाँ हम परम पवित्र स्वरूप में है... ऐसे सूर्यवंशी चंद्रवंशी जन्मों को भोग कर मैं आत्मा द्वापर युग में अपना पार्ट बजाने आती हूँ... मैं अपने पूज्य स्वरुप से पुजारी स्वरुप में आती

हूँ... और रजोप्रधान अवस्था में आती हूँ... मंदिरों में खूब भक्ति, पूजा पाठ, दान पुण्य करते कलियुग में आती हूँ जहाँ तमोप्रधान अवस्था में आ जाती हूँ... और जाने अनजाने में अनेक पाप कर्म हो जाते हैं... दुख, अशांति परेशानीयों को भोगते हुए अब संगमयुग में आ पहुंचती हूँ... और इस अनमोल जन्म में मुझे मेरी भक्ति का फल परमात्म ज्ञान की प्राप्ति हुई... और मैं परमात्म वर्से की अधिकारी आत्मा बन गई... मैं कितनी श्रेष्ठ भाग्यवान आत्मा हूँ... जो स्वयं भगवान ने अपने श्रेष्ठ कार्य के लिए मुझे मददगार बनाया है... करनकरावनहार बाबा के साथ सर्व के लिए प्रेम, दया, कृपा, स्नेह भाव के प्रकम्पन्न फैला रहीं हूँ... प्रकृति और सर्व आत्माओं को पवित्रता और शक्ति के किरणें दे पावन बना रहीं हूँ... मैं श्रेष्ठ खुदाई खिदमतगार हूँ... अब धीरे धीरे मैं वापस अपने साकार स्मृति मे आ जाती हूँ... ओम् शांति, शांति, शांति।

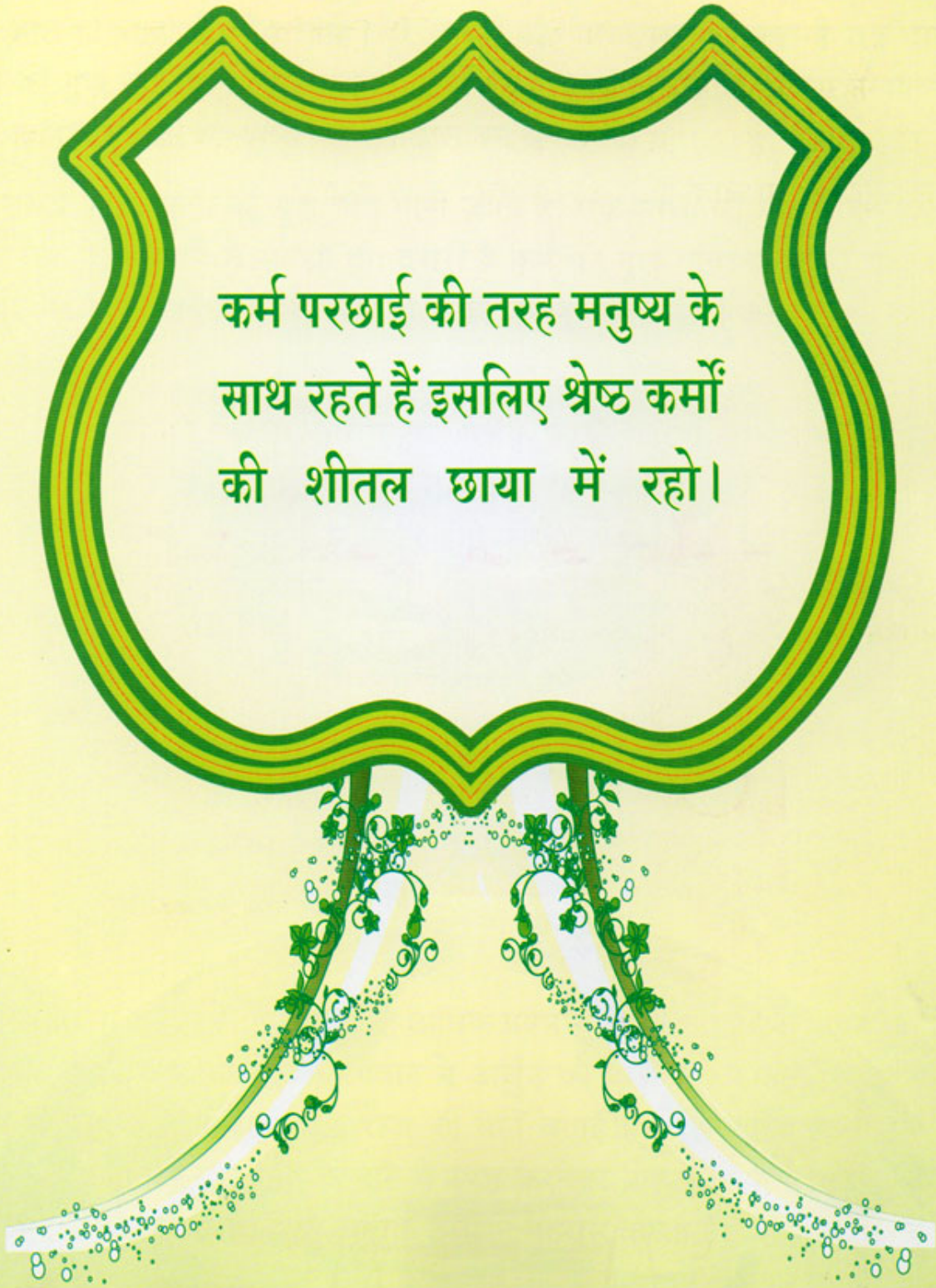

कर्म परछाई की तरह मनुष्य के साथ रहते हैं इसलिए श्रेष्ठ कर्मों की शीतल छाया में रहो।

कर्मों की गुह्य गति

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान के ये महावाक्य हैं – 'हे वत्स! कर्म, अकर्म और विकर्म की गति अति गहन है इसे पण्डित और विद्वान भी नहीं जानते, इसलिए तू कर्म-गति का ज्ञान मुझ से ही प्राप्त कर।' कर्मों की गुह्य गति का ज्ञान न होने कारण जब मनुष्य धर्म भ्रष्ट और कर्म भ्रष्ट हो जाता है और चारों ओर अधर्म का बोलबाला हो जाता है तब परमात्मा कर्मों की गुह्य गति का राज़ समझाने के लिए इस धरती पर आते हैं। इस परमात्म-ज्ञान को आचरण में लाने से मनुष्य का कर्म श्रेष्ठ बन सकता है।

इस संसार में दो बातों की गुह्य गति मानी जाती है। एक समय की गुह्य गति जिसे हमने काल चक्र के अध्याय में समझा था। दूसरी है कर्म की गुह्य गति। इन दोनों गुह्य गतियों का परस्पर गहरा संबंध होने के साथ ही हमारे जीवन और पिछले जन्मों से भी बहुत गुह्य संबंध है।

यह तो सब मानते हैं कि इस संसार का प्रत्येक कार्य, कारण और परिणाम के नियम (law of action and reaction) अर्थात् कर्म और फल में बँधा हुआ है अर्थात् संसार में कोई भी ऐसी घटना नहीं घटती जिसका कोई कारण न हो अथवा जिसका कोई परिणाम न निकले। यह एक अटल नियम है। विज्ञान भी कहता है कि आघात और प्रत्याघात परस्पर विरोधी और समान होते हैं (action and reaction are equal and opposite)। इसी वैज्ञानिक सिद्धांत को कर्मों की गुह्य गति के विषय में विस्तारपूर्वक समझने की आवश्यकता हैं।

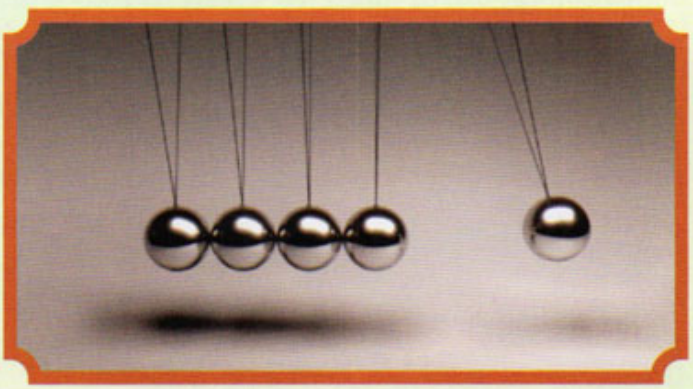

आज संसार में मनुष्य के मन में सबसे अधिक प्रश्न या उलझन कर्म के विषय को लेकर होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान ने अर्जुन को बार-बार कर्मों की गुह्य गति के विषय में कोई न कोई अति गुह्य राज़ की बातें बताई है। कई महान् आत्माओं ने भी मनुष्यों को कर्मों की गुह्य गति के बारे में स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। परन्तु फिर भी व्यक्ति कर्मों को लेकर उतनी ही अधिक उलझन महसूस करता है।

इस बात को स्पष्ट करने लिए मुझे एक घटना की स्मृति हो आई है :-

''एक बार हमारा कार्यक्रम मुंबई में था। जैसे ही सुबह का प्रवचन पूरा हुआ तो स्वाभाविक रीति से एक परिवार वालों ने कहा कि अगर शाम के समय फ्री हों तो वे अपने घर में प्रवचन रखना चाहते हैं, क्योंकि उनकी कॉलोनी में बहुत अच्छे आध्यात्मिक बिचार वाले लोग रहते हैं। वे चाहते थे कि उनको भी कुछ आध्यात्मिक ज्ञान का लाभ मिल जाए। शाम का समय खाली होने कारण हमने उनको शाम को सात बजे से आठ बजे तक का समय दे दिया। वे बहुत खुश होकर चले गये। हम कुछ समय पहले ही उनके घर पहुंच गये और जैसे ही हम उनके घर पहुंचे तो उनको बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्हें हमारी इतनी जल्दी पहुंचने की अपेक्षा नहीं थी। जब हम पहुंचे तब सारा परिवार बैठकर टी.वी देख रहा था। टी.वी. पर कोई धारावाहिक चल रहा था। जैसे ही माता-पिता ने हमें देखा तो बच्चों को इशारा किया कि टी.वी. बंद करो, परन्तु बच्चों ने इशारा किया कि वे नहीं करेंगे। माता-पिता ने कहा अच्छा टी.वी. का आवाज़ कम कर दो तो बच्चों ने आवाज़ कम कर दिया। अब हमें वहीं बैठना था जहाँ उनकी टी.वी. चल रही थी। उनकी टी.वी. का आवाज कम कराकर मात-पिता हमसे बातें करने लगे तो उनके घर में लगभग 14 साल की आयु का बच्चा उठकर आया और बड़ी सभ्यता से हम से कहने लगा कि दीदी आप बुरा नहीं मानना लेकिन आप थोड़े समय के लिए शांति में रहेंगे तो बहुत अच्छा होगा और फिर वह अपना कारण बताने लगा कि यह धारावाहिक बहुत अच्छा है और वे सभी उसको ही देखने के लिए बैठे हैं क्योंकि उस दिन उसका अंतिम ऐपीसोड है जिसमें कई रहस्य खुलने वाले हैं इसलिए वह हमसे निवेदन कर रहा था कि हम बुरा न मानें। मुझे हँसी आ गई और मैंने उसे कहा कोई बात नहीं हम शांति में रहेंगे। अब सब लोग शांति से टी. वी. देखने लगे। मुझे भी जिज्ञासा हुई कि इस धारावाहिक में ऐसा क्या है जिसके लिए इस बच्चे ने मुझे चुप करा दिया। मैं भी उसे देखने लगी तो पाया कि एक दृश्य का सम्बन्ध दूसरे दृश्य के साथ नहीं था और कहानी भी समझ में नहीं आ रही थी लेकिन पता नहीं उसमें क्या रहस्य स्पष्ट होता था कि बीच-बीच में वह सब खुश हो जाते थे कि वाह बहुत अच्छा दिखाया। हमें कुछ समझ में नहीं आया कि क्या अच्छा था। आखिर में जब वह ऐपीसोड समाप्त हुआ तो भी कोई खास बात नहीं लगी परन्तु वे सभी बहुत खुश हुए कि वह धारावाहिक बहुत अच्छा था। मुझ से रहा नहीं गया तो मैंने उस बच्चे को बुलाकर पूछा कि इसमें क्या अच्छा था हमें तो कुछ समझ में ही नहीं आया। तब उस बच्चे ने मुझे कहा, दीदी, आपने सारे ऐपीसोड नहीं देखे इसलिए आपको कुछ समझ में नहीं आया परन्तु हमने तो

सारे ऐपीसोड देखे थे इसलिए हम समझ सकते थे कि हर दृश्य का सम्बन्ध कौनसे ऐपीसोड के साथ था इसलिए हमें अच्छा लगा। वह तो इतनी बात कहकर चला गया लेकिन उसके बाद मैं सोचने लगी कि वह मुझे इतनी गहरी बात समझाकर गया है। मेरे मन में विचार चलने लगे कि इस सृष्टि के विशाल नाटक में हमारे भी कितने जन्म होंगे और हर जन्म एक-एक एपीसोड है। काल चक्र के अंतिम समय में हमारा भी यह अंतिम जन्म अर्थात् अंतिम ऐपीसोड है। जीवन के इस अंतिम ऐपीसोड को देखें तो जीवन कोई मन पसंद कहानी जैसा भी नहीं लग रहा है, और न ही इस जीवन में एक दृश्य का दूसरे दृश्य के साथ सम्बन्ध हैं। हर दृश्य जैसे कोई रहस्य उजागर कर रहा है लेकिन हमारी समझ से बाहर है और जब समझ में नहीं आता तो हम दुखी, परेशान हो जाते हैं और मुख से यही निकलता है कि ***मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है ?*** कभी-कभी हमारी शिकायत भगवान से भी होने लगती कि आपने मेरे जीवन में ही इतना दुख-दर्द क्यों लिखा है। परन्तु इस बेहद के नाटक में अगर हमें भी सारे ऐपीसोड याद होते तो इस जीवन के हर दृश्य को उस ऐपीसोड के साथ मिलाकर देखते तो रहस्य समझ में आता कि हमारे साथ यह क्यों हुआ तब शायद हम उदास, दुखी या परेशान होने के बजाय कारण-परिणाम को समझते हुए खुश होते और यह समझ पाते कि जीवन के हर दृश्य के साथ कुदरत ने कितना न्याय किया है तो उसको स्वीकार करना आसान हो जाता है। इससे बेवजह किसी और को दोष देने के बजाय हम अपने कर्मों की ज़िम्मेदारी खुद उठा सकते और आगे न करने का सबक भी ले सकते थे। तब शायद यह ज़िन्दगी बहुत अच्छी रहती परन्तु अपने जन्मों के सारे ऐपीसोड याद न रहने की भी इस बेहद के नाटक में कोई वजह होगी तभी तो कुदरत ने एक शरीर छोड़ते ही उस सारे एपीसोड की विस्मृति करा दी। लेकिन ईश्वर ने हम सबको यह समझ दी है कि इस संसार में जो कुछ भी होता है उन सबके पीछे कहीं न कहीं मनुष्य खुद अपने कर्म के लिए ज़िम्मेदार है इसलिए अंग्रेज़ी में भी कहावत है कि there is nothing like coincidence in this world, everything that happens, has a definite

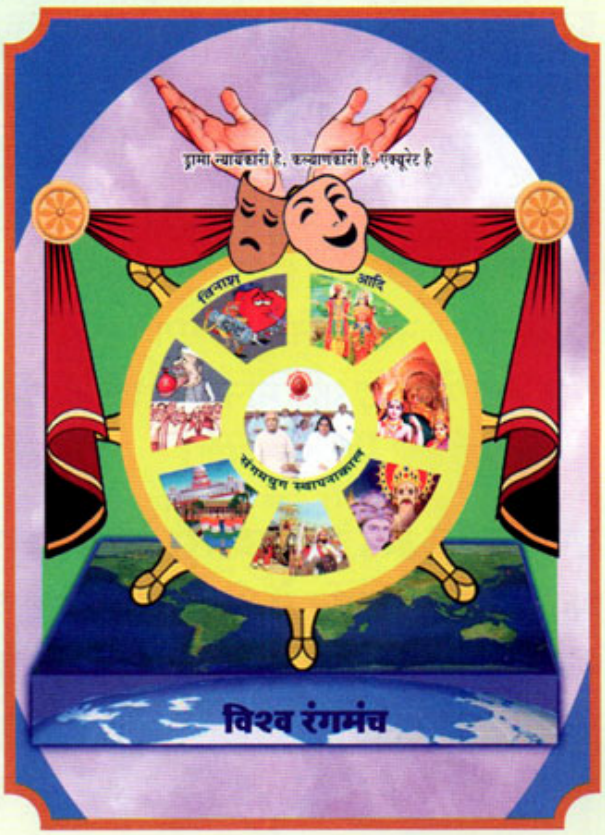

reason *अर्थात् 'इस जीवन में संयोग जैसी कोई चीज़ नहीं होती, जो कुछ भी जीवन में होता है उसकी कोई न कोई वजह अवश्य होती हैं।' साथ ही हम यह भी जानते हैं कि मनुष्य के कर्म उसे कभी नहीं छोड़ते, आज नहीं तो कल उसको हर कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। अपने कर्म से व्यक्ति कभी पीछा छुड़ा नहीं सकता। हर कर्म का फल, कर्मकी परछाई की तरह होता है।''*

कर्म की गुह्य गति में **कर्म का सिद्धांत** यह है :-

'जो करेगा सो पायेगा,
जैसा करेगा वैसा पायेगा,
जितना करेगा उतना पायेगा।'

इस सिद्धांत को शास्त्रवादिओं ने कहा कि व्यक्ति जैसा कर्म करेगा, वैसा फल पाने लिए उसे वैसी ही योनि में जन्म लेना पड़ेगा इसीलिये कभी-कभी मनुष्य जीवन में यह भय रहता है कि पता नहीं उसे कौनसी योनि में जन्म मिलेगा? कई बार इसी भय के कारण कई लोग कर्मों की गुह्य गति को समझना ही नहीं चाहते। इस विषय को पेचीदा समझकर अछूता ही छोड़ देते हैं। सोचते हैं करते जाओ, जो भोगना होगा भोग लेंगे। वे यही मानते हैं कि अगर नहीं जानेंगे तो भुगतना भी नहीं पड़ेगा। जैसे तूफान के रहते शुतुरमुर्ग अपना सिर रेती में गाड़ कर मानता है कि तूफान है ही नहीं। क्या ऐसा हो सकता है? क्या यही समझदारी है? बिल्कुल नहीं।

हम आपको **यह खुशखबरी देते हैं कि मनुष्यात्मा केवल मनुष्य योनि में ही जन्म लेती है और अपने कर्म का फल मनुष्य योनि में ही भोगती है।** हम सभी जानते है कि मनुष्य प्रकृति (सात्विक, राजसिक या तामसिक) गुणों के अधीन होकर कर्म करता है।

मनुष्यात्मा मनुष्य योनि में ही जन्म क्यों लेतीहै किसी अन्य योनि में नहीं जाती यह निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट हो जाता है।

1. अगर हम यह स्वीकार कर लें कि मनुष्य अपने कर्म का फल भोगने लिए अनेक पशु-पक्षियों की योनिओं में से गुज़र कर, सारे हिसाब चुका कर,

अंत में जाकर मानव देह को प्राप्त करता है तो फिर (a) यह दुर्लभ मानव जन्म तो हर प्रकार से पूर्ण होना चाहिए फिर जन्म से ही जो अपाहिज होते हैं या किसीमें शारीरिक अंगों की कमी होती है तो जन्मते ही उसने कौनसा कर्मकर लिया जिसका उसे यह फल मिला। **जब मनुष्य योनि में भी कम इन्द्रियों वाले व्यक्ति उपलब्ध हैं तो फिर दण्ड के लिए कम कर्मेन्द्रियों वाली निकृष्ट योनि अथवा पशु योनि में जाने की बात सही कैसे मानी जाये ?** (b) आजकल तो बच्चा अभी पैदा भी नहीं होता है और डॉक्टर कभी-कभी गर्भ में ही बच्चे पर ऑप्रेशन (operation) कर देते हैं। अब जन्म से पहले इसे कौनसे कर्म का फल कहेंगे। अगर पूर्व जन्मों का फल कहें तो सब फल तो वह पहले ही भोग कर आया है तभी तो मानव देह प्राप्त हुई है। (c) फिर तो हर बच्चा स्वस्थ, सम्पूर्ण और सम्पन्न घर में (golden spoon in mouth) पैदा होना चाहिए, फिर एक बच्चा अमीर घर में पैदा होता है और उसी समय पैदा होने वाले दूसरे बच्चे को दूध भी नसीब नहीं होता है,इसे कौनसे कर्म का फल कहा जाएगा? या एक बच्चा बुद्धिमान होता और उसी समय पर पैदा होने वाला दूसरा बच्चा मानसिक तौर पर अस्वस्थ क्यों पैदा होता है? दोनों बच्चों से कौन से कर्म का फल है और ऐसा जीवन कौन तय करता और उसका आधार क्या है? ऐसे अनेक सवाल हमारे मन में समय प्रति समय उठते हैं।

2. दूसरा हम यह क्यों समझें कि पशु-पक्षी की योनि भोगना भोगने की योनि है। क्या मनुष्य योनि भोगना की योनि नहीं है? (a) आज मनुष्यों को अनेक प्रकार की चिंता अन्दर ही अन्दर खाये जाती है। जबकि पशु-पक्षियों को ऐसी कोई चिंता नहीं है। पक्षियों को देखो कितना मस्त होकर गगन में उड़ते हुए जीवन का आनंद ले रहे हैं और मनुष्यों के पास सारी सुख-सुविधाओं के साधन होने के बाद भी वह अपने जीवन में आनंद का अनुभव नहीं कर पाते। (b) दूसरा पशु-पक्षिओं को तो सिर्फ शारीरिक भोगना भोगनी पड़ती है या कभी थोड़ी मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हैं और मनुष्यों की **शारीरिक भोगना** कभी बीमारी के रूप में, कभी अनेक प्रकार के टेन्शन और डिप्रैशन की मानसिक भोगना, कभी अनेक प्रकार से ताने सहने, गालियां खाने या अत्याचार सहने की भावनात्मक भोगना, सामाजिक शोषण, प्राकृतिक प्रकोपों में अपना सब कुछ गंवा देने की प्राकृतिक भोगना आदि.... कितने प्रकार से व्यक्ति अपने जीवन में दुख-दर्द और पीड़ा का अनुभव करते हुए भोगना भोगता है। जब सारी पीड़ायें एक साथ आक्रमण करती हैं तो मनुष्य हताश होकर आत्महत्या करने के लिए भी तैयार हो जाता है। कभी

हमने यह नहीं सुना कि किसी पशु-पक्षी ने आपघात किया हो। **मनुष्यात्माओं के लिए अधिक बुद्धिमान तथा संवेदनशील होने के कारण मनुष्य योनि में ही दु:ख भोगने की सम्भावना अधिक है तो फिर दुख भोगने के लिए योनि परिवर्तन की बात सही कैसे मानी जाये ?** (C) कई बार कई लोग यह भी सोचते कि क्या जानवर को कभी मनुष्य योनि में आने की इच्छा नहीं होती होगी? वास्तव में हर आत्मा अपनी-अपनी योनि में बहुत खुश है। आज किसी बहुत पीड़ित व्यक्ति को भी पूछा जाए कि इतनी तकलीफ भोगने के बजाए आप कोई कीड़ा-मकोड़ा बनना चाहोगे? तो क्या वह व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर लेगा? इसी प्रकार जब अनाज में कीड़े पड़ जाते हैं और उस अनाज को जब धूप में रखते हैं तब वह कीड़े भी अपनी जान बचाने भागते है क्योंकि उन्हें भी अपनी योनि प्रिय है। कहने का भाव हर आत्मा अपनी योनि में बहुत खुश है।

3. कई बार लोग यह भी कहते है कि मनुष्य जैसा कर्म करते वैसा फल भोगने लिए उसको वैसी योनि धारण कर फल भोगना पड़ता है। जैसे कोई चोरी करता है तो कहते है कि (a) उस आत्मा को चोरी का फल भोगने लिए बिल्ली बनना पड़ेगा। अब बिल्ली तो चोरी से ही दूध पीती है तो उस आत्मा में सुधार तो हुआ नहीं और ही चोरी के संस्कार पक्के हो जायेंगे। (b) मान लो उस आत्मा को कुदरत दण्ड देने लिए शेर बना दे तो पहले चोरी के संस्कार तो थे ही अब हिंसक योनि प्राप्त करने से हिंसा के संस्कार भी दृढ़ बनेंगे। (c) अब मान लो कि वह पक्षी योनि में कबूतर बनता है परन्तु चोर तो चालाक होता है और सिपाही को देखने पर भाग खड़ा होता है और सामना होने पर लड़कर भी छुड़ाने की कोशिश करता है परन्तु कबूतर बड़ा भोला होता है वह तो बिल्ली के आने पर डर के मारे आँखे बन्द कर लेता है तब भला उस चोर के शरीर छोड़ते ही इतना भोलापन कहां से आया? फिर कर्म का फल कैसे प्राप्त हुआ। कर्म का फल तो उसे कहेंगे जहां आत्मा को महसूसता हो कि उसका कर्म ग़लत था और वह यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले कि आगे से ग़लत कर्म नहीं करेगा। माउण्ट आबू में न्यायविदों के

एक सम्मेलन्न में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश ने समाज में गुनाह क्यों बढ़ रहे है, विषय पर वक्तव्य देते हुए मिसाल दी कि मान लो हमारे सामने कोई चोर या क़त्ल का केस आता है और उसकी सुनवाई होती है, सारी बातें सुनने के बाद किन हालात में व्यक्ति ने खून किया या चोरी की, इसे ध्यान में रखकर उसका फैसला सुनाते हैं, एक चोर को तीन मास या छह मास की जेल और एक खूनी को उम्र कैद या फांसी की सज़ा सुनाते है क्योंकि कानून यही मानता है कि अपराधी के सुधार के लिए उसे जेल में बंद कर दो तो उसकी अपराध-वृत्ति का प्रयोग न होने से उसमें सुधार आ जायेगा। और मुजरिम को उसी स्थान पर भेजा जाता जहां अन्य चोर अथवा खूनी होते हैं। लेकिन वह अपराधी जब अन्य अपराधियों के संग में आता है तो क्या उसका सुधार हो सकता है? वहां जाने के बाद, जैसे ही वे एक दूसरे से परिचित होते हैं और बात-चीत करते एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव प्रकट करते हैं। जब वह एक दूसरे से पूछते हैं क्या हुआ था और कैसे पकड़े गए, फिर कई बार उनके अंदर बदला लेने की भावना को तीव्र कर देते हैं और उनको ऐसी युक्ति बताते हैं कि अब उसे क्या करना चाहिए या कभी-कभी अंदर में ही वे एक दूसरे के पक्के दोस्त बन जाते हैं और सोचते हैं कि जब बाहर निकलेंगे तो मिलकर काम करेंगे। अब जब उनको अपनी ग़लती का कोई एहसास ही नहीं है तो परिवर्तन तो हो ही नहीं सकता इसलिए समाज में से गुनाह कम होते ही नहीं परन्तु बढ़ते ही जाते हैं इसीलिए तो अपराधी के मित्र-सम्बन्धी शुरु में बहुत कोशिश करते है कि किसी प्रकार उसे जेल की सज़ा न मिले ताकि वह पक्का अपराधी न बन जाए।

मनुष्य का सुधार अच्छा आध्यात्मिक वातावरण और आध्यात्मिक ज्ञान या शिक्षा से होता है। क्या कुदरत का न्याय करने का तरीका भी ऐसा ही है कि जिसने हिंसा की तो उसको हिंसक योनि में भेज दो फिर तो वहां उसके संस्कार परिवर्तन होंगे या वह कार्य बार-बार करने से संस्कार वृद्धि को प्राप्त होंगे? इसलिए मनुष्य योनि में ही रहकर उसको ऐसा कर्म फल प्राप्त होता है और क्योंकि उसके पास बुद्धि है तो वह गहन महसूसता कर सकता और उसमें से सबक ले सकता है कि दुबारा ऐसा कर्म न करे।

मनुष्य का सुधार तो अच्छे वातावरण और अच्छी शिक्षा से होता है न कि दण्ड से, तो फिर सुधार के लिए कुदरत की ओर से दण्ड के रूप में योनि परिवर्तन के नियम की बात सही कैसे मानी जाए?

4. सच तो यह है कि मनुष्य, अपनी योनि में रहकर ही अपने कर्मों की सज़ा भोगता है

जिसमें कई बार उसका जीवन तो जानवर से भी बदतर हो जाता है। जिस कचरे के ड़िब्बें में एक जानवर अपना भोजन तलाशता है उसी में एक मनुष्य भी अपने लिए कुछ खाने को ढूंढता है। दोनों के जीवन में कोई अन्तर नहीं। ईश्वर ने मनुष्य को श्रेष्ठ बुद्धि दी है ताकि इस जन्म में अच्छे कर्म करे जिससे आगे के जीवन को संवार सके।

एक दृष्टांत है कि:

''एक बार एक सेठजी जो स्वभाव से बहुत कंजूस व्यक्ति थे, कभी किसी को दान नहीं करते थे, उनके दरवाज़े पर कोई भी आता तो न उनको खाना खिलाते और न ही किसी प्रकार का दान देते। परिवार के सदस्यों को भी यही आदेश था कि कभी भी किसी को कोई दान नहीं करना। जब उनके बेटे की शादी हुई और बहु घर में आयी और आते ही उन्हें भी ससुरजी का आदेश बताया गया। परन्तु बहु के मायके के संस्कार अलग थे। उसके पिताजी बहुत दानी व्यक्ति थे। उसने अपने बच्चों को दान करने के संस्कार ही दिये थे। अब बहु देखती थी कि बंगले के द्वार पर कोई भी आता था उन्हें गाली देकर भगाया जाता था। एक दिन एक भिखारी आया वह आवाज देकर कहने लगा –'तीन जन्म का भूखा हूँ, कोई रोटी का टुकड़ा दे दो,' बहू ने ऊपर से ही आवाज़ लगाते हुए कहा कि 'बासी टुकड़े खाते हैं, कल उपवास करेंगे।' सेठजी के कानों में जब ये शब्द गये तो उन्हें बहुत गुस्सा आ गया। वे सोचने लगे कि कमाल है, इस बहू को मैं हर चीज़ बढ़िया से बढ़िया लाकर देता हूँ, अनेक प्रकार के व्यंजनों से इसको भरपूर रखता हूँ, ये फिर भी कहती है कि बासी टुकड़े खाते है और कल उपवास करेंगे। आखिर मैंने क्या कमी रखी है इसको। यह बहु तो मेरी इज्जत ही मिट्टी में मिला देगी। सोचते- सोचते उनके क्रोध का ज्वर बढ़ता गया और उन्होंने तय कर लिया कि अब तो इसे वापस इसके मायके में भेजना ही पड़ेगा। सेठ जी बड़े तेज़ कदमों से अपने घर के आंगन से बाहर निकले और उन्होंने पंचायत बिठाई। वधू के पिता को भी बुलवाया गया और सेठजी ने सारी कहानी उन्हें सुनाते

हुए कहा कि 'ले जाइए अपनी बेटी को अपने साथ। इसने तो हमें कहीं का नहीं छोड़ा।' पंचायत के मुखिया ने सेठजी को कहा कि आपकी बहु बहुत समझदार हैं, आप उसे बुलाकर पूछिए तो सही कि उसने ऐसा क्यों कहा ? अवश्य ही उसका कोई अर्थ होगा।' सेठजी को भी उनकी बात जँच गई। उन्होंने अपनी बहु को बुलावा भेजा। बहु बड़े आदर भाव से आकर वहां बैठ गई। उससे सेठजी ने पूछा कि 'बहु, तुम यह तो बताओ कि भिखारी के यह कहने पर तीन जन्म का भूखा हूँ, कोई रोटी का टुकड़ा दे दो, तुमने यह क्यों कहा कि बासी टुकड़े खाते हैं, कल उपवास करेंगे ? क्या तुम बासी टुकड़ों पर गुज़ारा कर रही हो ? इतनी समझदार होते हुए भी तुमने ऐसा क्यों कहा ?' बहु ने कहा, 'ससुरजी, मैं कुछ गलत कहूँ तो क्षमा कर दीजिएगा। बात यह है कि भिखारी का यह कहना कि तीन जन्म का भूखा हूँ... इसका अर्थ यह कि पिछले जन्म में वह गरीब था तो वह कुछ दान नहीं कर सका और इसलिए इस जन्म में भिखारी है। इस जन्म में वह गरीब है तो अभी भी वह दान नहीं कर सकता और इसलिए अगले जन्म में भी वह गरीब और भूखा ही रहेगा और इसलिए वह कहता है कि तीन जन्म का भूखा हूँ। और इस पर मैंने जो उसे जवाब दिया, उसका भाव यह है कि हमने पिछले जन्म में जो दानपुण्य किया था, उसकी प्रालब्ध रूप में हमें यह सब धन-धान्य मिला। यह हमारे पिछले जन्मों मे किए गये कर्म का फल है तभी मैंने कहा कि बासी टुकड़े खाते हैं, परन्तु ससुरजी, इस जन्म में हमारे इस घर में तो दान करने की प्रथा ही नहीं है तो अगले जन्म में जरूर भूखा ही रहना पड़ेगा अर्थात् उपवास ही रखना पड़ेगा।' मेरा कहने का भावार्थ यही था। सेठजी बहु की यह बात सुनकर कुछ लज्जित भी हुए और मन ही मन उन्होंने दृढ़ संकल्प भी किया कि आज से लेकर वे सुपात्र को अवश्य ही दान करेंगे। भावार्थ मनुष्य जैसा कर्म करेगा वैसा फल उसको यहां ही भोगना पड़ेगा, कहीं उसका जन्म जानवर से भी बदतर न हो जाए।''

5. इस युग में मनुष्य जितने पाप कर्म कर रहे है उतने पुण्य कर्म नहीं कर रहे हैं अर्थात् अपने कर्म का दण्ड भोगने लिए मनुष्य यदि पशु-पक्षी योनि में जन्म ले लेवे फिर यहां मनुष्य की इतनी जनसंख्या कैसे बढ़ रही है? फिर तो पशु-पक्षी योनियों की संख्या बढ़ जानी चाहिए लेकिन देखने में आ रहा है कि आज से 20 साल पहले इतने कुत्ते गलियों में नहीं थे जितने कि आज हैं, मानो उनकी संख्या भी बढ़ रही है और जन संख्या भी बढ़ रही है। फिर यह सब आत्मायें कहां से आयीं? कहने का भाव है कि मनुष्य अपने कर्मों की सज़ा मनुष्य योनि में ही रह कर भोगते हैं।

6. दुनिया में यह कहा जाता है कि जैसा बीज, वैसा फल। आज आम का बीज डालने

पर उसमें से कभी पपीता या चीकू नहीं मिलेगा। कलम करने से टेस्ट आ सकता है लेकिन वही फल नहीं मिल सकता। जबकि धरनी, खाद, पानी, सूर्य की धूप, सबकुछ वही है। फिर भी एक बीज से दूसरा फल क्यों नहीं मिलता? क्योंकि हर बीज की अपनी-अपनी अलग विशेषता और क्षमता है। जो आम के बीज की विशेषता है, वह चीकू के बीज की विशेषता नहीं है। आजु-बाजू में लगाने से भी एक बीज से दूसरा फल नहीं मिल सकता। उसी प्रकार **हर आत्मा भी एक चैतन्य बीज है** और हर बीज की विशेषता अपनी-अपनी है। अगर परमात्मा ने मनुष्यात्मा रूपी बीज को मनुष्य योनि में रोपितकर दिया तो इसमें से कोई पशु या पक्षी कैसे बनेगा? विचार करने की बात है कि अगर स्थूल बीज में से भी अलग फल नहीं निकलता है फिर यह तो चैतन्य बीज है। यह चैतन्य बीज एक बार जिस योनि में डाला गया हो फिर उससे दूसरी योनि में वह कैसे जा सकता है क्योंकि हर बीज की विशेषता अपनी-अपनी है। जिन पाँच तत्वों की प्रकृति से मानव शरीर तैयार होता है और उन्हीं तत्वों से पशु-पक्षियों का शरीर भी तैयार होता है। लेकिन जिस बीज की जो विशेषता होती है उसी अनुसार वह योनिओं में जाते हैं। जो पशु आत्मा की विशेषता है वह मनुष्य की नहीं, और जो मनुष्य आत्मा की विशेषता है वह पशुओं की नहीं है। जैसे मनुष्यात्मा की विशेषता है कि मनुष्य के पास बुद्धि है उससे वह दस साल आगे तक की सोच सकता है। जानवर यह प्लैनिंग नहीं करता कि शाम को क्या खायेगा, अगले दिन क्या खाएगा। जानवरों की जो विशेषता है वह मनुष्य की नहीं है। पशु-पक्षियों को प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप-सुनामी आदि, का पहले पता चल जाता है। मनुष्य के पास सारे साधन होने पर भी उसे पता नहीं चलता। इसी प्रकार ऐसी अनेक विशेषतायें मनुष्य आत्मा में हैं जो पशुओं में नहीं हैं और जो पशुओं के पास हैं वह मनुष्यों के पास नहीं हैं।

7. कई लोग कहते है कि फिर डार्विन के विकास का सिद्धांत सही है या गलत। वैसे आधुनिक विज्ञान ने स्वीकार किया है कि विकास का सिद्धांत कोई स्थापित सिद्धांत नहीं है बल्कि वह एक अस्थायी प्राक्कल्पना (hypothesis) थी। यानि उसे एक समय की अप्रामाणिक मान्यता के रूप में दर्शाया है और इसलिए अब विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम से भी उसे निकाल दिया गया है।

इसी पर एक बार कार्टून बना जिसमें तीन बन्दर आपस में बात कर रहे हैं।
पहला बन्दर बोला: 'सुना है कि मनुष्य कहते हैं कि वह हमारे वंशज हैं।'
दूसरा बन्दर बोला: 'क्या कहा? मनुष्य का प्रमोशन हो गया क्या?' तीसरा बन्दर कहता है: 'मैं तो कभी मनुष्यों को अपने वंशज के रूप में स्वीकार न करूँ। वे तो एक दूसरे के खून के प्यासे हैं।'

समाचार-पत्रों में कभी-कभी पुनर्जन्म की घटनाओं के बारे में छपता है कि कोई बच्चे को अपने पूर्व जन्म की स्मृति जागृत हो गई जिसमें वह मानव ही था। किसी ने आज तक यह नहीं बताया कि वह कोई मनुष्य की मनोवृत्ति पर यह बहुत बड़ा कटाक्ष था, मनुष्य चारित्रिक रुप से इतना गिर चुका है कि आज बंदर भी हमें अपने वंशज के रूप में स्वीकार करना नहीं चाहते। बन्दर कहते हैं हम आपस में एक दूसरेसे लड़ते है लेकिन एक-दूसरे के खून के प्यासे नहीं हैं। यहाँ तो बाप-बेटे का खून करने में देर नहीं करते या बेटा बाप का खून करने में देर नहीं करता। वह बंदर कहने लगे यह हमारे संस्कार नहीं हैं। और अगर मनुष्य ऐसा कहते हैं तो या उनका प्रमोशन हो गया है या वह सुधर गया है। पशु या पक्षी के रूप में था। ऐसी एक घटना इस प्रकार है:-

''एक चार साल का बच्चा था जिसका नाम दीपक था, वह ढाई साल की उम्र से अपने माता-पिता से कहता रहता था कि उसे अपने घर जाना है। माता-पिता उसे बार-बार समझाने का प्रयत्न करते कि बेटा यही अपना घर है लेकिन वह बच्चा हमेशा यही कहता था कि उसे अपने घर जाना है। मात-पिता समझ ही नहीं पाते थे कि वह किस घर की बात कर रहा है। एक दिन वे उन्हें कहीं घूमने ले गये जब वापस आ रहे थे कि बच्चे ने अपने पिता से कहा कि अब यहां से बांई ओर मोड़ो तो पिता ने कहा कि उनका घर दाईं ओर है। तब बच्चे ने कहा कि नहीं मेरा घर इस तरफ आता है। पिता को लगा देखें यह किस मकान को अपना घर कहता है। जैसे-जैसे दीपक ने बताया वैसे-वैसे चलते गये और एक बहुत बड़ी कोठी के सामने उसने गाडी रुकवाई। दीपक सहजता से गाड़ी से उतरा और उसने वहां

गेटमैन से पूछा 'मैडम अंदर हैं' तो गेटमैन ने कहा 'जी हैं।' उसने कहा 'दरवाज़ा खोलो' और गेटमैन रोकने के बजाय गेट खोल दिया और उस बच्चे को लेकर दरवाज़े के पास आकर बैल बजायी। अन्दर से एक बहन ने आकर दरवाज़ा खोला और आश्चर्य से देखने लगी कौन है। उसको देखकर दीपक ने कहा, 'अरे शारदा, मुझे पहचाना नहीं' और वह अंदर चला गया। उसके माता-पिता संकोच करते हुए शारदा बहन से कहने लगे कि 'यह हमारा बच्चा है और वह हमे यहां लेकर आया है।' शारदाजी ने उन्हें अंदर आने लिए कहा और वह देखकर हैरान हो जाती है कि वह बच्चा उसके पति की कुर्सी पर उसी अदब से बैठा था। शारदाजी को समझने में देर नहीं लगी, उसके बाद उस बच्चे ने पूछा कि 'बच्चे कहां हैं' तो शारदा ने कहा 'वे दुकान पर गये हैं।' दीपक ने कहा 'कोई बात नहीं,' उसके बाद उसने पूछा कि 'हरी कहां है ?' हरी उनके बहुत पुराने नौकर का नाम था। तो शारदा ने कहा कि 'सेठ के मरने के दो दिन बाद ही किसी ने उसे मार दिया था।' तब दीपक ने पूछा 'अच्छा और कोई नौकर घर में है।' शारदा ने दूसरे एक नौकर को बुला दिया तो जैसे दीपक को सारे घर का मालूम हो, ऐसे उस नौकर के साथ घर के पीछे आंगन में गया और पीछे एक पेड़ के पास जाकर उस नौकर को कहा 'यहां खुदाई करो।' थोड़ा ही गहरा गड्डा करने पर उसमें से एक पेटी निकली और उसे बाहर निकाल कर उसने वह पेटी शारदा को दी और कहने लगा कि 'हमारे घर पर जब रेड पड़ी थी तो उसे थोड़ा समय पहले मालूम पड़ गया था और उस वक्त उसने हरी नौकर के साथ मिलकर जो महत्वपूर्ण कागज थे और जो हाथ लगा उसे इस पेटी में डालकर उस पेड़ के पास गाड़ दिया था' और जब रेड पड़ी तो फिर भी वहाँ अफसरों के हाथ कुछ ऐसे कागज आ गये जो उन्होंने कई चीजें सील कर दीं। इससे उन्हें हार्टअटैक आया और अंत में वह बताना चाहता था परन्तु किसी को बता नहीं सका और अस्पताल के आई.सी.यू में ही शरीर छोड़ दिया। अब यही कह सकते है कि अंत मते सो गते, तो अंत समय उसकी मती में वह पेड़ के नीचे गड़ी हुई चीज़ें ऐसे ही रह जायेंगी और किसी को कुछ नहीं मिलेगा, वह स्मृति होने कारण जब से उसने बोलना आरम्भ किया तब से वह अपने मात-पिता से यही कहता था कि मुझे अपने घर जाना है और सारा धन सम्पत्ति शारदा के हवाले करने पर वह सब कुछ भूल गया और अपने मात-पिता से कहने लगा 'अब चलो अपने घर।' शारदा ने अपने बच्चों को फोन करके बुलाया भी परन्तु दीपक को और कोई बात याद ही नहीं थी और वह अपने मात-पिता के साथ अपने घर चला गया।''

कहने का भाव कि मनुष्यों को जब भी अपना पूर्व जन्म याद आता है तो वह मनुष्य रूप का ही बताते है और जैसी अंत में मती होती है वैसी ही गति होती है इसलिए तो मनुष्यों

को अंतिम समय यह पूछा जाता है कि कोई अंतिम इच्छा हो तो बताओ और उसको अपनी मती में रखकर मरना नहीं। इसी प्रकार एक पशु ने भी अपना पूर्व जन्म पशु के रूप में स्पष्ट किया।

''अमेरिका में मिस्टर एडवर्ड नामक एक सज्जन और उनकी पत्नी अपनी कार से कैलिफोर्निया की ओर जा रहे थे। जब वे एक उपनगर से गुज़र रहे थे तो उनकी कुतिया डॉक्सी उत्तेजित हो गई। उसकी उत्तेजना असाधारण थी। कार 70 किलोमीटर प्रति घंटा की रफतार से आगे बढ़ रही थी और उनकी कुतिया डॉक्सी कार की खिड़की से बाहर कूद पड़ी। सौभाग्य वश उसे चोट नहीं लगी। जैसे ही वह गिरी वैसे ही उठ खड़ी हुई और फिर उस फार्म की ओर भागी जिसे कार ने पीछे छोड़ दिया था। एडवर्ड ने तुरन्त अपनी कार रोक दी और उसके बाद पति-पत्नी उस कुतिया का पीछा करने लगे। आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि डॉक्सी फार्म में प्रवेश करने के लिये उसकी काँटेदार बाड़ को पार करने की और उस झोपड़ी की ओर बढ़ने की कोशिश कर रही थी जो कि फार्म की एक ओर बनी हुई थी। एक बूढ़ी स्त्री इस झोपड़ी से बाहर निकली और जैसे ही डॉक्सी ने उस बूढ़ी स्त्री को देखा वैसे ही वह एनी की गोद से नीचे कूद पड़ी और बाड़ को पार करते हुए उस बूढ़ी स्त्री को प्रेम से चूमने और चाटने लगी। डॉक्सी कुतिया वैसे ही कर रही थी जैसे कि पालतू पशु तब करते हैं जब वे अपने उस मालिक को देखते हैं जिससे वे बिछुड़ गये थे। इस मिलन पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के बाद डॉक्सी उस झोपड़ी में घुसी और फिर वहां से निकलकर वह फार्म की ओर भागी। उसके बाद सभी घटनाओं से सर्वाधिक विलक्षण घटना आरम्भ हुई। फार्म में एक मचान था और उस पर चढ़ने के लिए एक सीढ़ी लगी हुई थी। पलक मारते ही कुतिया उस सीढ़ी पर चढ़ने लगी मानो कि वह पहले भी ऐसा करती रही हो। जिन लोगों के पास कोई पालतू कुत्ता या कुतिया हो वे लोग यह जानते हैं कि साधारणत: एक कुत्ते के लिये यह काम कितना कठिन है। जब डॉक्सी मचान पर पहुँच गई तो वह वहाँ इधर-उधर घूमने लगी मानों कि वह कोई वस्तु खोज रही हो। एडवर्ड डॉक्सी के पीछे-पीछे मचान पर चढ़ गये थे और अब उन्होंने डॉक्सी को उठा लिया और उसे नीचे लेकर आ गये। कुछ समय के बाद सब लोग बैठे हुए थे और चाय पी रहे थे तब बूढ़ी स्त्री श्रीमति वुडफोर्ड ने कहानी सुनाई:- छह वर्ष पहले उनके पास क्वीनी नामक एक कुतिया थी। उसने कड़ी ठंड के मौसम में दिसंबर 1948 में मचान पर पिल्लों को जन्म दिया इसलिए उनके पुत्र रॉबर्ट ने क्वीनी को सीढ़ी पर चढ़ना सिखाया था। क्वीनी ने संभवत: मचान को सुरक्षित समझते हुए अपने पिल्लों को वहाँ जन्म दिया था। क्वीनी की प्रसूति के दो दिन

बाद रॉबर्ट अपने कॉलेज लौट गया और श्रीमति वुडफोर्ड को अचानक यह जानकारी मिली कि उनके पति को एक गंभीर दुर्घटना के बाद एक चिकित्सालय में दाखिल किया गया है इसलिए श्रीमति वुडफार्ड तुरन्त चिकित्सालय की ओर चल पड़ी। इस जल्दबाज़ी में और घबराहट में उनका ध्यान इस बात की ओर नहीं गया कि क्वीनी रसोई घर में अपना खाना खा रही थी। श्रीमति वुडफोर्ड दो दिन के पहले घर नहीं लौट सकी। अपने बच्चों को देखने के लिये क्वीनी का मन कितना व्याकुल हुआ होगा ? इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। वापस लौटने पर जैसे ही श्रीमति वुडफोर्ड ने दरवाज़ा खोला वैसे ही क्वीनी फार्म से बाहर भागी और सीढ़ी से चढ़ते हुए सीढ़ी के ऊपरी सिरे पर जा पहुँची जहां वह सीढ़ी मचान से जुड़ी हुई थी। यह स्थान बर्फ की एक पतली परत से ढका हुआ था। जैसे ही क्वीनी ने अपना अगला पैर उस पर रखा वैसे ही वह फिसल कर एक कुल्हाड़ी पर जा गिरी और तुरन्त मर गई। संक्षेप में यह डॉक्सी का जीवन वृतान्त है।''

इन सभी बातों पर विचार करने पर हम यह कह सकते हैं कि हो-न-हो क्वीनी ने डॉक्सी के रूप में पुनर्जन्म लिया था, क्योंकि अब उसकी आयु छह वर्षों की थी। यदि ऐसा न होता तो डॉक्सी तेज भागती हुई कार से बाहर क्यों कूदती? फार्म की ओर क्यों दौड़ती? कंटीली बाड़ को क्यों पार करती?और श्रीमति वुडफोर्ड के पास पहुँचकर प्रेम पूर्वक उन्हें क्यों चाटती और उसके बाद सीढ़ी पर चढ़ते हुए मचान की ओर ऐसे-कैसे जाती? माना कि वह अपने नित्य कार्य का पूर्वाभ्यास कर रही थी या पुनरावृत्ति कर रही थी?

एक समय था जब विज्ञान या वैज्ञानिक पुनर्जन्म को नहीं मानते थे लेकिन आज की इस दुनिया के अन्दर अब तो विज्ञान और कई वैज्ञानिक भी इस बात की पुष्टि करने लगे हैं कि मनुष्य का पुनर्जन्म मनुष्य योनि में ही होता है। दुनिया में पुनर्जन्म सम्बन्धी अनुसंधान होने लगे हैं। कई वैज्ञानिक सम्मोहन के आधार पर पुनर्जन्म पर रिसर्च करतें हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि सम्मोहन की अवस्था में प्रतीप-गमन करवाये गये हज़ारों व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति ने भी यह नहीं कहा कि अपने पूर्व जन्म में वह कोई पशु या पक्षी था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन व्यक्तियों ने मानव रूप में पुनर्जन्म के ब्यौरे दिये हैं।

कई लोगों के जीवन में कई प्रकार के भय (phobias) होते हैं जैसे किसी को पानी का डर होता या ऊँचाई, अंधेरा या किसी हथियार आदि से डर होता या कोई मानसिक परेशानी का अनुभव करते हैं। डॉक्टर सम्मोहन के आधार पर उस व्यक्ति को पूर्वजन्म में ले जाकर उसकी चेतना के अंदर की सतह (sub-consciousness) से उस डर का कारण ढूँढते हैं और उसको उस डर से मुक्त करने का प्रयास करते हैं। कर्मों के साथ हमारे पिछले जन्मों का बहुत गहरा सम्बन्ध है। शास्त्रों में कहा है कि लख चौरासी योनियों से मनुष्य को गुज़रना पड़ता है। अब लख के तीन अर्थ हैं:-

लख का पहला अर्थ है 'लाख', (संख्यावाचक)
लख का दूसरा अर्थ है 'देखना', और
लख का तीसरा अर्थ है 'लक्ष्य'।

शास्त्रों वादियों ने 'लख' का अर्थ चौरासी लाख कर दिया और कह दिया कि चौरासी लाख योनियों से आत्मा को गुज़रना पड़ता है और जैसे कर्म करेंगे वैसी ही योनि प्राप्त होगी। ताकि **मनुष्य इस डर से कोई गलत कर्म ही न करे** और चौरासी लाख जन्मों का कोई हिसाब देने की ज़रुरत नहीं। वास्तव में ईश्वरीय आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि 'लख' का अर्थ है देखना अर्थात् अपने चौरासी जन्मों को देखो भावार्थ **अपने चौरासी जन्म की कहानी को लक्ष्य देकर यानि ध्यान देकर समझो और कर्म करो।** हो सकता है कि संसार में चौरासी लाख योनियाँ हो लेकिन उन योनियों से मानव आत्मा को गुज़रना नहीं पड़ता। इन बातों को तो हमने बहुत अच्छी तरह समझ लिया है। अब अगर मनुष्य मनुष्य योनि में ही जन्म लेता है तो कितने जन्म लेता है?

काल चक्र के अन्तर्गत हमने समझा था कि सारा चक्र ही पाँच हज़ार साल का है, तो पाँच हज़ार साल के अन्दर अगर चौरासी लाख जन्म लेने हों तो हर जन्म की आयु कितनी होगी? इसका कोई हिसाब सही नहीं बैठता इसलिए शास्त्रवादियों ने कह दिया कि एक-एक युग लाखों साल का है और ऐसे यह कालचक्र भी अरबों साल का दिखाकर कह दिया कि उसमें चौरासी लाख जन्म लेने होंगे। मनुष्यात्मा सारी योनियों में घूम-घूम कर

फिर मानव देह प्राप्त करेगी। ताकि किसी को इसका कोई हिसाब नहीं देना पड़ेगा। सिर्फ चौरासी जन्म कहने से तो उसका हिसाब सभी पूछेंगे जिसका उनके पास कोई जवाब नहीं। अब ईश्वरीय सत्ता इस गुह्य ज्ञान को स्पष्ट करती है कि मनुष्यात्मा चौरासी जन्म कैसे लेती हैं। तर्क की कसौटी पर यह सत्य सिद्ध हो जाता हैं।

पाँच हज़ार साल के काल चक्र में मनुष्यात्मा के चौरासी जन्म

वर्तमान समय में मनुष्य की औसत आयु लगभग 50-60 वर्ष की है। हमारे पूर्वजों की औसत आयु 70-80 साल की थी। उनके भी पूर्वजों का 90-100 साल औसत आयु थी। उससे पूर्व त्रेतायुग के देवताओं की आयु लगभग 125 बर्ष की होती थी और सतयुग के देवताओं की आयु 150 वर्ष के आस-पास होती थी। अब अगर यह सावल किया जाए कि पहले के लोगों की आयु इतनी अधिक और आज के लोगों की इतनी कम क्यों? जब कि मेडिकल साईंस ने इतनी तकनीकी तरक्की है फिर भी कम आयु क्यों? तब यही महसूस होता है कि मनुष्य की आयु का सम्बन्ध मेडिकल साईंस या तकनीकी तरक्की से नहीं लेकिन उसकी मानसिकता से है। पहले के समय में मनुष्यों की आत्म-शक्ति या मनोबल बहुत अधिक था। आज के मनुष्यों का जीवन बहुत नाजुक हो गया है और उसमें आत्म-विश्वास की कमी हो गयी है। उसे जब भी कुछ होता है तो वे दर्द में कराहते उनके मुख से यही बोल निकलने लगते हैं कि इससे तो मर जाते तो ठीक था, मानो उनमें सहन शक्ति ही नहीं है। उसकी जीने की उम्मीद या

हिम्मत टूट जाती है और दिल का दौरा पड़ जाता है इसलिए कभी भी अकाले मृत्यु हो जाती है। पहले के ज़माने के लोग दर्द में अपनी सहन शक्ति को इतना बढ़ा देते कि वे कर्मभोग के दर्द को हराकर पुनः एकदम स्वस्थ होकर जीने लगते थे। इसी प्रकार देवी-देवताओं की आयु इतनी थी क्योंकि उस वक्त उनकी आत्म-शक्ति सम्पूर्ण थी। वे अपनी पूरी आयु भोग कर स्व-इच्छा से, सहजता से एक शरीर रूपी वस्त्र उतार दूसरा शरीर रूपी वस्त्र धारण करते थे।

मनुष्यों के कर्मों से भारत के उत्थान और पतन की कहानी

यह भारत श्रेष्ठाचारी से भ्रष्टाचारी कैसे बनता है, या पावन भारत पतित कैसे बन जाता है या पूज्य देवी-देवतायें पुजारी मनुष्य कैसे बन जाते हैं, इस बात को एक अदभुत सीढ़ी के माध्यम से दर्शाया है। सीढ़ियां तो आपने अनेक देखी होंगी लेकिन यहां हम आपका परिचय एक विचित्र सीढ़ी से करायेंगे जिसका सम्बन्ध मनुष्यों के कर्म से है।

सीढ़ी का पहला चरण - सतयुग

सीढ़ी की इस प्रथम पायदान को संसार का आदि काल कहा जाता है जहाँ से कल्प का आरम्भ होता है जहाँ प्रकृति एकदम **सतोप्रधान अवस्था** में है मानो परमधाम से पवित्र आत्माओं का आह्वान कर रही होती है। **ब्रह्मा के दिन** का प्रारम्भ होता है और पवित्र आत्मायें अपने अव्यक्त स्थिति से व्यक्त दिव्य स्वरूप को धारण करती हैं। इस तरह **दैवी संस्कृति** का प्रारम्भ होता है, जहाँ दिव्य आत्मायें सतोप्रधान प्रकृति के सुन्दर शरीर रूपी वस्त्र को धारण करती हैं और पावन दैवी मर्यादा युक्त जीवन जीती हैं। उनकी महिमा का गायन इस प्रकार है कि वे 16 **कला सम्पन्न, सम्पूर्ण निर्विकारी, सम्पूर्ण अहिंसक, दैवीगुण सम्पन्न थे...**। चूँकि वे देवी-देवतायें पावन थे और श्रेष्ठ कर्म करते थे इसलिए प्रकृति भी उनके वश में थी अर्थात् तब न कोई प्राकृतिक प्रकोप होते थे और न उन्हें तन का रोग था, न ही अन्न-धन की कमी होती थी और न ही कभी अकाले मृत्यु

होती थी। इसलिए देवताओं को **अमर** कहते है, ऐसे नहीं कि वहाँ कोई मरते ही नहीं थे परन्तु मृत्यु का भय नहीं होता था। वे पूरी आयु भोग कर जब उन्हें महसूस होता है कि अब बहुत साल इस चोले में हो गये अब नया वस्त्र धारण करना चाहिए तो वे अपने पूरे परिवार को बुलाते और प्यार से सबसे विदा लेते हैं और बड़ी धूमधाम से उस आत्मा को खुशी-खुशी विदाई देते हैं। कहने का भाव यह है कि वहाँ मृत्यु भी एक महोत्सव हो जाता है इसलिए उन्हें अमर कहा जाता है। इस प्रकार स्वाभाविक रीति से **श्रेष्ठ धर्म-निष्ठ, श्रेष्ठ कर्म-निष्ठ** सतोप्रधान तथा निर्विकारी होने के कारण 1250 वर्ष में उनकी आयुलगभग **150 साल** की और सिर्फ **8 जन्म** होते हैं। इस युग में **श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का राज्य** था। परन्तु ये नाम और स्वरूप तो तब मिलता है जब वे राजगद्दी पर विराजमान होते हैं लेकिन उनके बचपन के स्वरूप के विषय में भक्तिकाल में एक भजन गाते है जिसकी पंक्तियां है:-

'श्रीकृष्ण, गोविन्द, हरे मुरारी, हे नाथ नारायण नमः वसुदेव।'

इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण के पूरे जीवन के विभिन्न स्वरूप की महिमा की गई है। बचपन में जिसको **'श्रीकृष्ण'** कहा, थोडा बड़ा हुआ तो ग्वाला बना जिसको **'गोविन्द'** कहा,और जब रासलीला रचाई तो उनको **'हरे मुरारी'** कहा,और जब राजगद्दी पर राज करने बैठते है तो उन्हे **'नाथ नारायण'** कहा और वही **वसुदेव** है। भावार्थ श्रीकृष्ण ही नाथ नारायण है अगर श्री नारायण सतयुग में हो तो उसका बचपन का स्वरूप भी वही होना चाहिए।

श्रीकृष्ण या नारायण के सतयुग के 1250 वर्ष में 8 जन्म होते है इसलिए श्री कृष्ण का जन्मोत्सव, जन्म-अष्टमी के रूप में बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण जैसी परम पावन आत्मा के आठों जन्म इतने श्रेष्ठ थे कि उनके आठों जन्म की जयन्ती मनाकर हर भारतवासी गर्व महसूस करते है। इस तरह सतयुग में हर देवी-देवता के 8 जन्म होते हैं।

त्रेतायुग

त्रेतायुग में जैसे ही सूर्यवंशी आत्माओं का पदार्पण होता है तो 9 वां जन्म श्री राम का होता है इसलिए राम नवमी के रूप में उनका जन्मोत्सव भी बड़ी धूम-धाम से भारत में मनाया जाता है। सतयुग के देवी-देवता आठ पुनर्जन्म धारण कर सीढ़ी के आठ पायदान नीचे उतर जाते हैं तो उनकी पवित्रता की दो कला कम हो जाती है और 16 कला से **14 कलाधारी** बन जाते है।

जैसे पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा की कलायें कम होती हैं, वैसे देवी-देवताओं की पवित्रता और शक्तियों की कला थोड़ी कम होने कारण उनको **क्षत्रिय वर्ण** के देवता के रूप में पहचान प्राप्त होती है। फिर भी उन्हें **दिव्य गुण सम्पन्न, मर्यादा पुरुषोतम, अहिंसा परमोधर्म** वाले ही मानते है, ऐसे ही भारत का स्वप्न बापू गांधी ने भी देखा था कि सतयुग जितनी सम्पूर्णता न सही परन्तु भारत को **रामराज्य** जैसा तो बनाएँ। इस युग में सतयुग की 150 वर्ष की आयु से कम होकर **125 वर्ष** की हो जाती है। 1250 वर्ष के त्रेतायुग में उनके जन्मों की संख्या भी बढ़कर **12 जन्म** हो जाती है। सतयुग और त्रेतायुग में देवी-देवताओं के कर्म, **अकर्म** होते हैं। इस तरह सतयुग और त्रेतायुग ब्रह्मा का दिन समाप्त होने के बाद ब्रह्मा की रात्रि आरम्भ होती है।

द्वापरयुग

धीरे-धीरे सीढ़ी के 20 जन्मों की पायदान नीचे उतर कर काल चक्र का आधा समय 2500 वर्ष बीत जाता है। आधा समय बीतने के कारण आत्माओं में भी आधी कलाएं कम हो जाती है 16 कला से 14 कला और द्वापरयुग में सिर्फ **8 कलाधारी**

रह जाते है। 2500 वर्ष शरीर के सम्बन्ध में रहने से देह के साथ लगाव हो जाता है और **देह अभिमान** के वश कर्म करने लगते हैं। यही देह अभिमान वाला जीवन सभी विकारों का आह्वान करता है। इस तरह आत्मा अपनी दिव्यता को खोने लगती है। सतयुग, त्रेतायुग के देवी-देवता द्वापरयुग में **वैश्य वर्ण** में आ जाते हैं। और इसी युग के आदिकाल में राजा विक्रमादित्य सर्व प्रथम ज्योतिर्लिंगम् परमात्मा शिव का यादगार सोमनाथ मंदिर की स्थापना करकेपूजा करते हैं। इस प्रकार भारत में **अव्यभिचारी भक्ति** आरम्भ होती है। फिर धीरे-धीरे जो देवी-देवता होकर गये उनकी श्री लक्ष्मी - श्री नारायण, श्री राम - श्री सीता के रुप में पूजा होने लगती है। आत्मायें अपनी सतोप्रधान स्थिति से **रजोप्रधान** अवस्था में आ जाती हैं और सीढ़ी के बीस पुनर्जन्मों से गुजरने के कारण आत्माओं में शक्ति क्षीण हो जाने से **अकाले मृत्यु** होने लगती है। इस कारण से आयु और भी कम हो गयी और यहां आत्मा **21 जन्म** लेती है और आत्माओं का श्रेष्ठ कर्म का खाता क्षीण हो जाने से वह **पुण्य कर्म** करने लगती है।

कलियुग

ब्रह्मा की घोर अंधेरी रात प्रारम्भ होते ही सीढ़ी के 42 वें पायदान पर मनुष्यात्मायें तमोप्रधान होने कारण शुद्रवर्ण में आ जाती हैं। पांच विकारों रूपी माया का प्रभाव इस संसार के सभी प्राणियों पर पड़ जाता है। मानव आसुरी लक्षणों और आसुरी मर्यादाओं को जीवन में अपनाने से विकारी तथा भ्रष्टाचारी बन जाते हैं। आत्माओं में सिर्फ एक या दो कलायें रह जाती है। इसलिए तो कहा जाता है कि भले किसी व्यक्ति में कितने भी अवगुण हों लेकिन कोईएक गुण तो होगा न, कहने का भाव कि इस युग में एक या दो गुण ही आत्माओं में रह जाते हैं। इस युग में प्रकृति भी तमोप्रधान होने कारण मनुष्यों को रोग, शोक वृद्धावस्था और अकाले मृत्यु आदि से पीड़ित करने लगती है। मनुष्य परमात्मा से योग भ्रष्ट होने कारण प्रकृति के पांच तत्वों को ही ईश्वर मान कर अनेक प्रकार से भूत-पूजा करने लगते हैं और भक्ति भी व्यभिचारी स्वरूप वाली हो जाती है। धर्म को भी कमाई का साधन बनाया जाता है और जाति-पाति के साम्प्रदायिक तथा विरोधी धर्मो के बीच खूब झगड़े होने लगते हैं। प्रजा का प्रजा पर राज्य

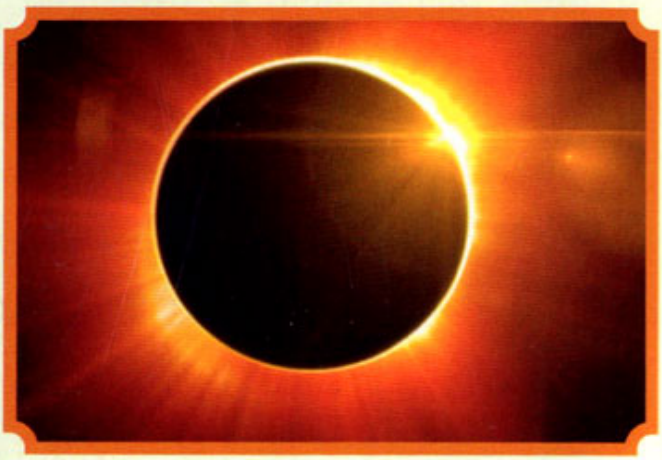

होने कारण, अनुशासन-हीनता, मत-भेद, धर्म-भेद, प्रांत-भेद, भाषा-भेद आदि आदि... के कारण आये दिन दंगे फसाद होते हैं। नारी को भोग का साधन मान कर उसका तिरस्कार किया जाता है। कलियुग में कलाहीन, तमोप्रधान अवस्था के कारण आयु बहुत कम हो जाती है। लोग अकाले मृत्यु का शिकार बनते गये और इसलिए जन्मों की संख्या बढ़कर 42 हो गयी। यहां मनुष्यों में विकारी वृत्ति होने कारण जाने-अनजाने में भी बहुत पापकर्म या विकर्म या विकृत कर्म होने लगे।

इस तरह ब्रह्मा की रात्रिका अन्त होने लगा और सीढ़ी के अंतिम पायदान पर आ पहुँचते हैं। इस प्रकार अगर देखा जाए तो सतयुग के 8 जन्म, त्रेता के 12 जन्म, द्वापर के 21 जन्म और कलियुग के 42 जन्म सब मिलाकर 83 जन्म होते है और एक जन्म कलियुग और सतयुग के संधिकाल संगम के समय पर होता है, यही जन्म दुर्लभ है जो बार-बार नहीं मिलता।

पुरुषोत्तम कल्याणकारी संगमयुग

यह संगमयुग दो युगों कलियुग और सतयुग के संधिकाल का समय है। इस समय आत्मा और परमात्मा का प्रत्यक्ष मिलन होता है। निराकार परमपिता परमात्मा शिव ब्रह्मा की रात्रि के अन्त में अव्यक्त से व्यक्त स्वरूप का आधार लेकर इस संसार में अवतरित

होते हैं। अधर्म का विनाश कर सत् धर्म, सनातन धर्म की स्थापना अर्थ अपने गीता के वायदे के हिसाब से दिव्य जन्म को धारण करते हैं। रुद्र परमात्मा इस संसार में आकर अविनाशी रुद्र गीता ज्ञान महायज्ञ रचकर मनुष्यात्मा के ज्ञान के दिव्य चक्षु खोलकर उन्हें धर्म श्रेष्ठ और कर्म श्रेष्ठ बनाकर, पुरुष से उत्तम पुरुष बनाकर सर्व का कल्याण करते हैं। परमात्मा शिव नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी स्वरूप में परिवर्तन करते हैं। इस संगमयुग में मनुष्यात्मा का एक जन्म होता है और इस जन्म को ही दुर्लभ माना जाता क्योंकि यह जन्म बार-बार नहीं मिलता है। संगमयुग के अलौकिक जन्म की विशेषताएँ का वर्णन इस प्रकार है -

1. इसी जन्म में मनुष्यों को अपने पूरे 84 जन्मों के आदि, मध्य और अंत का ज्ञान प्राप्त होता है।
2. इसी जन्म में हमें कर्मों की गुह्य गति का ज्ञान प्राप्त होता है और श्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। जिसके प्रालब्ध रूप में 21 जन्म सुख भोगते हैं या सद्गति को प्राप्त करते हैं। (एक जन्म संगमयुग का और 20 जन्म सतयुग और त्रेतायुग में)
3. इसी युग में आत्मा और परमात्मा की यथार्थ और सम्पूर्ण समझ प्राप्त होती है और हम परमात्म-मिलन का सुख अनुभव कर सकते है। जिसके लिए 63 जन्म हमने भक्ति की और घोर कठिन तपस्या की थी। (21जन्म द्वापरयुग के और 42 जन्म कलियुग के)।
4. इसी युग में हमें तीनों कालों का अर्थात् सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग का ज्ञान प्राप्त होता हैं और हम पुरुषोत्तम संगमयुग के महत्त्व को समझ कर पुरुषार्थ करते हैं।

पुरुषोत्तम मास का भक्ति मार्ग में बहुत महत्व है। यह पुरुषोत्तम मास तीन साल के बाद आता है और पुरुषोत्तम मास को पवित्र मास माना जाता है। इसी मास में लोग खूब भक्ति करते, उपवास रखते, जीवन में आत्म संयम को धारण करते, श्रेष्ठ कर्म या दान पुण्य

करते और गंगा-सागर या त्रिवेणी संगम पर विशेष जाकर स्नान करते हैं जिससे वे अपने सारे पापों को धोकर अपने कुल का उद्धार कर सकते हैं। वास्तव में यह इसी पुरुषोत्तम संगमयुग का यादगार है जो तीन युग के बाद चौथे युग में आता है। जिस समय परमात्मा हमें जीवन में पवित्रता का व्रत या आत्म संयम धारण करवाते हैं। विषय-विकारों से उपवास रखवाते हैं। एक परमात्मा शिव की यथार्थ अव्यभिचारी याद में रहकर श्रेष्ठ कर्म करना सिखाते हैं। जिससे कि कोई पाप कर्म न हो। ज्ञान रत्नों का सर्वश्रेष्ठ दान करना सिखाते है। ज्ञान गंगाओं रूपी आत्मा का सर्व गुणों के सागर परमात्मा के साथ पवित्र संगम यानि मिलन मनाते या योग कराते हैं। यही गंगा सागर का मिलन कराते और इसी मिलन से आत्मा को सर्व पापों से मुक्त कर 21 जन्मों के लिए उनका कल्याण करते हैं। उपर्युक्त विवेचन में चार प्रकार के कर्म सामने आते हैं :-

चार प्रकार के कर्म

1. सतयुग और त्रेतायुग में **अकर्म,**
2. द्वापरयुग में **पुण्य कर्म,**
3. कलियुग में जाने अनजानेपन में अनेक **विकर्म** या **पाप कर्म**,और
4. पुरुषोत्तम कल्याणकारी संगमयुग में **श्रेष्ठ कर्म।**

श्रेष्ठ कर्मका अर्थ है परमात्मा की श्रेष्ठ मत अर्थात् श्रीमत के आधार पर किया गया कर्म। जिससे मनुष्य सतयुग और त्रेतायुग में श्रेष्ठ प्रालब्ध प्राप्त करते हैं। यह श्रेष्ठ कर्म करने की विधि परमात्मा सिखाते हैं।

जैसे एक किसान जब बीज बोता है तो सबसे पहले वह धरनी देखता है। फिर उस धरनी के हिसाब से बीज की गुणवत्ता देखता है। उसके बाद उसमें खाद डालता है। शुद्ध वायु मिले, इस बात का ध्यान भी रखता है कि फसल के लिये धूप और जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो। बाद में जब फल निकलना आरंभ होता है तो कहीं कोई चिड़िया या कीड़ा

उसे खराब न कर दे, उसका भी ध्यान रखता है तब जाकर अन्ततः फल प्राप्त होता है।

इसी तरह इस अन्तिम श्रेष्ठ जीवन में श्रेष्ठ कर्म करने लिए श्रेष्ठ संकल्प बीज है। बीज भले ही अच्छा हो लेकिन अगर धरनी ठीक न हो तो भी वह बीज कोई काम का नहीं इसलिए चरित्रवान जीवन रूपी धरनी हो, जिसमें संयम और नियम रूपी खाद डालनी है। फिर घर में अच्छे संस्कारों का वातावरण, माहौल अच्छी वायु का कार्य करता है। उसके बाद नित्य ज्ञान सूर्य परमात्मा की याद द्वारा शक्तियों की किरणों की धूप आत्मा को तेज या रोशनी प्रदान करती है। उसके बाद हर रोज़ उस संकल्प रूपी बीज को ज्ञान अमृत से सींचना है। जिससे

जीवन रूपी पौधा बढ़ने लगता है और उस पौधे के ऊपर जो फल आता है उसे भी चिड़ियाओं से और कीड़ों से बचाना है, कहने का भाव है संगदोष रूपी चिडियायें और अंहकार रूपी कीड़ा जो जीवन को खराब कर देता है। कई बार फल देखते ही व्यक्ति को अभिमान आने लगता है। अभिमान करना माना कच्चा फल तोड़ना। इन सब से उस फल को सुरक्षित रखना है। तब श्रेष्ठ प्रालब्ध रूपी फल जीवन में संतुष्टता और प्रसन्नता प्रदान करता है। यह सतयुग त्रेतायुग के हर जन्म में अखुट सुख की प्राप्ति कराता हैं।

सतयुग और त्रेतायुग में देवी-देवता हमेशा अकर्म करते हैं। अकर्म का भाव यह नहीं कि कोई कर्म ही नहीं करना लेकिन जिस कर्म का कोई फल नहीं प्राप्त होता है उसे अकर्म कहते हैं। इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैं। मान लो मैने ज़मीन में एक बीज बोया, यह एक कर्म किया। बीज से वृक्ष निकला, वृक्ष पर फल लगे, फल पकने पर मैंने फल तोड़कर खाए, यह कर्म भी मैंने ही

किया। दोनों कर्मों में क्या कोई अन्तर है? बीज बोना **श्रेष्ठ कर्म** था क्योंकि उस एक बीज से मुझे हर मौसम में सौ फलों की प्राप्ति हुई। मेरे फल खाने का जो कर्म है उसे **अकर्म** कहेंगे क्योंकि उस फल को खाने का कोई और फल नहीं मिलता। बस फल खाया, संतुष्टि हुई और समाप्त हो गया। बीज बोना कर्म की शुरुआत है और फल खाना वह कर्म की समाप्ति है। इसी तरह संगमयुग में हम बीज बोने का श्रेष्ठ कर्म करते हैं जिसका फल हम सतयुग - त्रेतायुग के हर जन्म में भोगते हैं। हम वहां जो कर्म करते हैं वह फल खाने का ही कर्म करते हैं जिसका कोई और कोई फल प्राप्त नहीं होता इसलिए उसे अकर्म कहा जाता है।

इस बात को और एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है:

''एक व्यक्ति कड़ी मेहनत करके अपना बैंक बैलेन्स जमा करता है, उस व्यक्ति से अगर पूछा जाए कि भाई, तुम यह बैंक बैलेन्स क्यों जमा कर रहे हो ? तो वह यही कहेगा कि जब रिटायर हो जाऊंगा तो इसी पूंजी से अपने जीवन का गुज़ारा करूँगा। वह जब रिटायर हो जाता है तो जो बैंक बैलेन्स जमा किया होता है उसमें से वह खुले दिल से खर्च करना शुरू करता है। अब उसमें जमा तो नहीं हो रहा है और खर्च होने लगा है तो धीरे-धीरे वह बैंक बैलेन्स कम होने लगता है। उसने सोचा था कि उससे उसका जीवन यापन हो जाएगा लेकिन जब वह स्वयं को देखता है कि अभी तो वह स्वस्थ है, अर्थात् उसकी आयु अभी भी बाकी है, लेकिन बैंक बैलेन्स तो खत्म होने वाला है, तो वह क्या करेगा ? कुछ छोटा-मोटा काम करेगा, अपना खर्च कम करेगा और थोड़ा बहुत जमा होता रहे ऐसा प्रयास करेगा जिससे उसका शेष जीवन आराम से व्यतीत हो सके। परन्तु एक समय यदि उसकी वह कमाई भी बन्द हो जाए और बैंक बैलेन्स भी खत्म हो जाए और उसमें कुछ करने की शक्ति भी नहीं रहे तो वह अपने बच्चों से या किसी से थोड़ा उधार ले लेता है और बाकी का जीवन बिताने का प्रयास करता है।''

इसी तरह संगमयुग में हम जो कर्म करते हैं वह अपना जमा का खाता बढ़ाने का कर्म करते हैं, जो पूरे चौरासी जन्मों तक चल सके इसीलिये इस दुर्लभ जन्म में जो भी कर्म करें उसे बहुत सोच-समझकर करना है क्योंकि उसके आधार पर हम 84 जन्म की प्रालब्ध निश्चित करते हैं। फिर जब सतयुग में चले जायेंगे तो वहाँ जाकर हम उस जमा किए हुए बैंक-बैलेन्स को प्रालब्ध के रूप में भोगना प्रारंभ करते हैं। उस समय उसमें जमा नहीं होता है।

देवी-देवता रूप में हम आत्मायें वह प्रारब्ध भी बहुत खुले दिल से भोगना शुरू करते है। बहुत अच्छी तरह से स्वर्ग के सुख भोगते हैं और बैंक बैलेन्स का काफी बड़ा हिस्सा खत्म हो जाता है। द्वापरयुग तक आते-आते यह महसूस होता है कि अभी भी दो युग बाकी हैं और इन दो युगों में उस बैंक बैलेन्स को ही चलाना है। तो द्वापरयुग में हमने थोडा **पुण्य कर्म** करना आरंभ कर दिया। दान करके, भक्ति करके, निष्काम भावना रखते हुए कुछ पुण्य जमा किया ताकि थोड़ा बहुत जमा होता रहे और उस जमा के आधार पर बाकी का समय अपने जन्मों को चला सकें। इस तरह हमने द्वापरयुग भी पूरा कर दिया। लेकिन जब हम कलियुग में आए तो काफी बैंक बैलेन्स खत्म हो जाता है। कलियुग में बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है और श्रेष्ठ कर्म करने की विधि भी मालूम नहीं होती तो स्वाभाविक रूप से जाने अनजाने में **पाप कर्म** होने लगे यानि उधार का खाता प्रारंभ हो जाता है। हमें यह तो मालूम है कि किसी को दु:ख देना, या किसी को गाली देना, या किसी को थप्पड़ मारना, वो सब पाप कर्म के खाते में जमा होता है। इस कलियुग में अनजाने के पाप कर्म बहुत होने लगे। वह अनजानेपन में कौनसे पाप हो गए? यह एक उदाहरण से स्पष्ट होगा:- "मान लीजिये कि हमें एक भिखारी की दुर्दशा देखकर दया आती है और हम उसे 100 रुपये दान में दे देते हैं। हम सोचतें है कि यह पुण्य के खाते में जमा हो गया। लेकिन यह ज़रूरी नहीं है क्योंकि इसका आधार है कि उस भिखारी ने उन सौ रुपयों का उपयोग कैसे किया। मान लें कि उसने उन 100 रुपयों से एक चाकू खरीदा और किसीका खून किया, तो उसने जो पाप कर्म किया उस पाप कर्ममें हम भागीदार बन जाते हैं क्योंकि हमने पैसे दिए तब उसने वह पाप कर्म किया। यह है अनजानेपन में किये हुए पाप कर्म, इनका भी बड़ा हिसाब भोगना पड़ता है इसलिये कहा है कि कलियुग में ऐसे अनजानेपन के पापकर्म बहुत होते हैं। जान कर के तो किये ही किये लेकिन हमारे ऐसे भागीदारी के बहुत सारे कर्म हो जातें हैं। भागीदारी के इन कर्मों का हिसाब भागीदारी में ही चुकाना पड़ता हैं। उसमें जितनों के साथ हमारी भागीदारी बनती है, उतनों के साथ

मिलकर हमें उस कर्म का फल भोगना पड़ता है। तभी तो कहा जाता है कि कर्म की गति अति गुह्य है।" इसे एक अन्य उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है:-

''मान लो एक कसाई है, उसने एक जानवर को मारा, अब उसने तो पाप कर्म किया। उस जानवर का माँस उसने एक दुकानदार को बेचा, तो वह दुकानदार उसके पाप कर्म में भागीदार बन गया। उस दुकानदार ने उस माँस को एक होटल वाले को बेचा तो वह होटल वाला उसके पाप कर्म की भागीदारी में जुड़ गया। अब होटल वाले ने अपने बावर्ची को पकाने लिए दिया तो वे पकाने वाले भी उस पाप कर्म की भागीदारी में जुड़ गये। उस दिन उस होटल में एक पार्टी थी, उस पार्टी में उस माँस के व्यंजन बनाकर परोसे गए, अब जितने लोगों ने उन व्यंजनों को खाया वे सब के सब उस पाप कर्म में भागीदार बन जाते हैं। कर्म एक ने किया लेकिन जितनों ने उस कर्म में साथ दिया वो सारे के सारे ही भागीदार हो गये। वह सारे भागीदार भले स्वयं को निर्दोष समझें परन्तु वे सब अनजानेपन में पाप कर्म के हिस्सेदार बन गये। जब उसका फल चुकाने का समय आता है तो सभी को मिल कर ही चुकाना पड़ता है। कैसे चुकाते हैं ? जैसे वह पाप कर्म को चुकाने के समय का संयोग आता है तो दूसरे जन्म में वे सब एक ही बस में सवार होते है और कहीं पिकनिक या यात्रा करने जाते हैं, अब इस जन्म में वह कसाई उस बस का ड्राइवर बनता है और जैसे ही वे पहाड़ी पर जा रहे होते हैं और वह जानवर जिनको उस कसाई ने मारा था अचानक सामने आ जाता है और उसे बचाने लिए बस का ड्राईवर बस का संतुलन खो देता है और वह बस उस पहाड़ी से नीचे गिर जाती है और उसमें किसी की जान जाती और हर एक को कहीं न कहीं चोट लगती है। उस वक्त लोग यहीं कहते है कि ड्राईवर की गलती के कारण सभी निर्दोष लोगों को चोट आई। परन्तु कर्म की गुह्य गति के हिसाब से कोई निर्दोष नहीं था। जो निर्दोष थे वह किसी न किसी कारण से उस यात्रा में जा नहीं सके या फिर इतने ऊपर से गिरने के बाद भी किसी-किसी को एक खरोंच तक नहीं आती। निर्दोष को बिना कर्म किये दु:ख-दर्द या भोगना भोगनी पड़े यह हो नहीं सकता। यह कायदा नहीं है। अगर ज्यादा लोगों के बीच भागीदारी होती है तो ट्रेन में जाते हैं और उस ट्रेन के कुछ डिब्बे पटरी से नीचे उतर जाते है और वे सारे लोग ज़ख्मी हो जाते है या और ज्यादा लोग होते तो एक ही हवाई जहाज़ में इक्कट्ठे जाते हैं और उस हवाई जहाज़ में कोई खराबी आती है और सारे के सारे खत्म हो जाते हैं।''

इस तरह कर्म की गुह्य गति को समझते हुए बड़ी सावधानी से कर्म करना चाहिए। तभी

तो कहा जाता है कि कर्म कभी किसी को छोड़ते नहीं। भले किसी व्यक्ति ने कितना भी छिपकर कर्म किया हो लेकिन मनुष्य स्वयं को उस कर्म से छुड़ा नहीं पाता है, उसका हिसाब उसको भोगना ही पड़ता है। एक बहुत सुन्दर दृष्टांत याद आता है:-

''दो मित्र थे, एक का नाम था महेश, दूसरे का नाम था सुरेश, दोनों की बहुत अच्छी दोस्ती थी। परन्तु महेश बहुत ही भोला इन्सान था और सुरेश बड़ा चालाक था। एक दिन सुरेश ने सोचा क्यों नहीं कमाई करने लिए विदेश चलते हैं। दोनों अपने परिवार से विदाई लेकर समुद्री जहाज़ से विदेश गये। दोनों ने खूब मेहनत की और अच्छी कमाई की। फिर दोनों ने एक दिन सोचा कि चलो अपने देश वापस चलते हैं। अब इतना धन तो कमा लिया है जो आराम से बैठकर खा सकते हैं। वापसी यात्रा के समय दोनों मित्र समुद्री जहाज़ से वापस आने लगे। दोनों के मन में अपने परिवार से मिलने की खुशी थी। परन्तु सुरेश के मन में एक दुष्ट विचार चल रहा था और उसने सोचा कि अगर मैं महेश को इस रेलिंग से धक्का मार कर समुद्र में गिरा दूँ और उसकी सारी कमाई भी मैं ले लूं तो किसी को पता ही नहीं चलेगा। और लोग भी यही समझेंगे कि एक दुर्घटना थी। यह सोचकर सुरेश ने महेश को धक्का दिया और वह जहाज़ से समुद्र में गिर गया और उसका सारा माल सामान और पैसे लेकर वह अपने गांव पहुंच गया। सुरेश ने महेश के परिवार वालों को बताया कि जाते समय ही महेश अकस्मात से समुद्र में गिर गया और वह अकेला ही विदेश में रहा था। अब वह सारा पैसा कमाकर आ गया है। देश में वापस आकर सुरेशने अपनी पत्नी के साथ रहकर एक बड़ा व्यापार शुरू कर दिया। थोड़े दिनों में उसके घर में एक बेटे का जन्म हुआ और उसके नामकरण पर बड़ी धूमधाम से कार्यक्रम रखा गया जिसमें शहर के बड़े- बड़े लोगों को आंमत्रित किया गया। उसी समय एक बड़े महात्मा भी आये थे, उन्होंने बच्चे का भविष्य देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। सुरेश ने पूछा कि क्या बात है तो वह महात्मा ने कहा कि आप इस बच्चे को गरीबी में पालना, कहने का भाव महात्माजी का यह था कि जो वह कहे तुरंत लाकर नहीं देना परन्तु कम से कम खर्च उस पर करना। सुरेश ने महात्माजी से कुछ नहीं कहा लेकिन उसने महात्माजी की बात नहीं मानी और जैसे- जैसे बच्चा बड़ा होता गया और मात-पिता का लाडला होने कारण उसने जो भी चाहा उसके सामने हाज़िर हो जाता था। और वह बच्चा बड़ा हो गया और उसकी शादी तय की गयी। परन्तु शादी के एक दिन पहले ही उसकी अकस्मात मृत्यु हो गयी। उसी समय वह महात्माजी पुन: पधारे और उसने याद दिलाया कि उसने उसे कहा था कि

बच्चे को गरीबों की तरह पालना क्योंकि उसने उस बच्चे का भविष्य देखा था कि वह उसका कोई हिसाब चुकाने आया है और हिसाब चुक्तू करते ही वह उनके घर से चला जायेगा। सुरेश ने मुनीमजी को बुलाया और उससे पूछा कि इस बच्चे के पीछे जो खर्चा किया था उसका हिसाब बताओ। मुनीम जी ने सारा हिसाब जोड़कर सुरेश को बताया तो वह हिसाब देखकर सुरेश को बहुत बड़ा धक्का लगा और उसने देखा कि उसने जितनी महेश की कमाई हड़प ली थी वह उतनी ही थी और वहीं उसको हार्टअटैक हुआ और वह मर गया। कर्म की गुह्य गति भी कैसी है। सुरेश ने महेश को धक्का देकर मार डाला तो महेश ने भी दूसरे जन्म में उसको धक्का दिया जो उसकी मृत्यु का कारण बना। और जितना धन उसने उसका हड़प लिया था उतना ही महेश ने वापस ले लिया।''

तभी कहा जाता है कि कर्म किसी को छोड़ते नहीं हैं चाहे अच्छा करो तो भी यहां ही उसकी भोगना है चाहे बुरा करो उसकी सज़ा भी व्यक्ति को यहीं मिलती है, इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में।

कई बार मनुष्य के मन में यह सवाल ज़रूर आता कि क्या हर कर्म का फल अगले जन्म में ही मिल जाता है या दो तीन जन्म बाद भी मिलता है ?

जिस तरह एक किसान अगर मिर्ची या टमाटर का बीज बोता है तो तीन मास में ही उसका फल मिलने लगता है लेकिन अनाज का बीज डालता है तो 6 मास में फल मिलता है। वैसे ही अगर वह कोई फल का पेड़ लगाता है तो उसे दो-तीन साल में फल प्राप्त होता है और अगर नारियल का बीज डालता है तो दस साल के बाद उसे फल प्राप्त होता है। जितनी क्षमता का बीज होता है उतने समय में फल की प्राप्ति होती है। वैसे ही कर्म करने लिए संकल्प भी एक बीज है और जितनी दृढ़ता वाला संकल्प किया होता है और जितनी तीव्रता से कर्म किया गया होता है तो उसका फल भी उतने समय में प्राप्त होता है। कोई कर्म का फल इसी जन्म में प्राप्त होता है और कोई कर्म का फल अगले जन्म में भी प्राप्त

होता है और कोई कर्म का फल चार पांच जन्म बाद भी मिलता है और कोई कर्म का फल बीस-पच्चीस जन्म बाद भी मिलता है। तभी तो व्यक्ति जब दु:खी होता है तो यही कहता है पता नहीं कौनसे जन्म के कर्म का फल भोग रहा हूँ। परन्तु एक बात ज़रूर है कि फल जितना जल्दी प्राप्त हो जाता है तो उसे स्वीकार करने की शक्ति अधिक होती है और उस कर्म का फल जितनी देर से मिलता है उतनी ही दु:ख की भोगना अधिक हो जाती है। जैसे किसी से उधार लिया हुआ जितना जल्दी चुका देते उतना जल्दी बोझ उतर जाता है लेकिन जितना समय निकलता जाता तो उसका बोझ भी महसूस होता और ब्याज भी बढ़ता जाता है,यह मनुष्यों को ज्यादा तकलीफ महसूस कराता है।

कई बार मनुष्य के मन में यह भी प्रश्न आता है कि आज के युग में जो बेईमानी से जीते हैं वे तो मौज करते हैं और जो ईमानदारी से जीते हैं वह दु:खी क्यों होते हैं ?

इस बात को एक दृष्टांत से समझते हैं:-

''एक बार दो व्यक्ति एक रास्ते से गुजर रहे थे। उसमें एक बड़ा बेईमान था और दूसरा बड़ा ईमानदार था। चलते- चलते उन्होंने देखा कि रास्ते में एक बटुआ पड़ा हुआ था। बेईमान व्यक्ति ने तुरंत वह बटुआ उठा लिया। उसने खोलकर देखा तो उसमें 1000 रुपये थे। ईमानदार व्यक्ति ने भी सब कुछ देखा। बेईमान ने कहा चूंकि हम दोनों ने देखा है तो इस रकम को आधा- आधा बाँट लेते हैं। ईमानदार आदमी ने कहा देखो भाई जिसका यह बटुआ होगा शायद उसका वेतन का दिन हो। घर जाते समय वही रास्ते में गिर गया, बेचारा कितना दुखी होगा। शायद उसने पुलिस में फरियाद की होगी। उस व्यक्ति को अगर उसका बटुआ मिल जायेगा तो कितना खुश होगा और कितनी दुआएं देगा। इस पर बेईमान बोला - देखो भाई, अगर यह पैसे उसके नसीब में होते तो उसका बटुआ गिरना ही नहीं था और उसका बटुआ गिरने के बाद इस रास्ते से और कोई गया ही नहीं, हम ही पहले व्यक्ति है और हमें यह मिला है माना यह पैसे हमारे नसीब के हैं इसलिए हमें इसे प्रसाद समझकर ही स्वीकार कर लेना चाहिये। अगर हम पुलिस थाने में जाकर जमा कराएँगे तो यदि यह धन उसके नसीब में ही नहीं है तो पुलिस वाले आपस में बाँट लेंगे। उसको तो मिलगा ही नहीं। और हमने कोई चोरी तो नहीं की है। हमें अपने आप मिला है। उसे किसीका पता भी नहीं लिखा है जो उसको जाकर दे दें। इसीलिये मेरा कहना है कि हमें बाँट लेना चहिये। अगर तुम्हें नहीं लेना है तो मैं पूरा का पूरा पैसा रखने लिये तैयार हूँ। ईमानदार ने कहा कि मुझे यह पैसे नहीं चाहिएं। तो उस बेईमान ने पूरा पैसा अपने पास

रख लिया। जैसे ही वे थोड़ा आगे बढ़े तो जो ईमानदार था उसको पैर में बहुत ज़ोर से काँटा चुभ गया। बेईमान ने उसे ताना मारा, देखो बड़ी ईमानदारी की बात कर रहा था न ? इसीलिए तुम्हें काँटा चुभ गया। बेईमानी से जीओ तो पर्स मिलेगा। यही आज की दुनिया का हिसाब है।

कुछ देवता आकाश मार्ग से जा रहे थे उन्होंने यह दृश्य देखा तो उन्होंने सोचा कि यह भी कोई बात है ? बेईमान को पर्स मिल रहा है और ईमानदार को काँटे लग रहे हैं, लगता है चित्रगुप्त के हिसाब में कुछ गड़बड़ हो रही है। सभी देवता मिल कर परमात्मा के पास गये और कहने लगे कि भगवन्, आज हमने मनुष्यलोक में एक विचित्र दृश्य देखा। और लगता है कि चित्रगुप्त के हिसाब में कुछ गड़बड़ हो रही है। भगवान ने कहा : चित्रगुप्त के हिसाब में कभी कोई गड़बड़ नहीं हो सकती। तब देवताओं ने सारे दृश्य का वर्णन किया कि जो ईमानदार था उसको काँटें चुभ रहे है और वो भी इतना जोर से कि उसको खून निकलने लगा और जो बेईमान था उसको पैसे से भरा बटुआ मिला ! उन सबकी संतुष्टि के लिये भगवान ने चित्रगुप्त को बुलाया। उनके आने पर भगवान ने कहा, मृत्यु लोक के इन दोनों व्यक्तियों के हिसाब किताब के चौपड़े लेकर आओ। दोनों व्यक्तियों के हिसाब का चौपड़ा लाया गया। देखने पर मालूम पड़ा कि जो अभी बेईमान है वह पहले बहुत ही ईमानदार था और उसकी ईमानदारी के फलस्वरूप उसको बहुत बड़ी प्रालब्ध मिलनी थी। उसने इतने अच्छे कर्म किये थे, इतनी ईमानदारी रखी थी कि बहुत बड़ा भाग्य उसको प्राप्त होना था। लेकिन वह भाग्य प्राप्ति से पहले अन्तिम परीक्षा उसके सामने आई। उस परीक्षा के आने पर उसका धीरज समाप्त हो गया और वहां से उसने अपने जीवन का रास्ता बदल दिया और बेईमानी वाला जीवन अपना लिया और बेइमानी वाला जीवन अपनाने से उसे जो सारी प्रारब्ध पानी थी वो कम होते-होते इतनी कम हो गयी कि एक बटुआ ही मिला जिसमें केवल **1000** रुपये थे। जिसके लिए वह कह रहा था कि यह पैसे उसके नसीब का प्राप्त हुआ है। वैसे उसके नसीब में क्या था ? बहुत बड़ी प्रारब्ध थी। लेकिन अन्तिम परीक्षा में ही उसका धैर्य खत्म हो गया और उसने बेईमानी का रास्ता अपना लिया, वहाँ से जो मोड़ आया उसके कारण उसकी सारी की सारी प्रारब्ध खत्म हो गयी। और जो ईमानदार था उसका हिसाब भी निकाला तो देखा गया कि वह पहले बहुत ही बेईमान था, उसकी बेईमानी के कारण उसे बहुत कड़े से कड़ी सज़ा होने वाली थी। लेकिन सजा खाने के पहले उसको जीवन में सुधरने का अन्तिम मौका मिला। उसने वह मौका जीवन में उठा लिया। वहाँ से उसने अपने जीवन को सुधार लिया और बहुत सुंदर ईमानदारी वाली जीवनशैली को अपना लिया। तो उसकी सारी सज़ा भी क्षीण

होते-होते सिर्फ एक काँटा चुभने जितनी रह गई। उसे जो काँटा चुभा वह उसकी ईमानदारी का फल नहीं था लेकिन उसका पूर्व बेईमानी वाली जीवन की इतनी ही सज़ा शेष थी। बेईमान को जो हज़ार रुपया मिला वो उसकी बेईमानी का फल नहीं था लेकिन उसकी ईमानदारी का उतना ही पुण्य का फल जमा था जो उसे प्राप्त हो गया। ह्र तभी कहा जाता कि भगवान के घर में देर है पर अंधेर नहीं है। भगवान हर बुरे व्यक्ति को भी सुधरने का मौका देता है और हर अच्छे व्यक्ति की अच्छाई की परीक्षा भी लेता है।''

संसार में आज कई लोग कहते हैं कि बेईमानी से जीवन जीओ तो मौज करेंगे, लेकिन यह मौज थोड़े समय की है क्योंकि जैसे ही पुण्य क्षीण हो जायेगा, उसके बाद की जो भोगना होगी, वो बहुत कड़ी होगी। इसी तरह यह नहीं समझना चाहिये के जो काँटा चुभा वो ईमानदारी का फल है। इसीलिये कहा कि जीवन में हर घड़ी जो कुछ भी कर्म होता है, कर्मों की गुह्य गति उसके साथ जुड़ी हुई होती है।

कैसे रखता है चित्रगुप्त करोड़ों मनुष्यों का हिसाब?

अनेक लोगों के मन में यह सवाल उठ सकता है कि दुनिया में सात अरब से भी अधिक जन संख्या है तो फिर चित्रगुप्त सबका हिसाब कैसे रखता होगा? चित्रगुप्त कभी हिसाब रखने में कोई गलती नहीं करते हैं क्योंकि उनका हिसाब रखने का तरीका बहुत अच्छा है। हमारे जीवन का हिसाब रखने वाला चित्रगुप्त कौन है? चित्र + गुप्त कहने का भाव है कि चित्रगुप्त माना हमारे हर भाव, भावना, वृत्ति और कर्म का गुप्त रूप से चित्र खींचा जाता है और वह अंत में सारे जीवन की एक फिल्म की रील की तरह पेश हो जाता है जिस कारण मनुष्य यह नहीं कह सकता कि यह कर्म मेरा नहीं है या यह बुरी वृत्ति या भावना मेरी नहीं है। जैसे आज की दुनिया में किसी व्यक्ति के कर्मों का स्टिंग ऑपरेशन किया जाता तो वह इन्कार नहीं कर सकता। ठीक इसी प्रकार चित्रगुप्त ने भी हम सभी में एक गुप्त कैमरा ऐसा लगाया है

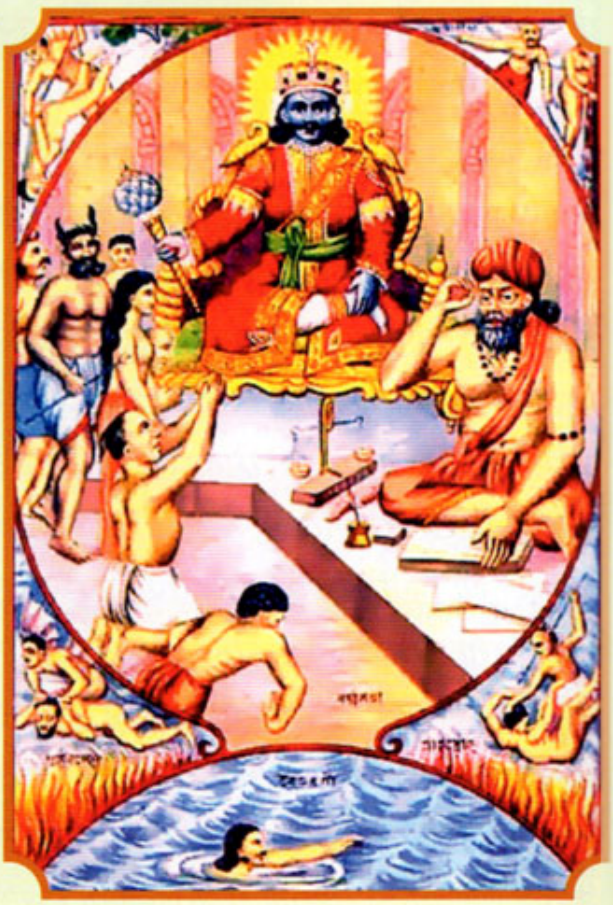

जो हर कर्म को चाहे कोई देखे या न देखे लेकिन हर पल गुप्त स्टिंग ऑपरेशन होता रहता है। तभी तो दुनिया में कहा जाता है कि व्यक्ति अपने आप से छिप नहीं सकता।

माना हरेक व्यक्ति में एक चित्रगुप्त है। वह कभी कोई गलत हिसाब नहीं रखता। इसीलिए मनुष्य जब भी कोई कर्म करे तो यह न सोचे कि जो मैं कर रहा हूँ वह कोई देख नहीं रहा है। भगवान भी नहीं देख रहा है। लेकिन हर कर्म करते समय किस वृत्ति से किया? किस भावना से किया? उन सब बातों का गुप्त चित्र संस्कारों में समा जाता है जिसको कोई मिटा नहीं सकता और वह चित्र हमारे भीतर ही रहता है। जब व्यक्ति शरीर त्याग करता तो संस्कारों में पड़े सारे चित्रों की फाईल को चित्रगुप्त खोल कर रख देता है। जैसे किसी कीड़े को मैग्निफाइंग ग्लास के नीचे देखने से बहुत बड़ा और भयानक दिखता है, वैसे ही एक-एक कर्म के सारे चित्र मैग्निफायड होकर व्यक्ति के सामने बहुत स्पष्ट और भयंकर रूप में नज़र आते हैं। उस कर्म करते समय की उसकी मनोवृत्ति, भावनाएं भी बहुत ही स्पष्ट दिखाई देती हैं। उस समय भगवान तो क्षमा का सागर है, वह तो क्षमा कर देते है। लेकिन आत्मा खुद ही खुद को कभी क्षमा नहीं कर पाती। जब हम खुद स्वयं को क्षमा नहीं कर पाते हैं तब उन कर्मों को स्वीकार करके, बुरे कर्म का फल भोगने लिए संसार में पुन: आते हैं। कर्मों के आधार पर आत्मा आने वाले जन्मों में भावी या होनी को निश्चित करती है, जिससे कोई भाग नहीं सकता तभी कहा जाता है कि भावी या होनी टाले नहीं टले।

यदि भगवान कुछ नहीं कर सकता, फिर भगवान को याद क्यों करें?

भगवान क्षमा का सागर है वह मनुष्यों को अपनी गलती को सुधारने का मौका ज़रूर देता है ताकि मानव अपने भविष्य को सुधार सकें। परन्तु मनुष्य अपने अहंकार में इतना चूर होता कि वह सारे अवसरों को गंवा देता है। या कभी-कभी वह भगवान को भी खरीदने का प्रयत्न करता है या एक प्रकार से रिश्वत देने का प्रयत्न करता है। मनुष्य अपने अज्ञान और अंहकार में आकर यही सोचता है कि एक तरफ बुरे काम हो रहे हैं तो दूसरी ओर

वह कुछ गरीबों को दान करके या भगवान के नाम पर मंदिरों में दान करके या मंदिर बनवाकर सोचता है कि भगवान उसके बुरे कर्म को माफ कर देगा और वह सारे बुरे कर्मों की भोगना से छूट जायेगा। परन्तु कर्म की गति अति गुह्य है। इस बात को समझने लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है - मान लो हमने कोई व्यापार करने लिए किसी से पैसे उधार लिये हैं और व्यापार में मुनाफा होने पर हम सोचें कि किसी मंदिर में दान करते हैं। यह बहुत अच्छा विचार है, परन्तु जिससे उधार लिया हैं वह व्यक्ति जब अपना पैसा मांगने आये तो उस वक्त हम उसे यह कह दें कि वह तो मैंने मंदिर में दान कर दिया अब भगवान तुम्हारी उधारी चुका देंगे, तो यह कैसे संभव है? विवेक भी यही कहता कि जिससे उधार लिया है उसको तो पहले चुकाना पड़ेगा और जो

दान करके पुण्य कमाया है उसका फल समय आने पर मिल जाएगा। वैसे व्यक्ति के अच्छे कर्म का फल भी जमा होता जाता है, जो उसको सुख के रूप में प्राप्त होता है लेकिन बुरे कर्म का हिसाब अलग जमा होता है जिसकी भोगना दुःख के रूप में भोगनी पड़ती है।

भगवान को याद क्यों करें? उससे जीवन में क्या फायदा है?

भगवान को याद करने का फायदा यही है कि जब दुःख भोगने का समय आता है तो उस भोगना को पार करने की या उसे सहने की शक्ति मिल जाती है। हरेक व्यक्ति इतना तो ज़रूर जानता है कि उसने जीवन पर्यन्त इतने पुण्य कर्म या श्रेष्ठ कर्म नहीं किये हैं, तो जब चित्रगुप्त उसका हिसाब उसके सामने लाएगा तो वह नज़ारा अच्छा नहीं लगेगा। इसलिये उस समय ईश्वर की याद की शक्ति से उस होनी की तीव्रता की महसूसता कम हो जाती है। वह सहनशक्ति, हमारी भोगना की तीव्रता को बहुत कम कर देती है।

निमित्त मात्र उस कर्मकी भोगना कोई बीमारी या किसी परिस्थिति के रूप में आती है लेकिन उसको पार करना आसान हो जाता है। बाकी ऐसा नहीं है कि कोई यमराज हमें ले जा कर गरम-गरम कड़ाही में डालेंगे। मनुष्यों को जो कर्म की सज़ा भोगनी है वह इसी दुनिया में रह कर ही भोगनी है। जैसे मान लो कि किसी के जीवन में कोई अनहोनी निश्चित है, तो वह अनहोनी तो आती है लेकिन जब हम अच्छे कर्म करते हैं, ईश्वर के याद की शक्ति अपने में भरने लगे, तो वह अनहोनी जो आनी है वह आती ही है, लेकिन महसूस ऐसे होगा, जैसे मक्खन से बाल निकल गया, इस तरह हम उस घटना से पार हो जायेंगे। उसकी भोगना हमें कड़े रूप में अनुभव नहीं होती।

दूसरा ईश्वर को क्षमा का सागर, दया का सागर कहा जाता है, उसकी क्षमा का स्वरूप है कि वह मनुष्यों को कोई न कोई विशेषता का वरदान देता है जिससे मनुष्य श्रेष्ठ कर्म कर सके और अपना जीवन अच्छी तरह से व्यतीत कर पाएं। कोई व्यक्ति कितना भी बुरा क्यों न हो, लेकिन अपनी विशेषता के वरदानों के प्रयोग से वह जीवन में खुशी का अनुभव करने लगता है, जिससे भोगना का कष्ट कम महसूस होता है। हमें तो सिर्फ इस विशेषता के वरदान को पहचान कर उसका उपयोग अच्छे कर्म करने लिए करना है। ताकि इतना पुण्य अर्जित कर लें जो आगे के जन्मों को संवार दे और भविष्य प्रारब्ध को भी अच्छे से अच्छा बना सके।

पुरुषार्थ बड़ा या प्रालब्ध? कर्म बड़ा या भाग्य ?

इस बात को एक दृष्टान्त से समझते हैं:-

''एक राजा किसी जंगल से गुजर रहा था, अचानक उन्होंने कुछ आवाजें सुनीं। कुछ लोगों के बीच में जैसे कोई बड़ी बहस छिड़ी हुई थी। राजा ने देखा कि वे तीन लोग थे जिनके बीच बहस चल रही थी। तीनों अपने आपको एक दूसरे से बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे। जैसे ही उन्होंने राजा को देखा तो कहा, 'महाराज, आप फैसला करके बताओ कि हम तीनों में बड़ा कौन है ?' राजा ने कहा, 'पहले आप अपना परिचय तो बताओ ? आप कौन हो ?'

पहले ने कहा- मैं कर्म हूँ।

दूसरे ने कहा, मैं भाग्य हूँ।

और तीसरी एक महिला ने कहा - मैं बुद्धि हूँ।

तीनों ने कहा, 'अब आप ही हमारे लिये यह फैसला करो कि हम तीनों में श्रेष्ठ कौन है ?

किसकी शक्ति और महत्व अधिक है ?' राजा ने कहा, 'इसके लिये तो आपको स्वयं को प्रमाणित करना होगा उसके बाद मैं फैंसला करूँगा।' उतने में वहाँ से एक लकड़हारा जंगल में लकड़ियाँ काटने जा रहा था। राजा ने कहा, 'इस लकड़हारे पर आप स्वयं को प्रमाणित करो। मैं आप तीनों को एक-एक सप्ताह की मोहलत देता हूँ। आपको स्वयं की श्रेष्ठता और बड़प्पन को सिद्ध करके बताना है।

राजा ने सबसे पहले कर्म से कहा कि 'तुम अपना प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाओ।' कर्म ने लकड़हारे में प्रवेश कर लिया। उसके अन्दर ऐसी कर्म करने की शक्ति आ गई कि उसने उस दिन इतनी सारी लकड़ी काट ली जो रोज़ के हिसाब से तीन गुना अधिक थी। अब उसे सारी लकड़ियों को शहर में ले जाना था और बेचना था। लेकिन न भाग्य का साथ था और न बुद्धि थी। आखिरकार वह जितना उठा सकता था उतना उठाया और बाकी के लिये सोचा कि वह एक गठरी बेच कर फिर आकर दूसरी गठरी को ले जायेगा। बाकी की लकड़ियों को सहेज कर एक कोने में रख दिया। शहर गया, लकड़ी बेच कर जब बाकी लकड़ियाँ लेने वापिस जंगल में उसी स्थान पर आया, तो भाग्य का साथ न होने कारण उसकी वह गठरी चोरी हो गई थी। सारा दिन तनतोड़ मेहनत करने के बाद भी उसकी आमदनी उतनी ही रही जितनी रोज की आमदनी थी। दूसरे दिन भी इसी तरह चला। वापस आकर देखता था तो उसकी लकड़ियां चोरी हो जाती थीं। एक हफ्ते के बाद देखा कि उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

दूसरे हफ्ते भाग्य का समय था। कर्म ने लकड़हारे से विदा ली और भाग्य ने उसमें प्रवेश किया। अब जैसे ही भाग्य ने प्रवेश किया बैठे-बैठे उसको लॉटरी लग गई। लॉटरी लगते ही वह लकड़हारा बड़ा खुश हो गया कि क्या भाग्य है ? इसलिये उसने सोचा, जब इतना धन आ गया तो मुझे जंगल में जाकर लकड़ी काटने की आवश्यकता ही क्या है ? भाग्य का साथ था लेकिन कर्म की शक्ति समाप्त हो गई और बुद्धि भी नहीं थी कि उस धन का सदुपयोग कैसे करे। उसने उस धन को मौज और महफिलों में उड़ाना शुरु किया। सारा धन इस तरह उड़ाता रहा कि हफ्ते भर में सारा का सारा धन समाप्त हो गया। वह अपनी उसी मूल स्थिति में वापिस आ गया।

अब तीसरा सप्ताह था बुद्धि का। लकड़हारे से भाग्य ने विदा ली और बुद्धि ने उस लकड़हारे में प्रवेश किया। जब बुद्धि ने प्रवेश किया तो उस लकड़हारे ने सोचना प्रारम्भ किया- अब मैं क्या करूँ ? वापस जंगल गया। सबसे पहले बुद्धि से उसने सोचा कि आज मैं अपनी कुल्हाडी को पहले अच्छी तरह से तेज़ कर लेता हूँ। कुल्हाड़ी तेज़ करने से दिन

भर में काफी लकड़ियाँ इकट्ठी हो गईं। परन्तु न भाग्य साथ था और न कर्म की शक्ति साथ थी लेकिन बुद्धि चलने लगी। बीच- बीच में कुल्हाड़ी की धार तेज करने से रोज से दुगुनी लकड़ियाँ कट गईं। फिर वह सोचने लगा कि इसे मैं शहर कैसे ले जाऊँ ? बुद्धि का साथ होने कारण, उसने लकड़ियाँ को जंगल की बेलों से बाँध कर एक गाड़ी जैसी बना ली। उसी गाड़ी के अन्दर सारी की सारी लकड़ियाँ भरी और खींचते हुए वह सारी की सारी लकड़ियाँ शहर की ओर ले गया। सारी लकड़ी बेची तो उसकी आमदनी रोज़ की आमदनी से ज्यादा हुई। उससे उसने दूसरी कुल्हाड़ी खरीदी और दोनों की धारों को तेज किया क्योंकि वह जानता था कि लकड़ी काटते- काटते कुल्हाड़ी की धार तो कम होनी ही थी। उस समय वह कहाँ उसकी धार को तेज करने में समय बरबाद करे ? इस तरह से वह दो कुल्हाड़ियाँ लेकर चला। और दोनों कुल्हाड़ियों से उसने सारे दिन में बहुत अधिक लकड़ियाँ काट लीं। अब तो उसने और भी अधिक बड़ी गाड़ी बना ली और उसमें सारी लकड़ियों को डाल कर वह सारी की सारी लकड़ियाँ शहर ले गया। बेचीं, काफी पैसे आए। उन पैसों से उसने एक खच्चर वाली गाड़ी खरीदी। फिर से दो कुल्हाड़ियां तेज़ धार कर के लीं। इस तरह देखा गया कि हफ्ते के अन्दर उसकी स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। अब बुद्धि वापस निकल आई और फिर तीनों राजा के पास गए। तीनों में श्रेष्ठ कौन है ? स्थिति को देखते हुए बुद्धि को श्रेष्ठता का प्रमाणपत्र मिला।''

कहने का मतलब यह है कि जीवन में इन्सान कितने भी कर्म कर ले लेकिन अगर बुद्धि से कर्म न करे तो स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता और बुद्धि के बिना भाग्य व्यक्ति को आलसी बना देता और गलत आदतों के शिकार हो जाने से वह भाग्य भी साथ छोड़ देता परन्तु अगर बुद्धि से कोई भी कर्म करे तो भाग्य भी साथ देने लगता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि

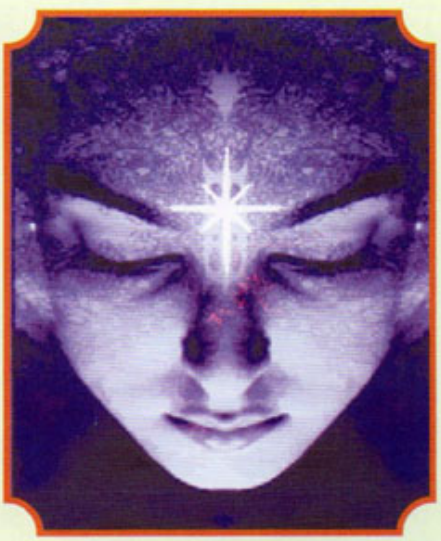

- भाग्य मिल जाने से स्थिति में सुधार हो जायेगा, ऐसी बात निश्चित नहीं है। भाग्य का सदुपयोग करने के लिए बुद्धि चाहिए।

- दूसरी तरफ इन्सान केवल कर्म ही कर ले और उसी से उसकी स्थिति में सुधार आ जाए, ऐसा भी नहीं होता है क्योंकि कर्म करने की समझ चाहिए अन्यथा व्यर्थ कर्म में अपनी शक्ति को गँवाता रहेगा और प्राप्ति कुछ नहीं होगी।

• दोनों का फल पाने के लिये बुद्धि अति आवश्यक है। कर्म करने की विधि को जानने के लिये भी और उसके आधार पर जो भाग्य मिलता है उसे सदा स्थायी रखने के लिये भी।

इसलिये तीनों में अगर कोई प्रबल है तो बुद्धि है। यही कारण है कि परमात्मा जो बुद्धिमानों की बुद्धि है वह मनुष्यात्माओं को आध्यात्मिक ज्ञान देकर बुद्धि में विवेक की धार को तेज़ करते जिससे सही कर्म करने की सूझ आती है। बुद्धि के हिसाब से अगर पुरुषार्थ करें, तो प्रालब्ध सदा स्थायी रहती है। यह है कर्मों की गुह्य गति का ज्ञान।

योगाभ्यास की विधि...

अब कुछ क्षण के लिए हम योगाभ्यास करने बैठते हैं... अपने ध्यान को सभी बातों से समेटकर स्वयं को आत्म निश्चय कर लें... धीरे धीरे अपने मन और बुद्धि को परमधाम की ओर ले चलें... और परमधाम में स्थित पिता परमात्मा शिवबाबा को अंतर्चक्षु से देखें... मेरे परम मात पिता कितने तेजोमय स्वरूप है... सर्वशक्तिमान हैं... प्रेम के सागर, क्षमा के सागर हैं... मैं स्वयं को कितना खुशकिस्मत महसूस करती हूँ कि इस जन्म में ज्ञान सागर परमात्मा से संसार के पूरे आदि मध्य अन्त का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ... दिव्य चक्षु विधाता ने मेरे ज्ञान के दिव्य चक्षु खोल दिये... जिससे मैं अपने तीनों कालों को स्पष्ट देख सकती हूँ... साथ ही मुझे कर्म की गुह्य गति का ज्ञान भी प्राप्त हुआ और मैं अपने ही कर्म दर्शन कर सकती हूँ... सतयुग और त्रेतायुग के 20 जन्मों में तो मैंने श्रेष्ठ कर्म का प्रालब्ध सर्व प्रकार का सुख भोगा... द्वापरयुग और कलियुग में आते अज्ञानता के कारण मैंने जाने अनजाने-पन में बहुत पाप का खाता इक्ट्ठा कर दिया... अब इस संगमयुग में परमात्मा के सानिध्य में और श्रेष्ठ संग में मुझे अपने श्रेष्ठ कर्म का खाता जमा करना है... परन्तु उसके लिए मुझे

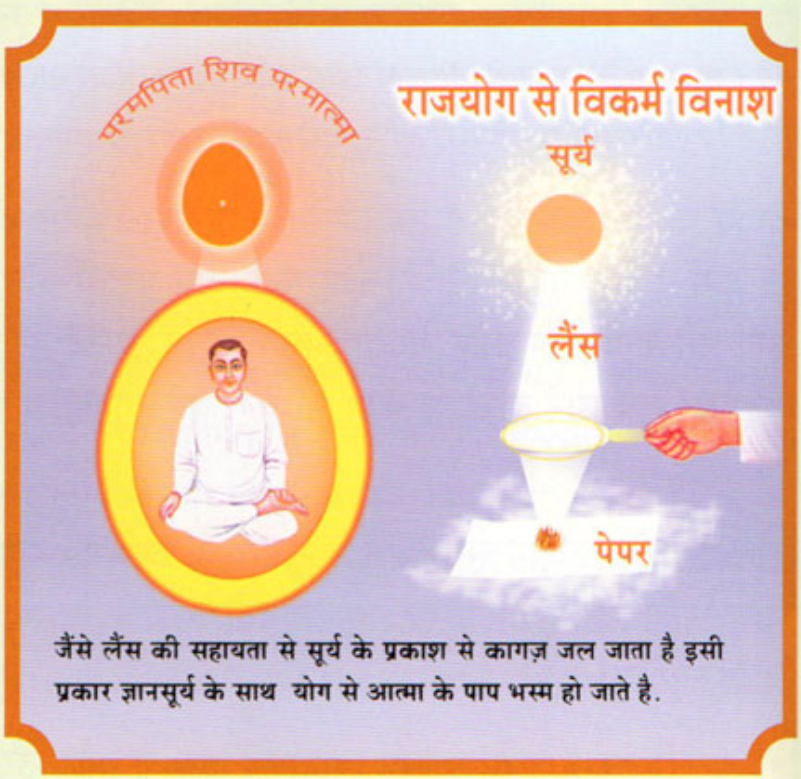

जैसे लैंस की सहायता से सूर्य के प्रकाश से कागज़ जल जाता है इसी प्रकार ज्ञानसूर्य के साथ योग से आत्मा के पाप भस्म हो जाते है.

अपने पिछले पाप कर्म के खाते को समाप्त करना है... और उसके लिए परमात्मा मात-पिता के सम्मुख अपने इस जन्म के देह अभिमान में किये एक-एक पाप कर्म को याद करते हुए अपने पिता परमात्मा से क्षमा मांगती हूँ... क्षमा के सागर परमात्मा मुझे मेरे गुनाहों का क्षमा दान दे रहे हैं... मैं धीरे-धीरे स्वयं को उस बोझ से हल्का होते हुए महसूस कर रही हूँ... और बाकी अनेक जन्मों के पाप कर्मों को भस्म करने लिए मैं बीज स्वरूप शिवबाबा से शक्तिशाली सकाश प्राप्त करती जा रही हूँ... मैं महसूस कर रही हूँ कि मेरे कई जन्मों के पाप कर्म दग्ध होते जा रहे हैं... मुझ आत्मा का मैल धुलता जा रहा है... और मैं स्वच्छ होती जा रही हूँ... धीरे धीरे मेरा स्वरूप निर्मल होता जा रहा है... और मैं स्वयं को एकदम हल्के पन में महसूस कर रही हूँ... मेरे स्वरूप में सतोप्रधानता का निखार आता जा रहा है... मुझमें तेज, ओज दिव्यता का समावेश हो रहा है... मैं पवित्र आत्मा बनती जा रही हूँ... कितना सुन्दर अनुभव है यह... मुझे जागृति आ गई है कि अब मुझे हर कर्म परमात्मा की श्रीमत पर ही करना है... और यथार्थ समझ से बड़ी सावधानी से करना है... अब धीरे-धीरे मैं शुद्ध आत्मा संसार में अवतरित हो रही हूँ... और शरीर में भृकुटी के मध्य में विराजमान होती हूँ... अपने पवित्रता के प्रकम्पन्नों को मैं शरीर की सर्व कर्मेन्द्रियों में प्रवाहित करती हूँ... मेरे अंग अंग शीतल होते जा रहे हैं... और अब इन प्रकम्पन्नों को मुझे अपने हर कर्म में, सम्बन्धों में प्रवाहित करना है... ओम् शांति... शांति... शांति।

सर्व शक्तियों को साथी बना कर
सही समय पर उनका प्रयोग
करने से कार्य में सफलता सहज
प्राप्त होती है।

राजयोग द्वारा अष्ट शक्तियों की प्राप्तियाँ

भारत अध्यात्मप्रधान देश है। यहाँ के लोगों के मन में किसी न किसी रूप में ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा है। प्रतिदिन लोग अपने-अपने धर्मस्थल पर अपनी भावना अर्पित करने जाते हैं। अपने मन को ईश्वर से जोड़ने के लिए विभिन्न विधियों का आधार लिया जाता है। भगवान को कभी देवताओं के रूप में, और कभी देवी या शिव शक्तियों के रूप में याद किया जाता है। इन सब विधि विधानों के द्वारा मानव अपने जीवन में शक्ति को प्राप्त करना चाहता हैं,परन्तु कौनसी शक्ति? यह प्रश्न विचारणीय है।

दुनिया में किसी के पास धन की शक्ति है जिससे वह सुख-सुविधाओं के सारे साधन प्राप्त कर सकता है, परन्तु परिवार में अपने किसी प्रिय व्यक्ति को जब कोई असाध्य बीमारी आ जाती है तो वह महसूस करता है कि यह धन की शक्ति उसके किसी काम की नहीं है। किसी के पास शारीरिक शक्ति होती है लेकिन जब उसका कोई अति प्रिय जीवन की अंतिम सांसें ले रहा होता है तो वह टूटकर बिखर जाता है। इसी प्रकार किसी के पास वाक् शक्ति है और किसी के पास लिखने की शक्ति है लेकिन कई बार वही शक्ति उसके दुःख का कारण बन जाती है। यह भौतिक शक्तियां व्यक्ति को अल्पकाल का सुख या फायदा तो पहुँचा सकती है लेकिन सदाकाल का नहीं। वह हमेशा यही महसूस करता रहता है कि उसमें शक्ति कम है। वह कदम-कदम पर जीवन में संघर्ष करते-करते स्वयं को शक्तिहीन महसूस कर रहा है। वास्तव में वह जिस शक्ति के अभाव से दिलशिकस्त हो जाता है, वह आध्यात्मिक शक्ति है। आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने का एक ही स्त्रोत है, वह है राजयोग का अभ्यास। राजयोग के द्वारा हम ऐसी शक्तियाँ प्राप्त करते हैं जिनसे इस भौतिक जगत में रहते हुए विभिन्न परिस्थितिओं के बीच जीवन को संतुलित रख सकते हैं।

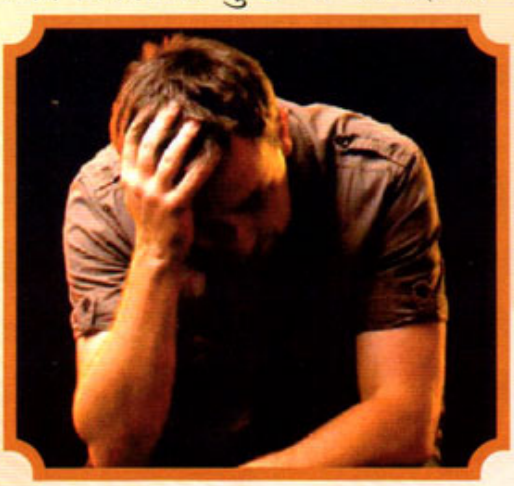

इन शक्तियों को प्राप्त करने के यादगार रूप में भारत में शिव शक्तियों को अष्ट

भुजाधारी दिखाते हैं। इन भुजाओं में शस्त्र रूपी दिव्य अंलकार दिखाये हैं। इन शस्त्रों से उन्होंने किसी असुर का वध नहीं किया परन्तु व्यक्ति के अंदर की आसुरी मनोवृत्तियों को या उसकी कमज़ोरियों को खत्म किया। यही कमज़ोरियाँ व्यक्ति को भीतर से शक्तिहीन और खोखला कर देती हैं। इन्हीं कमज़ोरियों के कारण वह कई बुराइयों के वश हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप वह जीवन में स्वयं प्रति और अपने सम्बन्धों में अनेक समस्याओं और परिस्थितियों का निर्माण कर लेता है।

इसलिए भक्ति में शिव शक्तियों को अष्ट भुजाधारी और रावण को दस सिरों वाला

दिखाया है। भुजा मददगार का प्रतीक है, किसी से कभी भी कोई मदद चाहिए तो कहा जाता है कि हाथ बढ़ाओ। रावण के सिर, अंहकार का प्रतीक हैं, जब किसी को अभिमान आ जाता है तो कहा जाता हैं कि यह व्यक्ति अभिमान में सिर ऊपर लिए घूम रहा है। यह अंहकार ही सर्व बुराइयों और सर्वसमस्याओं की जड़ है। इन बुराइयों को समाप्त करने लिए दिव्य शक्तियों की आवश्यकता है। तभी तो नवरात्रि के बाद दशहरे का त्यौहार आता है। भावार्थ यह है कि शिव शक्तियों ने दिव्य शक्तियों से बुराइयों पर विजय प्राप्त की। वास्तव में सर्वशक्तिमान परमात्मा ही सर्वोत्तम गुणों और शक्तियों का स्त्रोत है। मनुष्य जब स्वयं को आत्मा निश्चय कर अपने मन को उस निराकार परमपिता परमात्मा शिव में एकाग्र करता है तो इस योगाभ्यास से पवित्रता, शान्ति, शक्ति, आनन्द आदि की प्राप्ति होती है। यह सर्वोत्तम योग हमें कई प्राप्तियां सहज कराता है।

राजयोग से जीवन में लाभ:-

राजयोग से व्यक्ति अपने जीवन में त्रि-आयामी (three dimensional) रूप से प्राप्तियों

का अनुभव कर सकता है, जो इस प्रकार हैं :-

1. **स्वयं में**:- व्यक्ति अपने मन को शांत और सन्तुलित रखने की विधि सीख लेता है जिससे कई प्रकार के तनाव, नकारात्मक भावनाओं एवं कमजोरियों से मुक्त हो जाता है। वह स्वयं में आत्म सन्तुष्टि का अनुभव करता है।

2. **सम्बन्धों में**:- इस योग से व्यक्ति में सद्‌गुण विकसित होते हैं और उसे यह समझ आ जाती है कि हर व्यक्ति में कोई न कोई विशेषता है तो एक दूसरे में दोष-दर्शन के बजाय गुण-दर्शन करने लगता है जिससे आपसी सम्बन्ध मधुर हो जाते हैं और व्यक्ति व्यवहार कुशल हो जाता है।

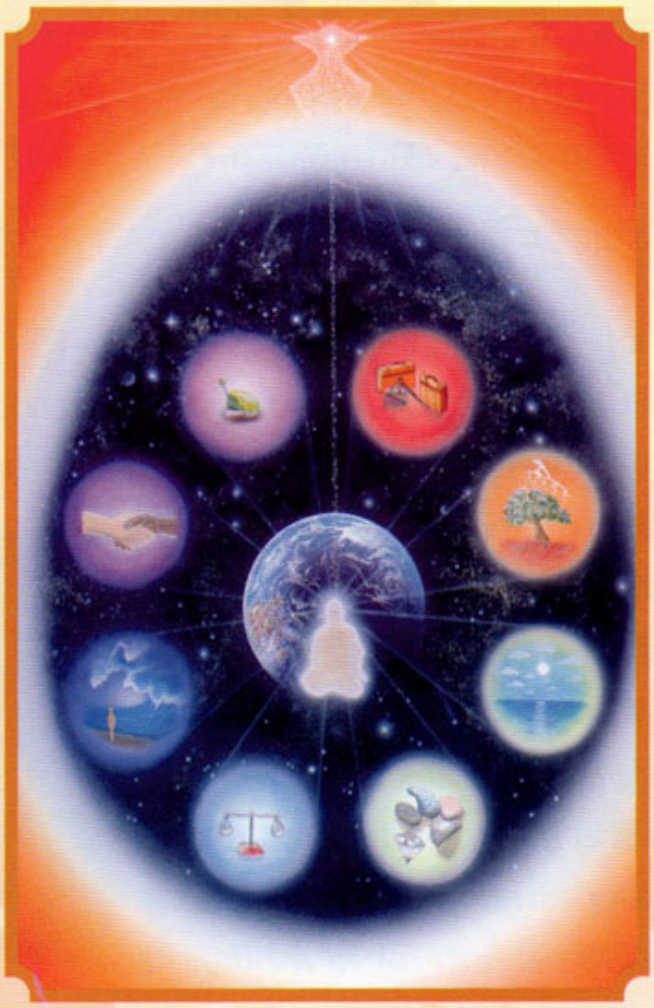

3. **परिस्थिति और समस्याओं में**:- मनुष्य के जीवन में समय प्रति समय अनेक चुनौतियां आती रहती हैं जिन्हें धैर्य और साहस से पार करना होता है। योगाभ्यास द्वारा व्यक्ति अपने में अनेकों आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करता है और जब वह योगभ्यासी मानव सही समय पर सही शक्ति का प्रयोग करता है तब वह अपने जीवन को निर्विघ्न बना सकता है।

जीवन में इन अष्ट शक्तियों की बहुत आवश्यकता होती है क्योंकि यह हमारे जीवन के अलग-अलग पहलुओं को सन्तुलित करने में विशेष सहायक होती हैं और जीवन का मूल आधार बन जाती हैं। इन शक्तियों के माध्यम से ही व्यक्ति अपने पारिवारिक, सामाजिक और व्यवसायिक जीवन में संतुलन रख पाता है। इनके अभाव में वह टूटकर बिखर जाता है और स्वयं को व अपने सम्बन्धों को संभालने में नाकाम रहता है।

इन अष्ट शक्तियों को विकसित करने लिए हमें गुणों की धारणा करना आवश्यक है तभी हम अपने जीवन में रही हुई कमज़ोरियों या बुराइयों के ऊपर विजयी हो सकते हैं।

1. सहनशक्ति को विकसित करने लिए प्रेम और क्षमा का गुण आवश्यक है, तभी हम क्रोध रूपी शत्रु पर विजयी हो सकते हैं।

सहनशक्ति एक महान शक्ति है जिन्होंने सहनशक्ति को धारण किया है वह जीवन में महानता के शिखर पर पहुँच जाते हैं। विश्व में जो भी महान हस्तियां हुई हैं वे अपने जीवन में बहुत कुछ सहन करके ही सफलता के शिखर पर पहुँची हैं। सहनशीलता दो शब्दों से मिल कर बना है सहन + शीलता। शील का अर्थ है चरित्र। व्यक्ति जब सहन करता है तो उसका शील निखरता है, यानि चरित्र निखरता है, और तब व्यक्ति में वह शक्ति बनकर उसे महानता के शिखर पर पहुँचाता है।

उदाहरण के लिए जैसे महात्मा बुद्ध की कहानी को देखिए–

''एक बार महात्मा बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे थे और एक व्यक्ति आकर उन्हें खूब गालियां देने लगा। एक घण्टे तक गालियां देता रहा लेकिन महात्मा बुद्ध शांति में बैठे रहे। एक घण्टे के बाद उस व्यक्ति ने महात्मा बुद्ध से पूछा कि आपने सुना मैंने क्या कहा, तब महात्मा बुद्ध ने कहा भाई अगर आपको मैं कोई चीज़ दूं लेकिन वह चीज़ आपके कोई काम की न हो और आप उसे स्वीकार न करो तो किसके पास रहेगी, उस व्यक्ति ने कहा वह तो मेरे पास ही रहेगी। तब महात्मा बुद्ध ने कहा कि आपने भी मुझे जो एक घण्टा दिया वह एक भी बात मेरे काम की नहीं थी इसलिए मैंने उसे स्वीकार नहीं किया है। जब उस व्यक्ति को यह महसूस हुआ कि अगर इन्होंने मेरी दी हुई एक भी गाली स्वीकार नहीं की तो उसका मतलब तो यह हुआ कि वह सारी गालियां मेरे पास ही रहीं मानों मैं अपने आप को ही गाली दे रहा था। वह व्यक्ति शर्मिंदा हो गया और वह झूक गया और महात्मा बुद्ध का अनन्य शिष्य बन गया।''

कहने का भाव है कि दूसरों को झुकाने का आधार भी हमारी सहन शक्ति है। व्यक्ति

सहन तभी कर सकता है जब उसके मन में सामने वाले के प्रति स्नेह-प्यार हो और क्षमा भाव हो। महात्मा बुद्ध के मन में मानवता के प्रति प्यार था और क्षमा भाव था। परन्तु जब व्यक्ति के पास सहन करने की शक्ति नहीं होती है तो उसे क्रोध आ जाता है यानि वह क्रोध रूपी कमज़ोरी का शिकार हो जाता है। कई बार लोग कहते हैं कि कोई कब तक सहन करे? आखिर सहन करने की भी हद तो होती है ना। कोई बार-बार गलती करता जाए और हम सहन करते ही रहें। फिर भी 10 बार तो माफ कर देते लेकिन जब 11 वीं बार भी वही गलती करेगा फिर तो गुस्सा आयेगा ही ना। लेकिन सोचने की बात है कि 10 बार जो आपने सहन किया वह आप ही जानते हो और 11 वीं बार जो गुस्सा किया वह दस लोग देखते हैं, तो वे यही सोचेंगे कि इतनी छोटी सी बात भी आप सहन नहीं कर सके। उनको थोड़े ही पता था कि आप दस बार सहन कर चुके हैं तो 11 वीं बार का गुस्सा करना यह आपके शील पर एक दाग लगा देता और लोग यही कहते हैं इसमें सहन करने की शक्ति नहीं, छोटीसी बात को लेकर कितना गुस्सा करते हैं इसलिए सहन करने की कोई हद या सीमा नहीं होती। आज प्रकृति से भी हम यह बात सीख

सकते हैं– जैसे फलों से लदा पेड़ सदा झुका हुआ होता है और अपनी शीतलता की छांव सब राहगीरों को देता है। जब बच्चे आते हैं और वह फल प्राप्त करने के लिए पत्थर मारते हैं, एक-एक पत्थर को सहकर भी वह पेड़ मीठे फल ही देता है। याद रखने वाली बात यह है कि जिस पेड़ पर फल होगा उसे ही पत्थर सहन करने पड़ते हैं, जिस पेड़ पर फल ही न हों उसे कौन पत्थर मारने जायेगा। ऐसे ही संसार में उसी व्यक्ति को सहन करना पड़ता जिनके जीवन में कुछ अच्छाईयों रूपी फल हों। लोंगो को भी आपकी अच्छाई रूपी फल चाहिए तभी तो वह गाली रूपी पत्थर मारते हैं जिसके जीवन में कोई अच्छाई ही न हो उनको कोई कुछ कहने भी नहीं जाता है। इसलिए व्यवहार में जब हमें भी कुछ सहन करना पड़ता है तो हमें यही विश्लेषण करना है कि उस व्यक्ति को हमसे कौनसी अच्छाई का फल चाहिए। जब हम अपने अंदर यह सकारात्मक भाव विकसित करेंगे तब उसे सहन करना महसूस नहीं होगा, गुस्सा नहीं आयेगा लेकिन स्नेह-प्यार से उसे क्षमा कर सकेंगे। व्यक्ति में जब सहन करने का भाव

आ जाता है तो स्वयं में अथाह शक्ति आ जाती है। इसलिए इसे सहनशक्ति कहा जाता है। दुनिया में हर महान व्यक्ति के जीवन में देखें तो इसी शक्ति ने उसे महान बनाया है, चाहे वह महात्मा गांधी हो, क्राईस्ट हो, राम कृष्ण परमहंस हो, भक्त नामदेव हों या कोई भी हो। जिस तरह एक मूर्तिकार जब मूर्ति बनाता है तो एक-एक हथौड़ा और छैनी को सहन करके ही पत्थर पूजनीय मूर्ति बनती है और मंदिर में प्रतिष्ठित होती है। तब उन पर फूल-हार चढ़ाए जाते हैं। कहने का भाव यह है कि सहन करने वाले ही अनेकों के मान-सम्मान को प्राप्त करने के पात्र बन जाते हैं।

2. समाने की शक्ति को विकसित करने लिए गम्भीरता एवं हृदय की विशालता का गुण चाहिए जिससे हम ईर्ष्या रूपी दुर्जय शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सहनशक्ति के साथ दूसरी महत्वपूर्ण शक्ति है समाने की शक्ति। वास्तव में यह समाने की शक्ति सहनशक्ति की ही पूरक है क्योंकि उसके बिना सहनशक्ति का कोई मूल्य नहीं होता है। कई बार कई लोग सहन तो कर लेते, यह उनकी महानता है लेकिन वह बात स्वयं में समा नहीं सकते तो भी जीवन में कई समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। उदाहरण के तौर पर -

''जैसे किसी घर में सास- बहू होती हैं। एक ने कहा दूसरे ने माना उसका नाम है ज्ञानी। परन्तु यदि कभी सास ने बहू को कुछ खरी खोटी सुना दी, और बहू ने सहन कर लिया, यह उसकी महानता है लेकिन वह अपने दिल में उन बातों को समा नहीं सकी और पड़ोस में जाकर उसने अपनी सास की बातों के बारे में सुना दिया। साथ ही यह भी बताया कि उसे कितना सहन करना पड़ता है। अब वह बहू तो अपना सारा मन का बोझ हल्का करके चली गई। परन्तु जैसे वह बाहर गई तब मौका देखकर पड़ोसी उसकी सास को सलाह देने जाते हैं और बड़ी सहानुभूति के साथ सास को समझाने लगते हैं कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। तब सास को आश्चर्य होता है कि पड़ोसी को कैसे पता चला ! वह

उन्हें पूछती है कि उन्हें कैसे पता कि क्या हुआ था, तब वही पड़ोसी कहते हैं कि उनकी बहू ने आकर अपना दिल हल्का किया और उन्होंने उसे भी समझाया है। अब पड़ोसी तो सलाह देकर चले गये। उस सास ने उस वक्त कुछ कहा नहीं, परन्तु जैसे ही बहू घर में आती है तो वह उस बात को लेकर बहू पर बरस पड़ती है और घर में फिर एक तमाशा खड़ा हो जाता है। बहू ने सहन किया था वह उसकी महानता थी, परन्तु वह अपने में समा नहीं सकी इसलिए आग में घी डालने जैसा हो गया।''

कहने का भाव है कि सहन करने के साथ-साथ हर बात को समाना भी बहुत-बहुत आवश्यक है अन्यथा सम्बन्धों को सुमधुर नहीं रखा जा सकता।यह हमारे पारिवारिक जीवन में कलह-क्लेश का कारण बन जाता है। एक बार सम्बन्धों में आई दूरी को पुनः ठीक करना बहुत मुश्किल हो जाता है। जैसे घर में माँ अपने बच्चे की गल्तियों को तो सबसे छिपाती है और समा लेती। वास्तव में समाने की शक्ति के लिए दो गुणों को धारण करना जरूरी है तब समाना आसान हो जाता है। जैसे सागर हर नदी के किचड़े वाला पानी समाता है। वह कभी नदियों से यह नहीं कहता कि आप अपना किचड़ा मुझमें नहीं डालो। परन्तु उस किचड़े को सागर अपने में भी नहीं रखता, अपितु भारी चीज़ को वह अपने भूगर्भ में समा लेता है और हल्के किचड़े को किनारे पर फेंक देता। सागर की विशालता और गम्भीरता के कारण ही उसमें से कीमती रत्न और मोती प्राप्त होते हैं। हम भी समाने की शक्ति को त्रभी विकसित कर सकते हैं जब हृदय में सागर जैसी विशालता और स्वभाव में गम्भीरता हो। कई लोग अपने किचड़े जैसी बातें डालने आयेंगे लेकिन उसमें से ग्रहण करने जैसी बात को धारण करके निकम्मी चीज़ों को अनसुना कर देना है। उसे दिल में धारण कर अपने मूड को खराब नहीं करना है। इस समाने की शक्ति से ही हम अपने जीवन का मूल्य समाज में बढ़ा सकते हैं। इस बात पर एक दृष्टांत अवलोकनीय है:-

''एक खिलौने बेचने वाला था। उसके पास तरह-तरह के खिलौने थे। वह रोज़ बाजार में अपने खिलौने बेचता था। एक दिन उसके सारे खिलौने बिक गये लेकिन उसके

पास तीन गुड़िया थी जिन्हें किसी ने नहीं खरीदा तब वह बड़ा उदास होकर आवाज़ लगा रहा था, कि शायद इन्हें कोई खरीद ले। उतने में एक सेठ वहां से गुजर रहा था। उसने खिलौने वाले से पूछा कि इन तीन गुड़ियों की कीमत क्या है ? खिलौने बेचने वाले ने एक गुड़िया दिखाकर कहा कि यह गुड़िया दस रुपये की है, फिर दूसरी दिखाकर कहा कि यह सौ रुपये की है और तीसरी दिखाकर कहा कि वह एक हज़ार रुपये की है। सेठजी चकित होकर देखने लगे और बोले कि दिखने में तो तीनों एक जैसी हैं फिर यह दाम अलग-अलग क्यों ? खिलौने वाले ने एक तार लिया और पहले वाली गुड़िया के एक कान में तार डाला तो वह मुख से निकला, फिर दूसरी गुड़िया उठायी और उसके एक कान से तार डाला तो दूसरे कान से निकल गया, और फिर तीसरी गुड़िया उठायी और उसके कान में तार डाला और वह पेट में चला गया। खिलौने वाले ने उस सेठ को बताया कि जो पहली गुड़िया है जिसके कान से तार डाला और मुख से निकल गया वह उस व्यक्ति का प्रतीक है जो सुनी-सुनाई बातों को सुनकर उसमें मिर्च-मसाला डालकर चटपटी बनाकर दूसरों को सुनाती है। इसलिए उसका मूल्य बहुत कम सिर्फ दस रुपया है। दूसरी गुड़िया, जिसके एक कान से तार डालने पर दूसरे कान से निकल गया उसका मूल्य थोड़ा अधिक है क्योंकि वह दूसरों की सुनी सुनाई बातों पर ध्यान नहीं देती, परन्तु वह दूसरों की अच्छी बातों पर भी ध्यान नहीं देता। लेकिन तीसरी गुड़िया जिसके कान से तार पेट में समा जाता है उसका दाम सबसे अधिक है क्योंकि वह किसी की भी बातों को सुनते हुए अपने में समा लेती है, कभी किसी की निन्दा नहीं करती और ग्रहण करने वाली बातों को अपने में धारण कर लेती है। यह सुनकर वह सेठ बहुत खुश हो गया और वह तीनों गुड़ियों को लेकर चला गया।''

कहने का भाव यह है कि अगर कोई किसी की भी बातों को सुनकर उसे फैलाने के बजाय अपने में समा ले वह व्यक्ति सबसे अमूल्य होता है। यह समाने की शक्ति बहुत आवश्यक है। लेकिन कहाँ समाना है, कितना समाना है और किस विधि से समाना है यह समझ भी जरूरी है। कई बार कई लोग किसी बात से परेशान होते हैं और वह समझते

हैं कि अपने किसी दोस्त को सुनाने से वह कोई हल सुझायेगा और वह अपने दोस्त को बड़े विश्वास के साथ सुनाता है और उसका दोस्त वायदा करता है कि वह उसकी बात किसी से नहीं कहेगा। अब उस दोस्त का भी एक खास दोस्त होता है जिसे वह इस दोस्त की बात सुनाते हुए कहता है कि आप किसी से कहना नहीं और इस तरह वह बात धीरे-धीरे फैल जाती और जब वह बात घूम कर इसी व्यक्ति के पास आती है तो उसे बड़ा धक्का लगता है। वह सोचता है कि आज की दुनिया में कोई विश्वास पात्र नहीं हैं, किसी पर भरोसा नहीं कर सकते। लेकिन सोचने की बात तो यह है कि वह व्यक्ति खुद की पर्सनल बात अपने पेट में नहीं समा सका और उनके बत्तीस दातों के बीच से निकल गई तो क्या गैरंटी है कि उसके दोस्त के पेट से नहीं निकलेगी। उसकी तो अपनी बात भी नहीं है, वह तो दूसरों को सुनायेगा ही। कहने का भाव यही है कि आज की दुनिया में कोई किसी की बात अपने में समा नहीं सकता। समाने की शक्ति से ही व्यक्ति सबका प्रिय पात्र बन जाता है। हृदय की विशालता और गम्भीरता के गुण को धारण करने से हम समाने की शक्ति को विकसित कर सकते हैं और इससे ईर्ष्या रूपी दुर्गुण को जीवन में से समाप्त कर सकते हैं। जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए और सबका प्रिय बनने लिए या सबका विश्वास जीतने लिए इस शक्ति को धारण करने की बहुत आवश्यकता है।

3. परखने की शक्ति को विकसित करने के लिए ज्ञानयुक्त या विवेकयुक्त बुद्धि और विचारों की स्पष्टता चाहिए जिससे मोह के महाजाल में फंसने से बच जायेंगे।

आज के बदलते हुए परिवेश में मनुष्यों की वृत्तियों में भी बहुत परिवर्तन होता जा रहा है। ऐसे समय में कई बार लोग जुबान से बहुत मीठे होते हैं और अपनी मीठी-मीठी बातों में दूसरों को प्रभावित कर लेते हैं। जो लोग उनकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं उन्हें

अंत में धोखा मिल जाता हैं। तब वह बहुत दुखी हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि आज व्यक्ति में परख शक्ति की कमी है। कलियुग के इस दौर में व्यक्ति को एक हंस के समान बुद्धि धारण करनी चाहिए। जैसे हंस नीर और क्षीर को अच्छी तरह परख लेता, मोती और कंकड़ को परखते हुए अलग कर देता, वैसे ही मनुष्यों को अपनी बुद्धि स्पष्ट और स्वच्छ बनानी होगी। जिस तरह एक जौहरी असली और नकली हीरे को परख कर उसकी कीमत निर्धारित करता है, क्योंकि उसके पास हीरे का ज्ञान है। उसी तरह परखने की शक्ति से व्यक्ति किसी भी प्रकार के धोखे से बचकर जीवन में आगे बढ़ सकता है, परन्तु उसके लिए बुद्धि को पवित्र और ज्ञानयुक्त बनाने की आवश्यकता है। आध्यात्मिक ज्ञान या विवेक ही हमारी बुद्धि में ऐसी समझ भरकर उसमें से व्यर्थ या नकारात्मकता का किचड़ा साफ कर उसकी धार को तेज़ करता है जो वह चालाकी करने वाले मनुष्य की बातों में छिपे हुए भाव को समझ लेता है। इस बात को और स्पष्ट करने के लिए एक कहानी प्रस्तुत है:-

''एक गरीब लड़का कहीं जा रहा था, उसे रास्ते में एक चमकता हुआ पत्थर दिखाई दिया। उसने वह पत्थर उठा लिया और सोचने लगा कि इस पत्थर को छेद कर अपने गधे के गले में रस्सी से बांध कर लटका देगा। उसने ऐसा ही किया और अपने गधे पर बैठ कर चलने लगा। रास्ते में एक जौहरी जा रहा था वह गधे के गले में चमकते पत्थर को देख समझ गया कि यह तो कीमती हीरा है। उसने लड़के को पूछा कि यह गधे के गले में क्यों पहनाया ? उसे बेचने से पैसे मिल जाते। लड़के ने पूछा कि इस पत्थर को कौन खरीदेगा ? जौहरी ने कहा कि तुम मुझे दे दो तो मैं तुम्हें सौ रुपया दूंगा। लड़के ने सोचा कि अगर वह व्यक्ति सौ रुपया दे रहा है तब तो यह कीमती होगा। उसने कहा कि नहीं मुझे तो दो सौ रुपया चाहिए। आप मुझे दो सौ रुपया दो। जौहरी ने सोचा कि मैं मना कर दूंगा तो वह

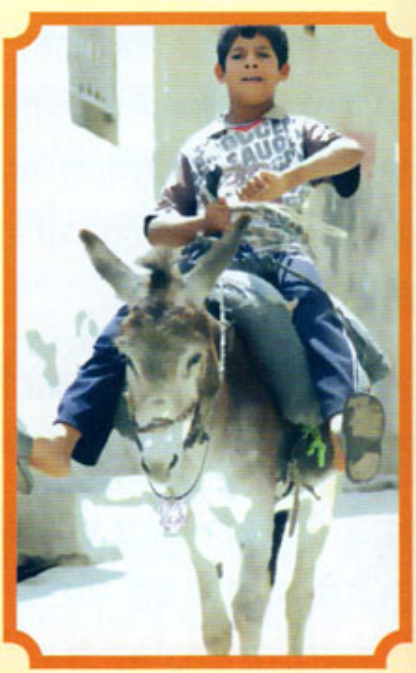

लड़का मुझे सौ रुपये में ही दे देगा। उसने मना कर दिया तो वह लड़का अपने गधे के साथ आगे बढ़ गया। वह एक सराय पर रुका तो वहां एक दूसरे जौहरी ने गधे के गले में वह हीरा देखा तो उसने उस लड़के से पूछा कि तुम यह पत्थर बेचोगे ? तो लड़के ने कहा कि देखो यह पत्थर मैं दो सौ रुपये में बेचूंगा एक रुपया भी कम नहीं लूंगा, लेना हो तो बोलो। जौहरी ने तुरन्त उसे दो सौ रुपया देकर उससे वह हीरा ले लिया और खुश होकर जाने लगा। उतने में पहले जौहरी ने सोचा कि कहीं और कोई उसे खरीद न ले उससे तो मैं दो सौ में ही खरीद लेता हूँ। वह दौड़ते हुए लड़के को पुकारते हुए पीछे से आया और लड़के को कहने लगा ठीक है लो मैं तुम्हें दो सौ रुपया देता हूँ तुम मुझे वह पत्थर दे दो। तब उस लड़के ने कहा कि वह तो मैंने एक सज्जन को दो सौ में बेच दिया। तो वह जौहरी अपना सिर पकड़ कर कहने लगा, अरे मूर्ख ! वह हीरा था जो बहुत ही कीमती था और तूने उसे दो सौ रुपये में ही दे दिया। उस लड़के ने कहा कि मुझे तो ज्ञान नहीं था कि वह हीरा है और उसकी कीमत कितनी है, परन्तु तुम्हारे पास तो ज्ञान था, फिर भी तुमने गंवाया सिर्फ सौ रुपये के कारण, तो मुर्ख मैं हूँ या तुम ?''

कहने का भाव है कि कभी-कभी हमारे पास सही ज्ञान न होने कारण हम सही वक्त पर किसी बात को परखते नहीं और फिर नुकसान को भोगते हैं। जितनी हमारे अंदर पारदर्शिता होती है या हमारी बुद्धि शुद्ध एवं पवित्र होती है उतना ही हम हर बात की या परिस्थिती की सच्चाई को स्पष्ट देखते हुए उसे परख लेते हैं और जीवन में उसका लाभ उठाते हुए आगे बढ़ सकते हैं। कभी-कभी यही परख शक्ति न होने कारण व्यक्ति अच्छे अवसर हाथ से गंवा देता है और जब दूसरे उस अवसर का लाभ ले लेते तब हम हाथ मलते रह जाते हैं। अक्सर व्यक्ति में परख शक्ति की कमी इसलिए होती है क्योंकि मोह में उसका तीसरा नेत्र ही बंद हो जाता है। जैसे धृतराष्ट्र मोह में अंधा था तो वह सत्य - असत्य, भलाई - बुराई, न्याय - अन्याय के बीच यथार्थ परख नहीं सका था इसलिए वह पाण्डवों के साथ न्याय नहीं कर पाया। कहने का भाव है कि कभी-कभी व्यक्ति अपने स्वार्थ में अंधा होता है या मोह जाल में इस तरह फंसा होता है कि उसे यह भी समझ नहीं रहती कि सही बात को न परखने से दूसरों के प्रति अन्याय करके उन्हें कितना कष्ट पहुँचाता है।

4. निर्णय शक्ति को विकसित करने लिए मन की एकाग्रता एवं बुद्धि का सन्तुलन चाहिए। व्यक्ति का अंहकार ही उसे सही निर्णय नहीं लेने देता।

आज दुनिया में हर व्यक्ति जीवन में सफल होना चाहता है। परन्तु उसके सामने इतनी

चुनौतियां हैं जो उन चुनौतियों के बीच रहकर हर परिस्थिति में, हर समस्या में सही निर्णय लेकर सफलता पाना सम्भव नहीं होता। जिस तरह एक तराज़ू में कुछ भी रखो तो उसका सही निर्णय तभी मिलता है जब उसका बीच का कांटा एकाग्र होता है। अगर वह किसी तरफ झुका होता है तो उसका निर्णय यथार्थ नहीं होता। ऐसे ही जब मन का कांटा एकाग्र होता है तब व्यक्ति कैसी भी परिस्थिति में यथार्थ निर्णय ले सकता है। जैसे एक धनुर्धर जब निशाने पर तीर छोड़ता है और उसी वक्त उसका थोड़ासा अंगुठा हिल जाए तो तीर निशाने पर नहीं लगता है। वैसे ही चुनौती के वक्त अगर हमारी बुद्धि हलचल में आ जाती है या तनाव के कारण अंदर का सन्तुलन बिगड़ जाता है तो भी यथार्थ निर्णय नहीं ले सकते। किसी ने सही कहा है कि चुनौती हर व्यक्ति के सामने आती है परन्तु किसी-किसी के लिए यही चुनौती अवसर के द्वार खोल देती है और किसी-किसी के लिए यही चुनौती उसे पछाड़कर जीवन में अधोगति को प्राप्त कराती है। अक्सर करके दुनिया में देखा गया है कि चुनौती के वक्त जो लोग सही निर्णय ले लेते उनके लिए अवसर के द्वार खुल जाते हैं और चुनौती के वक्त जो व्यक्ति गलत निर्णय ले लेता है उसको असफलता मिलती है। अब व्यक्ति को सही या गलत निर्णय का आधार उसके मन और बुद्धि की एकाग्रता और सन्तुलन पर होता है। अगर व्यक्ति का मन-बुद्धि तनाव से ग्रसित है या नकारात्मक और व्यर्थ विचारों से ग्रसित है तो वह सही-गलत को पहचान नहीं सकता। परिणाम स्वरूप गलत निर्णय लेकर उसे कभी-कभी बड़ा नुकसान झेलना पड़ता है। मनुष्य अगर अपने अनुभव के आधार से विवेकयुक्त बुद्धि से निर्णय लेता है तो सफल हो जाता है।

इस बात के सम्बन्ध में एक कहानी है जो इस प्रकार है:-

''एक बंजारा था। वह बैलों पर मुल्तानी मिट्टी लादकर दिल्ली की तरफ जा रहा था। रास्ते में कई गांवों से गुजरते समय उसकी बहुत सी मिट्टी बिक गयी। बैलों की पीठ पर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलों की पीठ पर कैसे टिकते ? क्योंकि भार एक तरफ हो गया। नौकरों ने पूछा कि क्या करें ? बंजारा बोला अरे

सोचते क्या हो, बोरों के एक तरफ रेत भर लो। यह राजस्थान की ज़मीन है, यहाँ रेत

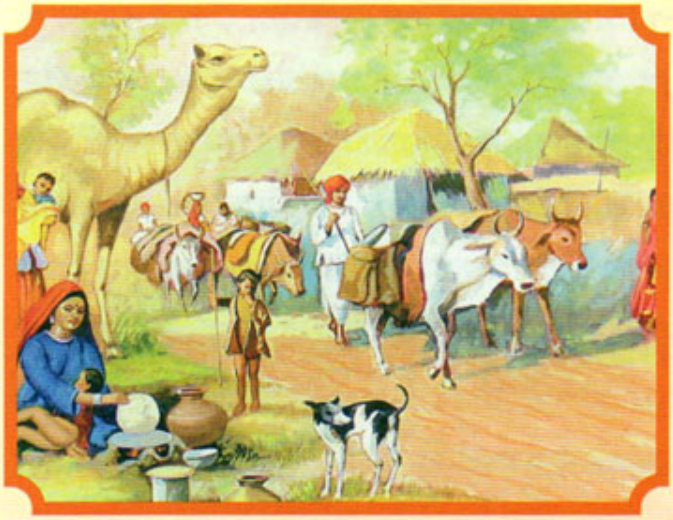

बहुत है। नौकरों ने वैसा ही किया। बैलों की पीठ पर एक तरफ आधे बोरे में मुल्तानी मिट्टी हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरे में रेत हो गई। दिल्ली से एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलों पर लदे बोरों में एक तरफ रेत झरते हुए देखी तो वे बोले कि बोरों में एक तरफ रेत क्यों भरी है ? नौकरों ने कहा सन्तुलन बनाने के लिए। वे सज्जन बोले – अरे, यह तुम क्या मूर्खता करते हो ? तुम्हारा मालिक और तुम एक जैसे ही हो। बैलों पर मुफ्त में ही भार ढोकर उनको मार रहे हो। मुल्तानी मिट्टी के आधे- आधे दो बोरों को एक ही जगह बांध दो तो कम- से- कम आधे बैल तो बिना भार के खुले चलेंगे। नौकरों ने कहा आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। आप जाकर हमारे मालिक से यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह बंजारे से मिला और उससे बात कही। बंजारे ने पूछा कि आप कहाँ के हैं ? उसने कहा कि मैं भिवानी का रहने वाला हूँ। रुपये कमाने के लिए दिल्ली गया था। कुछ दिन वहां रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। व्यापार में घाटा पड़ गया। पास में कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिए। उसकी बात सुनकर बंजारा नौकरों से बोला कि इनकी सम्मति मत लो। जैसे चल रहे हो वैसे चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दिखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता, अगर ठीक निकलता तो ये धनवान हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दिखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काम में घाटा नहीं खाया। बंजारा अपने बैलों को लेकर दिल्ली पहुँचा। वहां उसने ज़मीन खरीद कर मुल्तानी मिट्टी और रेत दोनों को अलग- अलग ढेर लगा दिया और नौकरों से कहा कि बैलों को जंगल में ले जाओ और जहाँ चारा- पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे ? मुल्तानी मिट्टी बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्ली का बादशाह बीमार हो गया। वैद्य ने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थान के रेत पर सोये तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेत में शरीर को निरोग करने की शक्ति होती है। अतः बादशाह को राजस्थान भेजो। वज़ीर ने कहा कि राजस्थान क्यों भेजें, वहाँ की रेत यहीं मँगा लो। रेत लाने के लिए ऊंट भेजो। तब किसी ने कहा कि ऊँट क्यों भेजें, यही

बाज़ार में रेत मिल जायेगी। बाज़ार में कैसे मिल जायेगी ? अरे यह दिल्ली का बाज़ार है, यहाँ सब कुछ मिलता है। मैंने एक जगह रेत का ढेर लगा हुआ देखा है। एक सिपाही ने कहा। अच्छा, तो फिर जल्दी रेत मँगवा लो। बादशाह के आदमी बंजारे के पास गये और उससे पूछा कि रेत क्या भाव है ? बंजारा बोला कि चाहे मुल्तानी मिट्टी खरीदों, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलों पर बराबर तोलकर आयें हैं। बादशाह के आदमियों ने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बंजारा दिल्ली से आये उस सज्जन की बात मानता तो ये मुफ्त के रुपये कैसे मिलते ? इससे सिद्ध हुआ कि बंजारे की बुद्धि ठीक काम करती थी।''

कहने का भाव है कि व्यक्ति जब अपने सफलता वाले अनुभवों के आधार पर एकाग्रता से विवेकयुक्त बुद्धि से निर्णय लेता है तब वह सही दिशा में आगे बढ़ता है। परन्तु जब व्यक्ति अपने अंहकार के वश में होता या अपने अंहकार को पालते रहतां है तब वह समझदार होने के बाद भी गलत निर्णय ले लेता है। कहने का भाव है कि जब मनुष्य अपनी विवेकयुक्त बुद्धि से परिस्थिति को परखते हुए सही निर्णय लेता है तब वह अंहकार रूपी शत्रु को मारकर अपनी मंज़िल की ओर सफलता पूर्वक कदम बढ़ाता हैं। जिस तरह सहनशक्ति और समाने की शक्ति एक दूसरे के पूरक है वैसे परख शक्ति और निर्णय शक्ति भी एक दूसरे के पूरक है और मनुष्य जीवन में यह महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं।

5. निर्भयता एवं साहस के गुण से सामना करने की शक्ति को विकसित करके अनेक प्रकार की कामनाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

समय प्रति समय मानव जीवन में अनेक परिस्थितियां और समस्यायें आती रहती हैं जिसका सामना करके पार करना होता है। कभी-कभी मनुष्य इसी उलझन में रहता है कि ऐसे समय में वह उसे सहन करे या सामना करके पार करे। जीवन में सहनशक्ति और सामना करने की शक्ति,इन दोनों शक्तियों की बहुत आवश्यकता है। आध्यात्मिकता हमें बुज़दिल नहीं बनाती कि हर बार हमें ही सहन करना है, लेकिन यह ज्ञान होना भी आवश्यक है कि कब सहन

करना है और कब सामना करना है। जब यह समझ नहीं होती है तब व्यक्ति सहन करने के बदले सामना करता और सामना करने समय सहन करके बैठ जाता। इस कारण वह ज्यादा परेशानी में आ जाता है और कभी-कभी अपनी समस्याओं को और विकट बना देता है। वास्तव में सहन व्यक्तिओं को करना होता है और सामना परिस्थितियों का या समस्याओं का करना होता है। मनुष्य अपने जीवन में अक्सर यही गलती करता है कि व्यक्तियों का सामना करता है और परिस्थितियों को सहन करके हिम्मतहीन हो जाता है। उसका मुख्य कारण यही है कि व्यक्तियों से उसकी अनेक कामनायें होती हैं और जब वह पूरी नहीं होती तब आवेश में आकर वह उनका सामना करके उन्हें भयभीत करके भगाना चाहता है। ताकि वह व्यक्ति उसकी कमज़ोरी को जान न लें और परिस्थितियों का सामना करने की हिम्मत इसलिए नहीं होती क्योंकि उसे यह भय सताता है कि अब यह परिस्थितियाँ उसकी कामनाओं को पूरा होने नहीं देंगी इसलिए वह उन परिस्थितियों से सहन करके भागना चाहता है या उनसे पलायन करना चाहता है। तभी मनोचिकित्सकों ने मनुष्य की मुख्य दो वृत्तियों पर अधिक जिक्र किया है। एक है सामना करना, दूसरी है पलायन करना (fight or flight)। व्यक्तियों को सहन करने का भाव यह है कि मान लो एक व्यक्ति ट्रेन से कहीं जा रहा है और उसने पहले से ही अपना आरक्षण करवा लिया है। लेकिन उसे यह पता नहीं कि दिन के समय सीट आरक्षित नहीं रहती है और दिन के समय उस ट्रेन में धीरे-धीरे भीड़ हो जाती है। लोग उस डिब्बे में जब उस व्यक्ति को लेटे हुए देखते हैं तब वे आकर उसे गाली देकर उठाने लगते हैं। अब वह व्यक्ति आवेश में आकर उनकी गाली के जवाब में चार गाली दे देता है। और वे लोग आठ गाली दे देते हैं। धीरे-धीरे बात बिगड़ जाती है और बात हाथापाई तक आ जाती या कभी-कभी उससे भी बुरी स्थिति हो जाती है। अब यह बात इतनी बिगड़ क्यों जाती, क्योंकि उस व्यक्ति के मन में यही भावना होती कि यह सीट मेरी है यह 'मेरे' की कामना से जो लगाव हो जाता और उस भावना को जब कोई गाली देता तो जो सहन नहीं किया तो उनका सामना करके उस गाली का जवाब दे दिया। अब अगर उस समय ही वह व्यक्ति बात को समझते हुए गाली को सहन करके शांत हो जाता तो बात इतनी बिगड़नी ही नहीं थी। लेकिन उस व्यक्ति का सामना करने से बात बहुत बिगड़ गई। यह भी नहीं है कि हर बार हमें ही सहन करना है परन्तु व्यक्ति को हालात को परखते हुए सहन करना है या सामना करना है, जैसे मान लो एक दुकानदार अपनी दुकान में खड़ा है और कुछ लोग दुकान में घुस आते हैं, अब उस दुकानदार को इस परिस्थिति में परखना है कि ये लोग क्या चाहते हैं अगर वह धन चाहते हैं तो उसकी एक दिन की कमाई ही ले जायेंगे तो वहाँ सामना

करने के बजाय एक दिन की कमाई के नुकसान को सहन करके अपनी जान को जोखिम में नहीं डालना चाहिए यही समझदारी है। परन्तु कभी-कभी व्यक्ति उस समय एक दिन की कमाई को बचाने लिए सामना करता है और वह अपनी जान को भी गंवा देता है और कमाई को भी। लेकिन अगर वह व्यक्ति उससे कोई गलत काम कराना चाहते हैं जिससे उस व्यक्ति के चरित्र पर दाग लग सकता है, तो ऐसी स्थिति में प्राण जाएँ, परन्तु चरित्र न जाए ऐसी स्थिति में सामना ही करना है न कि सहन करके अपने चरित्र को दागी बना देना है। अन्यथा जीवन भर इज्जत से जी नहीं पायेगा और न ही उस पाप के बोझ को उठा पायेगा। तो सहनशक्ति और सामना करने की शक्ति के बीच परखकर यथार्थ निर्णय लेने की बहुत आवश्यकता है। उसके लिए समझदारी के साथ साहस या निर्भयता का गुण होना चाहिए। इस बात को निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है :-

''एक बार पागलखाने में एक पागल किसी तरह अपने कमरे से बाहर निकल गया और तीसरी मंजिल के बाहर छत का जो हिस्सा थोड़ा बाहर निकला था, उस छज्जे पर जा खड़ा हुआ। अचानक अस्पताल के वार्डन ने जब देखा कि वह पागल अपने कमरे में नहीं है तो उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसका ध्यान तीसरी मंजिल के बाहर के छज्जे पर गया। उसने सोचा कि अगर यह रोगी वहाँ से छलाँग लगा देगा या पागलपन में इस पर बेपरवाही से घूमेगा तो यह मर जायेगा। इसलिये कुछ अधिक सोचे बिना वह भागा और स्वयं भी वहाँ छज्जे पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने पागल से कहा - सुनाओ भाई, क्या हालचाल है, यहाँ क्या कर रहे हो ? पागल बड़ी मस्ती से बोला - सोच रहा था कि जैसे पक्षी पंख फैला कर उड़ते हुए नीचे उतरता है, मैं भी आज पक्षी की तरह फर्श पर उतरूँ। ऐसा कहते हुए पागल ने मुँह को भी नीचे की ओर झुकाया और अपनी दोनों भुजाओं तथा हथेलियों को पीठ के पीछें ले जाकर पंख की तरह रूप दे दिया। वार्डन डर गया और चौंका। उसने पागल को एक हाथ से तो थपथपाया और दूसरे हाथ से उसके हाथ को पकड़ लिया ताकि वह कहीं नीचे छलाँग न लगा दे। परन्तु उसने देखा कि पागल में बल बहुत है और वह उसे पकड़ कर रोक नहीं सकेगा। उसे यह भी डर था कि अगर वह पागल को ज़बरदस्ती रोकेगा तो पागल कहीं उसे ही नीचे धक्का न दे दे। परन्तु मिनटों में ही कुछ हो जाने वाला था, इसलिये जल्दी ही कुछ करना था। अचानक वार्डन को एक युक्ति सूझी। उसने मुस्कराते हुए और दोस्ताना तरीके से पागल को कहा वाह भाई वाह, आप जो करना चाहते हो वह कोई बड़ी बात तो है नहीं। आप तो कोई बड़ा काम करके दिखाओ, और मुझे

विश्वास है कि आप विशेष काम कर सकते हैं। पागल ने कहा – अच्छा, सुनाओ दोस्त, अगर यह बड़ा काम नहीं है तो और क्या चाहते हो ? वार्डन ने कहा –नीचे चलकर, फर्श से अर्श की ओर एक पक्षी की तरह उड़ कर दिखाओ। पंख तो आपको लगे हुए ही हैं। चलो आओ, हम दोनों एक साथ नीचे से ऊपर की ओर उड़ेंगे। यह कहते हुए वह पागल की अंगुली प्यार से पकड़ते हुए उसे कमरे के रास्ते से नीचे ले चला। इस प्रकार उसने पागल की भी जान बचाई और अपना कर्त्तव्य भी निभाया। अगर वह पागल से ज़ोर- ज़बरदस्ती या हाथापाई करता तो दोनों ही धड़ाम से धराशायी होते।''

कहने का भाव यही है कि कभी-कभी परिस्थिति का सामना सिर्फ बल से नहीं होता लेकिन समझदारी, शांति, समय सुचकता एवं निर्भयता से भी कर सकते हैं।

6. सहयोग की शक्ति से नफरत और द्वेष की भावना को समाप्त करने लिए प्रेम और समझदारी का गुण विकसित करना बहुत जरूरी है।

आज के संसार में व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है कि वह सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है, किसी को सहयोग देने लिए न भावना है और न ही उसके पास समय है। सहयोग शब्द में भी **'योग'** शब्द समाया है और 'योग' माना ही सम्बन्ध तो जब आपस में हमारा अच्छा स्नेहयुक्त सम्बन्ध हो तब जाकर हम एक दूसरे को सहयोग दे सकते हैं। आपस में यदि हमारे संस्कार मिलते हों तब सहयोग दे सकते हैं अगर संस्कार मिलते ही न हों तो एक दूसरे के समीप आना भी बहुत कठिन होता है। शास्त्रों में भी दिखाया है कि श्रीकृष्ण को भी जब गोवर्धन पर्वत उठाना था तो सभी गोप-गोपियों ने अपनी एक-एक अँगुली का सहयोग दिया था तब वह पर्वत उठा सके थे। कहने का भाव यह है कि जब जीवन में बड़े-से-बड़ी पहाड़ जैसी बातें आती हैं तब उस पहाड़ को पार करने लिए अपने स्नेहियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। कम-से-कम उनकी शुभ भावनाएँ और शुभ कामनायें भी हमारे लिए दुआयें बन उस पहाड़ जैसी परिस्थिति को पार करने में बहुत मदद करती हैं। परंतु आज मनुष्य ने तनाव के कारण अपने आस-पास इतनी नफरत और द्वेष को पाल रखा है कि समय पर उसे किसी का सहयोग नहीं

मिलता और वह उसमें परेशान होकर कभी-कभी स्वयं को कार्य करने में असमर्थ महसूस करता है। तभी किसी ने सही कहा है कि सहयोग देना और लेना यह देवताई लक्षण है और सहयोग न देना न लेना यह आसुरी लक्षण है। इस बात पर शास्त्रों में एक कथा का वर्णन है :-

''एक बार इन्द्र राजा ने एक दावत रखी जिसमें देवताओं को और असुरों को दोनों को आमंत्रित किया गया। देवतायें भी पहुँचे और असुर भी पहुँचे। देवताओं को देख असुरों ने राजा इन्द्र से कहा कि कहीं कोई चाल तो नहीं। राजा इन्द्र ने मुस्कुराकर कहा की कोई चाल नहीं। तो असुरों ने कहा कि हम भोजन के लिए पहले बैठेंगे, देवताओं का बचा हुआ स्वीकार नहीं करेंगे। राजा इन्द्र ने कहा कि दोनों साथ- साथ भोजन के लिए बैठेंगे, आजू- बाजू के कक्ष में। भोजन का समय हुआ दोनों कक्षों में सारी तैयारी हो चुकी थी। अब राजा इन्द्र ने कहा कि भोजन के लिए एक शर्त है कि भोजन सीधे हाथ रखकर करना है और उसके लिए सबके हाथों के साथ एक लकड़े की पट्टी बांधी जायेगी। देवताओं को भी लकड़े की पट्टी बांधी तो असुरों को भी लकड़े की पट्टी बांध दी गई। और दोनों को अपने- अपने भोजन कक्ष में भेजा गया। 36 प्रकार के व्यंजन थाली में परोसे थे, बहुत सुन्दर महक आ रही थी। अब असुरों ने खाना उछाल- उछाल कर खाने का प्रयत्न किया फिर भी सारे व्यंजन खा नहीं पाये और सारा भोजन कक्ष गंदा कर दिया। वहीं देवतायें बड़ी शांति से भोजन कर रहे थे क्योंकि वे एक दूसरे के सामने बैठे और एक दूसरे को प्यार से खिलाने लगे, क्योंकि उनका आपस में प्यार भरा मधुर सम्बन्ध था तो एक दूसरे के सहयोगी बन एक दूसरों को प्यार से खिला रहे थे। असुरों का आपस में भी प्यार भरा मधुर सम्बन्ध नहीं था तो एक दूसरे के सहयोगी कैसे बन सकते थे।''

कहने का भाव यही है कि सहयोग देना और लेना, यह देवताई लक्षण है और सहयोग न देना और न लेना यह आसुरी लक्षण है। सहयोग की शक्ति से कार्य सहज, सरल और सुन्दर हो जाता है। नहीं तो सहयोगी न बनने से कार्य बहुत कठिन और पहाड़ जैसा महसूस होता है। कोई व्यक्ति कभी-कभी सोचता है कि वह सब कुछ कर सकता है लेकिन फिर भी वह एक परिवार में रहता है, समाज में रहता है तो उसे समय प्रति समय दूसरों के सहयोग की आवश्यकता रहती ही है। जितना उसके व्यवहार में मधुरता, स्नेह, दूसरों के प्रति सम्मान एवं सहयोग की भावना होती है उतना वह सबका दिल जीत लेता है और वक्त एक जैसा नहीं रहता, आज अच्छा है तो कल बुरा वक्त भी आ सकता है। तो ऐसे समय में उसे सहयोग मांगने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि हर कोई उसके पास

मदद करने लिए हाजिर हो जाता है। कहा जाता है कि सहयोग मांगने से नहीं मिलता लेकिन सहयोग देने से सहयोग मिलता है। हम किसी को सहयोग देते हैं तो हमें भी जब सहयोग की आवश्यकता होती है तो वह देते हैं और इसके लिए मन में नफरत और द्वेष भावना को पनपने न दें। नफरत और द्वेष की भावना हमें एक दूसरे से दूर ले जाती है और सम्बन्धों में ऐसी गांठ बना देती है जो कभी हमें एक दूसरें के समीप भी आने नहीं देती। उन गांठों को खोलने का सहज तरीका है सहयोग की भावना को विकसित करें, उसके बाद हम सहयोग के चमत्कार को जीवन में अनुभव कर पायेंगे।

7. विस्तार को संकीर्ण करने की शक्ति को विकसित करने लिए जीवन में न्यारापन एवं अन्तर्मुखता के गुणों को धारण करने से हम लोभ वृत्ति पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में देवी-देवताओं को किसी-न-किसी वाहन पर विराजमान दिखाते हैं। इसका कारण यह है कि सभी पशु-पंछियों में कोई-न-कोई विशेषता है जिसे हमें भी अपने जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। ऐसे ही भोलेनाथ के मंदिर में दरवाजे पर कछुआ रखा होता है। कछुए की विशेषता यह है कि वह अपने अंगों को विस्तार में भी ला सकता है और संकीर्ण भी कर लेता है। जब उसे कर्म करना है तब वह अपनी इंद्रियों को विस्तार में लाता है और जब वह कोई खतरा देखता है तो अपनी इंद्रियों को संकीर्ण कर लेता है। वास्तव में इससे हमें यह प्रेरणा मिलती है कि हमें भी अपनी कर्मेन्द्रियों को जब कर्म करना है तो विस्तार

में आना है और जब कर्म पूरा हो तो अपनी कर्मेन्द्रियों को समेट लेना है और अंतर्मुखी स्थिति में स्थित होना है या जहाँ कोई खतरे का आभास हो तो वहाँ से न्यारे हो जाना ही समझदारी है। आज संसार में मनुष्यों के सामने अनेक समस्यायें प्रकट होती रहती है। व्यक्ति के जीवन में कोई एक दिन ऐसा नहीं होगा जिस दिन के लिए वह कहे कि आज कोई समस्या नहीं आई, और उसमें से कई समस्यायें उसकी खुद की निर्मित की हुई होती है। वह भी खास करके जब वह अधिक वाचाल हो जाता और न बोलने वाली बातें बोल देता फिर जब वही बातें उसके सामने किसी-न-किसी प्रकार की समस्या को ले आती हैं तब कई बार व्यक्ति पछताता है कि इससे तो नहीं बोलते थे तो ज्यादा अच्छा होता परन्तु क्या करे? तभी तो कहा जाता है कि अंतर्मुखी सदा सुखी और बाह्यमुखी सदा दुखी। कभी-कभी व्यक्ति को यह महसूस ही नहीं होता कि उसकी बोली हुई बातें बढ़ते-बढ़ते कैसे बात का बतंगड़ बन जाती हैं।

इस बात पर एक सुंदर उदाहरण याद आता है:-

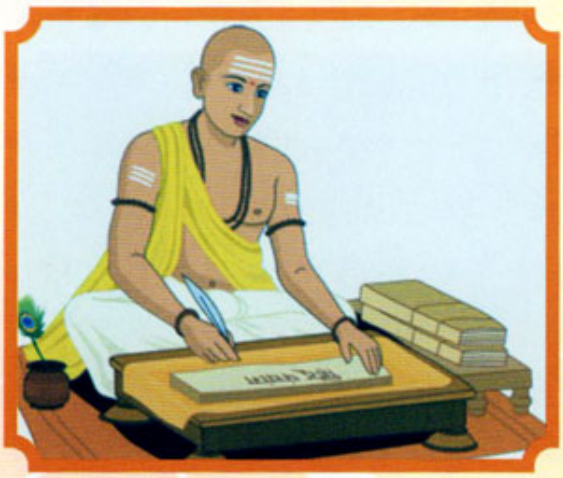

''एक गाँव में एक ब्राह्मण था जो पंडिताई के द्वारा जैसे-तैसे भरण-पोषण करता था। उसकी पत्नी अपने मन में कोई बात को छुपा नहीं पाती थी और किसी न किसी के सामने निकाल देती थी। एक दिन ब्राह्मण ने रोजी के लिए शहर जाने की इच्छा जताई तो ब्राह्मणी ने हाँ में हाँ मिला दी और अगली सुबह ब्राह्मण महाराज के भोजन की व्यवस्था कर उसे विदा किया। चलते-चलते एक छायादार जगह देखकर वह रुका, भोजन की पोटली खोली और जैसे ही रोटी का टुकड़ा मुँह में डाला, तो वृक्ष पर एक बगुला बैठा था और उसके मुख में एक कीड़ा था जो इस ब्राह्मण की रोटी पर गिर गया। उसने मन में कहा – राम- राम, छी:छी:, बड़ा अनर्थ हो गया, सारा भोजन अपवित्र हो गया, मैं भी अशुद्ध हो गया, अब मुझे घर को लौटना पड़ेगा। पति को घर में आया देख पत्नी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। पंडित जी ने बहुत टालने की कोशिश की किन्तु ब्राह्मणी की जिद्द के आगे हार गए पर उससे वचन ले लिया कि उसकी बताई बात वह किसी अन्य से नहीं कहेगी। ब्राह्मणी ने वायदा कर लिया परन्तु अगले दिन जब वह कुएँ पर पानी भरने गई तो एक धोबिन ने बातों-बातों में सारा राज़

उससे उगलवा लिया। ब्राह्मणी ने बता दिया कि पंडित जी के भोजन में बगुले के मुख से कीड़ा गिर गया था इसलिए वे वापस लौट आए थे, राम-राम, छीः-छीः, बड़ा अनर्थ हो गया। धोबिन ने इस बात को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करते हुए अपनी सहेली से कहा –क्या तूने सुना कि कल पंडित जी के मुख में एक बगुला घुस गया, गजब हो गया। यह बात उसकी सहेली ने दूसरी सहेली से इस प्रकार कहा –बड़े आश्चर्य की बात है कि पंडित जी के मुँह में तो बगुले आते और जाते हैं। बात बढ़ते-बढ़ते सारे गांव में और आस-पास के गाँवों में भी फैल गई कि पंडित जी बड़े करिश्माई हैं, उनके मुख से जादुई शक्ति से तरह-तरह के पंछी निकलते हैं। एक दिन कई गाँवों के लोग इकट्ठे हुए और ग्राम पंचायत के सामने यह आग्रह रखा कि पंडित जी चमत्कार दिखाएँ। पंडित जी बड़े असमंजस में थे। वे समझ गए कि उनकी पत्नी के मुख से फिसली बात को लोगों ने बतंगड़ बना लिया है पर अब करते भी क्या ? पंचायत में हाजिर होना ही पड़ा। उन्होंने पीछा छुड़ाने के लिए यह डर दिखाया कि जो भी मेरे मुख से निकलते पंख देखेगा, वह पंछी बन जाएगा। यह सुनकर सभी के होश उड़ गए और सभी भाग खड़े हुए। किसी-किसी ने यह भी कहना शुरू कर दिया कि पंडित जी मानव को पक्षी बनाने में माहिर हैं।''

कहने का भाव है कि कोई भी बात का विस्तार बहुत जल्दी हो जाता है और बात क्या से क्या बन जाती है। कभी-कभी वही बात का बतंगड़ बन कर व्यक्ति के लिए मुसीबतें खड़ी कर देती है। इसलिए अब के समय अनुसार जितना बातों के विस्तार में जायेंगे उतना तकलीफें बढ़ेंगी और जितना किसी बात को सार में लिया जाता है यानि कम से कम शब्दों का प्रयोग करके बात को रखा जाता है उतना ही अच्छा होगा। वैसे भी विस्तार करना आसान है लेकिन बात को संकीर्ण करना अर्थात् सारयुक्त रखना मुश्किल है। जबकि सारगर्भित बात कहने वाले के वचनों का ही महत्व होता है और समाज उसकी इज्जत करता है। जो बहुत ज्यादा विस्तार से बातें करता है, वह क्या कहना चाहते हैं उसे कोई समझ नहीं पाता और लोग उसे वाचाल कहकर उनसे दूर भागना चाहते हैं कि यह व्यक्ति बात का बतंगड़ बनाके कहीं हमें फंसा न दे। कई बार तो छोटीसी बात का पहाड़ बना दिया जाता है। जबकि अब समय अनुसार पहाड़ जैसी बातों को राई समान बनाना है न कि राई का पहाड़। कई लोग बातों को बहुत चटपटी बनाकर दूसरों के आगे पेश करते हैं और उसे सुनने में लोग अपना समय और शक्ति नष्ट करते हैं। जब महसूस होता है कि समय व्यर्थ गया तो कह देते कि इस व्यक्ति की बातों को लेकर खोदा पहाड़ और निकला चूहा। वास्तव में वही लोग ऐसा करते हैं जिनको किसी तरह अपना मतलब सिद्ध करना होता है या लोभ वश कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। वे

दूसरों को बातों में उलझाकर अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं। कहने का भाव कि जब व्यक्ति अंदर से भरपूर होता है तो वह धैर्यवान गंभीर अंतर्मुखी और न्यारा रहता है इसलिए कभी किसी भी परिस्थिति में फंसता नहीं। दुनिया में लोग भी अक्सर वाचाल व्यक्ति को ही किसी-न-किसी बात के जाल में फंसाकर उसका फायदा उठाते या अपना दोष उन पर डाल देते हैं। इसी प्रकार मानव में जब लोभ वृत्ति अधिक हावी हो जाती है तब वह अपने विस्तार को संकीर्ण नहीं कर सकता। इसलिए इन अष्ट शक्तियों में 'विस्तार को संकीर्ण करने की शक्ति' आज के युग में महत्वपूर्ण है इसको धारण करने के लिए अंतर्मुखता और न्यारा बनने की आवश्यकता है। इससे हम लोभ रूपी शत्रु पर विजयी हो सकते हैं।

8. समेटने की शक्ति के लिए व्यर्थ को समाप्त कर बुद्धि को सशक्त कर समर्थ बनाना है।

इस दुनिया में मनुष्यों ने अपने लिए बहुत सा पसारा डाल रखा है। भौतिक सुख-सुविधाओं के संग्रह की उसकी ऐसी लालसा रहती है कि मानो इस दुनिया से उसे जाना ही नहीं है। कहने में तो वह कहता है कि यह दुनिया एक सराय है या मुसाफिरखाना है परन्तु जीवन में समय प्रति समय कुछ कार्यों को या बातों को समेटते भी जाना है, यह बात वह भूल जाता है। वास्तव में जीवन के व्यवहारिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं में समेटने की शक्ति की बहुत आवश्यक्ता है। चाहे वह व्यक्ति एक छोटे से परिवार का कर्ता-धर्ता हो या कोई छोटे-बड़े व्यापार का मालिक हो या कोई छोटे-बड़े मंदिर अथवा आश्रम का मुखिया हो। परन्तु सभी जगह पर समेटने की शक्ति का यथार्थ उपयोग न होने के कारण व्यक्ति अपने पीछे अनेक प्रकार की समस्याएं औरों के लिए छोड़ जाता है। इसीलिए देखा गया है कि कई बड़े-बड़े घरों में इसी कारण कई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। समेटने की शक्ति को धारण करने के लिए दो बातों को सदा स्मृति में रखना आवश्यक है। पहली बात, जब भी जीवन में कोई भी परिस्थिति या समस्या आ जाए तो व्यर्थ संकल्प चलाने के बजाय हमेशा यह याद रहे कि जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह अच्छा ही हो रहा है और जो होने वाला है वह भी अच्छा ही होगा... तो इस

सकारात्मक मन:स्थिति से अच्छाई नज़र आने लगेगी। यह भी याद रखें कि यह दिन भी बीत जायेंगे। तो बातों को या संकल्पों को फुलस्टॉप लगाना या समेटना आसान हो जायेगा। दूसरी बात यह स्मृति में रहे कि यह दुनिया एक मुसाफिरखाना है और हम इस दुनिया में मुसाफिर हैं या मेहमान हैं तो कोई भी चीज में आसक्ति नहीं होगी और हमेशा यह याद रहेगा कि हम जीवन यात्रा पर हैं। जैसे लोग जब यात्रा पर जाते हैं तो बैग बैगेज समेट लेते हैं लेकिन उसमें सारा घर उठाकर नहीं ले जाते, केवल आवश्यक सामान ही साथ में ले लेते हैं। इसमें भी दो चीज़ें अवश्य तैयार करते एक अटैची और एक बिस्तरा, कीमती चीज़ें अटैची में रखते

हैं और जो रास्ते में उपयोगी चीज़ें है वह बिस्तरे में समेट लेते। अटैची में कीमती चीज़ें होने के कारण उसे व्यक्ति बराबर संभाल कर रखता है और बार-बार उस पर नज़र रखता है कि अटैची सुरक्षित है न। बिस्तरा तो कहाँ भी होगा उसे पता है उसको कोई हाथ लगाने वाला नहीं है। ऐसे ही इस जीवन की मुसाफिरी में भी हमें दो चीज़ों को जरूर तैयार करके रखना है। एक अटैची और एक बिस्तरा। जैसे अटैची में कीमती सामान को रखना होता है वैसे आत्मा के लिए कीमती है उसके सद्गुण, अच्छे संस्कार, श्रेष्ठ

चिंतन, श्रेष्ठ कर्म, शक्तियां और स्मृतियाँ इसको अटैची में संभाल कर रखना है। और उस पर हमारी विशेष नज़र रहनी चाहिए कि कोई उसे चुरा न ले। इस दुनिया में अच्छे संस्कार, सदगुणों की भी चोरी हो जाती है। खास कर जब कुसंग के प्रभाव में व्यक्ति आ जाता है तब उसके अच्छे संस्कार और सदगुणों की चोरी हो जाती है जिस कारण श्रेष्ठ कर्म का खाता क्षीण होने लगता है। तो उसका बहुत ध्यान रखते हुए जीवन यात्रा में आगे बढ़ना है। अपने पाप कर्मों का बिस्तरा बांध लेना है क्योंकि जाने अनजाने में बहुत पाप कर्म हो जाते हैं। वह भी हमारे साथ ही

रहेंगे तो उनका बिस्तरा बांध देना है। हमारे पाप कर्म को कोई हाथ भी लगाने वाले नहीं है। कहने का भाव यही है कि जीवन यात्रा में कभी भी कोई भी बात में किसी से भी कोई प्रकार का मन मुटाव या स्वभाव संस्कार का टकराव अगर होता है तो तुरन्त ही उस बात को किसी विधि से समेट लेना ही समझदारी है। नहीं तो आगे चलकर वह किस स्वरूप में हमारे सामने आयेगी उसका पता भी नहीं चलेगा और जीवन को बहुत मुश्किल दौर से गुजरना पड़ेगा। जीवन यात्रा में अपने सच्चे साथी को कभी भी अपने से दूर नहीं करना या विस्मृत नहीं करना।

इस पर एक बहुत सुन्दर बात याद आती है :-

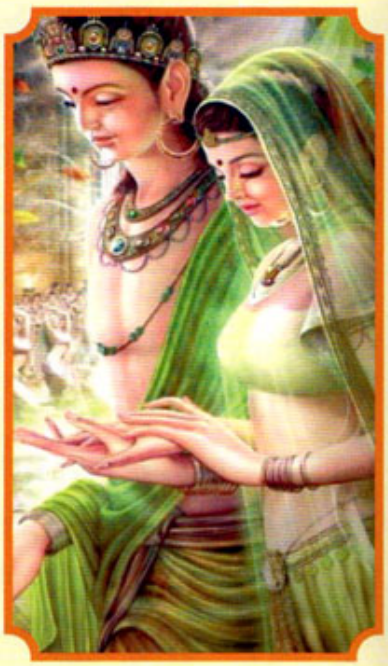

''एक राजा था उसकी चार रानियां थी। राजा की पहली रानी दिखने में सुंदर नहीं थी, न ही होशियार थी लेकिन वह सुशील थी और राजा के प्रति पूरी वफादारी और समर्पण भाव रखकर हमेशा उसका साथ निभाती थी। लेकिन राजा कभी उसे प्यार नहीं करता था, न ही कभी उसे अपने साथ कहीं ले जाता और न ही उसको वक्त देता। उसकी दूसरी रानी भी सुंदर नहीं थी लेकिन समझदार थी इसलिए राजा का उसके साथ थोड़ा लगाव था और जब भी कोई समस्या आती या परेशानी बढ़ जाती तो वह दूसरी रानी की सलाह लेने जाता था। वह भी उसकी मदद करती थी और राजा को मुसीबत से बाहर निकाल देती थी। राजा की तीसरी रानी होशियार थी और वह उसे हमेशा अपने मित्रों से बड़े गर्व से मिलाता था लेकिन राजा को यह डर रहता था कि कहीं वह उसे छोड़ कर किसी और के पास न चली जाए। राजा की चौथी रानी बहुत सुंदर थी इसलिए वह उसको बहुत प्यार करता था और उसका बहुत ख्याल रखता एवं उसकी हर इच्छा को पूरी करता था। एक दिन राजा बीमार पड़ गया और पूरी जिंदगी के बारे में सोचा और खुद से कहा, पूरी जिंदगी मेरे साथ चारों रानियां रहीं लेकिन मैं मरूँगा तो अकेले ही जाना होगा। उसने अपनी चौथी चहेती रानी को बुलाकर पूछा, मैं तुम्हें सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ, अब जब मैं मरने वाला हूँ तो क्या तुम मेरे साथ चलोगी ? चौथी रानी ने साफ मना कर दिया और कहा मैं तो तुम्हारे मरने के एक पल बाद भी तुम्हारे साथ नहीं रहूँगी। राजा को उसकी यह बात बहुत चुभ गई और वह

बहुत दुखी हो गया कि सबसे ज्यादा प्यार मैंने इसको किया और सबसे ज्यादा समय इसको ही सजाने- संवारने के लिए दिया पर आज यह मेरे साथ चलने को तैयार नहीं है। दुखी मन से उसने अपनी तीसरी रानी को बुलाकर पूछा, क्या तुम मेरे साथ चलोगी ? तीसरी रानी ने कहा कभी नहीं, मैं तो बहुत सुखी हूँ, तुम्हारे मरने के बाद मैं किसी और की हो जाऊंगी, यह सुनकर राजा का दिल बैठ गया और वह बिल्कुल ठंडा पड़ गया। फिर उसने अपनी दूसरी पत्नी से कहा, मैंने जरूरत के वक्त हमेशा तुम्हें याद किया और तुमने हमेशा मेरी मदद की है। आज मैं तुमसे फिर मदद चाहता हूँ जब मैं मरूँगा तो क्या तुम मेरे साथ चलोगी ? दूसरी रानी ने कहा कि मुझे माफ करो इस बार मैं तुम्हारी मदद नहीं कर पाऊंगी। मैं तुम्हारे साथ केवल शमशान घाट तक साथ दे सकती हूँ उसके बाद मैं वापस लौट आऊंगी, यह सुनकर तो राजा पूरी तरह से टूट गया। तभी एक आवाज़ आयी, मैं चलूंगी तुम्हारे साथ, मैं हर पल तुम्हारा साथ निभाऊंगी कभी तुम्हें अकेला नहीं छोडूंगी, तुम जहां- जहां जाओगे मैं वहां- वहां तुम्हारे साथ रहूंगी। राजा ने सिर उठाकर देखा तो सामने उसकी पहली रानी खड़ी थी। वह बहुत कमज़ोर हो गई थी, उसे देखकर राजा को बहुत दुःख हुआ, उसने कहा, मैंने तो कभी तुम्हारी ओर देखा ही नहीं, तुम्हारा ख्याल नहीं रखा, मुझे माफ कर दो आज मुझे एहसास हुआ कि मुझे सबसे अधिक तुम्हारा ख्याल रखना चाहिए था।''

वास्तव में हमारे जीवन में आत्मा की यह चार रानियां हैं। चौथी रानी है हमारा यह शरीर जिसे स्वस्थ तथा सुंदर बनाने के लिए हम सबसे ज्यादा समय देते हैं। लेकिन हम इसे कितना भी सजा लें हमारे मरते ही वह हमारा साथ छोड़ देता है। तीसरी रानी हमारी सम्पत्ति है। जब हम मरते हैं तो वह दूसरों की हो जाती है। दूसरी रानी हमारे सगे-सम्बन्धी हैं जो हमारे जीते-जी चाहे कितने भी नज़दीक क्यों न हों लेकिन दुनिया छोड़ने के बाद वे केवल शमशान तक ही साथ जाते हैं फिर लौट आते हैं। और हमारी पहली रानी है हमारे संस्कार, हमारे कर्म जिसकी ओर हम कभी ध्यान नहीं देते हैं। अपनी दौलत और झूठी शान की खातिर नज़रअंदाज करते रहते हैं जबकि यही रानी हमारे साथ हमेशा रहती है। हम जहाँ-जहाँ जाते हैं हमारे संस्कार हमारे साथ चलते हैं इसलिए आवश्यकता है कि हम अपने संस्कारों पर सबसे अधिक ध्यान दें और इनको दिव्य बनाने का प्रयास करें, नहीं तो मरते समय हमें इस बात के लिए बहुत पछताना पड़ेगा।

राजयोग के नित्य अभ्यास द्वारा हम अपने जीवन में इन अष्ट शक्तियों को विकसित कर सकते हैं। यह दिव्य शक्तियाँ आन्तरिक आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं क्योंकि विकार या

आसुरी वृत्ति आन्तरिक दुर्बलता से ही उत्पन्न होती है। हमें इन आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा कमज़ोरी रूपी असुरों का संहार करना है। इन शक्तियों को विकसित करने का आधार हमारे अनादि सतोगुण या दिव्य गुण एवं मूल्य हैं। इन शक्तियों के आधार से ही हम कठिन समय और विपरीत परिस्थितियों को सहजता से पार कर सकते हैं। इन शक्तियों की धारणा ही हमें हर परिस्थिति में विजयी बनाते हुए कई आत्माओं के लिए आदर्श बनाती है। भक्ति मार्ग में गणेश जी के स्वरूप में इन्हीं शक्तियों की विशेषता एवं महानता को दर्शाया है। गणेश जी को शुभ और विघ्न विनाशक माना जाता है अर्थात् इन्हीं शक्तियों को विकसित करने से व्यक्ति शुभ कार्य करने में सक्षम बनता है और शुभ कार्य करने में अगर कोई विघ्न आ जाता है तो उन विघ्नों को विनाश करने की शक्ति भी है। इसलिए कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए सर्वप्रथम गणेश जी की वंदना

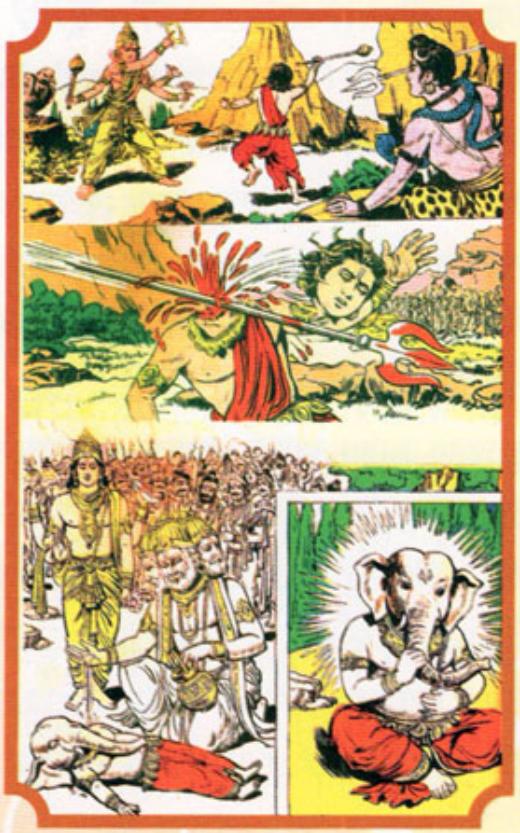

की जाती हैं। गणेश जी की कथा में यही दर्शाया गया है कि शंकर जब तपस्या करके वापस आये तब गणेश जी ने उन्हें घर में आने से रोका और सामना करते हुए खड़े हो गये, तब कहा जाता है कि उनके पिता ने उनका सिर धड़ से अलग कर दिया और फिर दूसरे दिन हाथी के सर को काट कर लगा दिया और उन्हें पुनः जीवित कर दिया। वास्तव में कोई पिता ऐसा नहीं कर सकता है। इसका आध्यात्मिक रहस्य यही है कि जब परमात्मा इस संसार में आते हैं तो अहंकारी लोग दूसरों का एवं परमात्मा का विरोध करने लगते हैं। शिव परमात्मा उनके अंहकार रूपी सिर को नष्ट करके उसके स्थान पर हाथी का सिर लगा देते हैं अर्थात् समझदार बना देते हैं क्योंकि हाथी सभी प्राणियों में समझदार माना जाता है तथा उसकी स्मृति भी तेज़ मानी जाती है। परमपिता परमात्मा शिव भी आध्यात्मिक ज्ञान एवं योग बल से हमें पारस बुद्धि बना देते हैं। सिर शक्ति का भी प्रतीक है। जब अहम् भाव खत्म हो जाता है तो निरहंकारी व्यक्ति दूसरों का विरोध करना छोड़ देता है। राजयोग के प्रतिदिन अभ्यास करने से व्यक्ति अपने जीवन में इन अष्ट शक्तियों को विकसित कर सही समय पर सही शक्ति का प्रयोग कर व्यवहार कुशल बन जाता है। इसलिए गणेश जी के स्वरूप, उनकी मुद्रा, उनके अलंकार एवं

वाहन हमें अष्ट शक्तियों से सुसज्जित बन जीवन में सदा शुभ कर्म करते हुए सफल होने की प्रेरणा देते हैं। जैसे उनके वरद्-हस्त सहनशीलता के प्रतीक हैं कि जीवन में कई लोगों के द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ आयेंगी लेकिन उनको क्षमा करते हुए सदा उनके प्रति शुभ भावना रखते हुए उनको आशीष प्रदान करना है। अतः वरद् मुद्रा वाला हाथ हमें सहनशील बनने की प्रेरणा देता है और साथ ही ज्ञान-निष्ठ स्थिति की पराकाष्ठा को प्राप्त करने का इशारा देता है।

उनका लम्बोदर (पेट) समाने की शक्ति का प्रतीक है। आम बोलाचाल में भी जब कोई व्यक्ति अच्छी-बुरी सब बातों को अपने में समा लेता है तब उसके लिए यही कहा जाता है कि इसका तो बड़ा पेट है। इस प्रकार पेट बातों को हज़म करने का सम्बन्ध पेट से जोड़ा जाता है। ज्ञानवान व्यक्ति के सामने भी निन्दा-स्तुति, जय-पराजय, ऊँच-नीच की बातें आती हैं परन्तु वह उन सबको स्वयं में समा लेता है। गणपति जी की आँखें छोटी दिखाई हैं परन्तु उन आँखों की विशेषता है कि वह हर चीज़ को स्पष्ट देख सकती हैं यह उनकी दूरदृष्टि और परख शक्ति की सूचक है। ज्ञानवान व्यक्ति हर बात को सूक्ष्म बुद्धि से परखते हैं और बुद्धि की पारदर्शिता के कारण नीर-क्षीर, कंकड़-हीरे में फर्क को समझ सकते हैं। इस परख शक्ति की वजह से वह जीवन में कभी धोखा नहीं खा सकते। गणपति जी हमें भी संसार में हर व्यक्ति को और उनकी बातों में सच्चाई को परखने लिए इशारा देते हैं।

गणेश जी का आसन उनकी प्रबल निर्णय शक्ति को दर्शाता है। उनकी बैठक में दिखाया है कि उनके दाहिने पाँव का थोड़ा-सा भाग पृथ्वी को स्पर्श कर रहा होता है जबकि बाईं टाँग ऊपर उठी होती है। बायाँ पाँव, दायीं टाँग से दबा होता है। शरीर विज्ञान के अनुसार हमारा दायाँ हाथ और दायीं टाँग हमारे मस्तिष्क के बायें भाग से जुड़े होते हैं और हमारी बायीं टाँग और बायां हाथ हमारे मस्तिष्क के दायें भाग से जुड़े होते हैं। मस्तिष्क विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि हमारे मस्तिष्क का बायाँ भाग तर्कप्रधान और विश्लेषणात्मक होता है, जबकि हमारे मस्तिष्क का दायाँ भाग हमारे संवेगों का केन्द्र है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो तर्क प्रधान बायें अर्द्ध भाग से जुड़ी हुई दायीं टाँग का पृथ्वी को स्पर्श करना संसार तथा इसके तथ्यों से सम्पर्क बनाये रखने का प्रतीक है। इसी प्रकार मस्तिष्क के दायें अर्द्ध भाग से जुड़ी हुई बायीं टाँग और बायें पाँव का ऊपर उठे रहना और दायीं टाँग से दबे रहना इस बात का सूचक है कि हमारे संवेग और आवेग इस पृथ्वी के आकर्षण से ऊपर उठे होने चाहिएं और विवेक के अधीन होने

चाहिएं। कहने का भाव यह है कि वह हमें प्रेरणा देते हैं कि ज्ञानवान व्यक्ति निर्णय लेते समय संवेग या आवेग में बहता नहीं है या किसी के भी प्रभाव से मुक्त रहकर निष्पक्ष होकर, हर स्थिति – परिस्थिति में संसार के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विवेक युक्त होकर सही निर्णय लेता है।

इसी प्रकार उनकी सामना करने की शक्ति का प्रतीक उनकी सूँड है। उनकी सूँड इतनी मज़बूत और शक्तिशाली होती है कि वृक्ष को भी उखाड़कर, सूँड में लपेटकर ऊपर उठा लेता है। परन्तु वही अगर कोई छोटा बच्चा आ जाये तो वही शक्तिशाली सूँड इतनी कोमलता से बच्चे को उठाकर अपनी पीठ पर बिठा लेता है या किसी मंदिर में ईष्ट देवता को पुष्प अर्पित करके या पानी का लोटा चढ़ाकर पूजा भी कर देता। वो सूँड से केवल वृक्ष जैसी स्थूल चीज़ ही नहीं उठाता परन्तु सुई जैसी सूक्ष्म चीज़ को भी उठा सकता है। इसी प्रकार ज्ञानवान व्यक्ति अपनी स्थूल आदतों को भी जड़ों से उखाड़कर फेंकने में समर्थ है और किसी परिस्थिति का सामना करने में भी शक्तिशाली एवं निर्भय है। साथ ही वह अपने कुशल व्यवहार से या शांति से भी किसी बात को सुलझाने की क्षमता रखता है।

गणनायक जी को मोदक या बूंदी के लड्डू बहुत पसंद हैं। यह लड्डू उनके सहयोग की शक्ति का सूचक हैं। जिस तरह मोदक या लड्डू बनाने लिए एक-एक कण को जोड़ना पड़ता या मिलाना पड़ता और उसके लिए शक्कर या मीठे से ही सारे कण बंध जाते और लड्डू तैयार होता है। ठीक इसी प्रकार गणनायक जी भी अपने मधुरता पूर्ण व्यवहार से सबको अपने साथ लेकर चलने के लिए हमें भी प्रेरित करते हैं। यानि समाज में कैसे रहना चाहिए वह अपने हाथ में लड्डू पकड़ कर सिखाते हैं।

गजकर्ण विस्तार को संकीर्ण करने की शक्ति का प्रतीक हैं। इस दुनिया में मनुष्य तरह-तरह की बातें लेकर हमारे सामने आयेंगे, उसमें कोई बात को बढ़ा-चढ़ाकर भी कहेंगे लेकिन गजकर्ण सूप जैसे दिखाये हैं अर्थात् अनेक विस्तार की बातों को झाड़कर ज्ञानवान व्यक्ति सार को स्वयं में ग्रहण कर लेता है क्योंकि विस्तार में जाने से कई बातों में उलझकर हम अपना अमूल्य समय व्यर्थ गवां देते हैं।

गणेश जी को एक दन्त दिखाया है। हाथी के दांत बहुत मूल्यवान होते हैं अर्थात् ज्ञानवान व्यक्ति की कही हुई हर बात मूल्यवान होती है। जीवन में बहुत बातें आती है लेकिन ज्ञानवान व्यक्ति बात को समेटना जानता है। व्यर्थ की बातों से वह अपना मूल्य कम नहीं

करता लेकिन सदा समर्थ बातें कहते हुए सबके सम्मान को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता और अपने अमूल्य वचनों से सबका दिल जीत लेता है।

कहने का भाव यह है कि गणेश जी के स्वरूप में यह अष्ट शक्तियाँ समायी हुई हैं। जब हम इन आठों शक्तियों को अपने जीवन में और व्यवहार में ले आते हैं तो गणेशजी की

तरह रिद्धि और सिद्धि साथी बनकर हमारे साथ रहेंगे अर्थात् जीवन में ज्ञान या विवेक के आधार पर चलेंगे तो सिद्धि यानि सफलता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार बन जायेगी। रिद्धि अर्थात् यथार्थ विधि से सिद्धि अर्थात् सफलता को प्राप्त करेंगे। जो बुद्धिवान और दूरदर्शी होगा, उसको सिद्धि अथवा सफलता अवश्य मिलती है। गणेश जी का वाहन मूषक (चूहा) है। मूषक की यह आदत होती है कि वह छिपकर कुतरता है और काटने से पहले फूँक मारता है जो उसके काटने का पता ही नहीं चलता। यह मूषक वास्तव में माया का प्रतीक है जो हमारे जीवन में छिपकर आती है और ज्ञानवान बुद्धि को संशयात्मक विचारों से कुतरना शुरू करती है या बहुत अच्छी तरह बातों में फँसाकर हमें भीतर से शक्तिहीन करने का प्रयत्न करती है। गणेश जी की तरह हमें भी ऐसे विचारों पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करना है।

गणेश जी के विभिन्न नामों में भी हमें इन्हीं अष्ट शक्तियों को जीवन में धारण करने की प्रेरणा मिलती है। जैसे उन्हें अष्ट विनायक भी कहते है अर्थात् इन्हीं अष्ट शक्तियों की धारणा से व्यक्ति विनम्रता पूर्वक सबका नेतृत्व करने वाला नायक बन जाता है। ऐसे ही उन्हें सिद्धि विनायक भी कहते हैं क्योंकि वह इन शक्तियों से सफलता की सिद्धि प्रदान करते हैं। गणेश जी को विघ्न-विनाशक भी मानते है क्योंकि इन शक्तियों के सामने कोई भी विघ्न ठहर नहीं सकता। साथ ही साथ उन्हें गणनायक भी कहत है अर्थात् वे सर्व मनुष्यों का नेतृत्व करने वाले नायक हैं।

इस तरह राजयोग हमें जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिससे हम सकारात्मक जीवन-पद्धति को अपना सकते हैं। योगी जीवन का आचरण, विचार, व्यवहार, अहार, विहार उसकी रीति-नीति साधारण जीवन से न्यारी और अलौकिक

होती है। निस्सन्देह, राजयोग एक अभ्यास, पुरुषार्थ या क्रिया-विशेष का भी नाम है, परन्तु यह एक ऐसी महान साधना है या जीवन को दिव्य बनाने की कला है जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं ही महान बन जाता है और सारे विश्व को भी महान बना देता है। राजयोगी

घर-गृहस्थ का त्याग कर जंगलों के अन्दर कुटिया और गुफाओं में जाकर योग नहीं लगाता है, परन्तु वह समाज में रहकर पारिवारिक, सामाजिक और व्यवहारिक समस्याओं को बड़े ही सुचारु रूप से पार करता हुआ कमल फूल समान न्यारा और

प्यारा जीवन व्यतीत करता है। उसकी स्थिति हर परिस्थिति में एकरस रहती है। जिस प्रकार बैटरी का सम्बन्ध बिजली घर के साथ होने से बैटरी में फिर से शक्ति भर जाती है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा शिव से योग द्वारा सर्वशक्तियों की प्राप्ति होती है, जो सभी के लिए अति आवश्यक है। इन्हीं शक्तियों की कमी के कारण घर-घर में कलह-क्लेश बढ़ रहा है, जिसके फलस्वरूप मानसिक तनाव बढ़ता जा रहा है और नई-नई बीमारियाँ भी

उत्पन्न होती जा रही है। परन्तु राजयोग इन सब बातों को जड़ से समाप्त कर देता है।

अब थोड़ी देर के लिए हम योगाभ्यास करेंगे और अपने मन को सभी बातों से समेटते हुए परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर अपने ध्यान को एकाग्र करेंगे.....
अपने मन को निम्नलिखित संकल्प दीजिए...

मैं एक शक्ति स्वरूप आत्मा हूँ...प्रकाश स्वरूप हूँ...मीठे बाबा...आप सर्वशक्तिमान हैं...सर्वशक्तियों के दाता हैं... मैं आपकी संतान मास्टर सर्वशक्तिमान हूँ... कितना प्रकाश है... कितनी शक्ति है... आपकी याद में रहने से मैं आत्मा सर्व शक्तियों को अपने अन्दर भर रहीं हूँ... मैं आत्मा शक्तियों से सशक्त बन रही हूँ... इन शक्तियों का प्रकाश मेरे चारों ओर फैल रहा है... मैं सर्वशक्तियों को एक प्रकाश के प्रभा मण्डल के रूप में देख रही हूँ... मैं प्रकाश स्वरूप और शक्ति स्वरूप हूँ... मैं आत्मा बीज स्वरूप हूँ, लाईट हाउस हूँ... माईट हाउस हूँ... विश्व कल्याणकारी हूँ... मुझे इस प्रकाश और शक्ति की किरणों को सारे विश्व में फैलाना है... मैं यह प्रकाश और शक्ति सारी दुनिया को प्रदान कर रही हूँ... इन शक्तियों से मैं मायाजीत बन रही हूँ... मैं नये विश्व का मालिक बन रही हूँ... मैं रूप में ज्योतिबिन्दु स्वरूप हूँ... लेकिन शक्ति में सूर्य समान हूँ... इसी लाइट और माइट से सारे विश्व का कल्याण होगा और यह सृष्टि स्वर्ग बन जायेगी... ओम् शांति, शांति, शांति।

आत्मा को निरन्तर
साफ करते रहें
दुनिया को निरन्तर
माफ करते रहें
परमात्मा को निरन्तर
याद करते रहें।

आनंद
शान्ति
पवित्रता
शक्ति
वसुधैव कु
आत्मानुभूति

जीवन में आध्यात्मिकता की आवश्यकता

अनिश्चितता के इस दौर में मनुष्य अनेक प्रकार के तनाव एवं भय को महसूस कर रहा है, उसका जीवन अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियों एवं समस्याओं से घिरा हुआ है। ऐसे समय में उसे अगर आध्यात्मिक ज्ञान सुनने के लिए कहा जाए तो उसके पास समय ही नहीं होता। फिर भी ऐसी विधि के बारे में सोचता है जिससे यह राजयोग उसके जीवन में आ जाए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को कहीं भी यह नहीं कहा कि योग अभ्यास करने लिए अपने घर गृहस्थ या अपनी ज़िम्मेवारियों छोड़ दो। परन्तु उसे सदा कर्मयोगी बनने की प्रेरणा दी, अर्थात् कर्म का आचरण करते हुए योगाभ्यासी बनने की बात ही की है। यही जीवन जीने की कला है। राजयोग इसी कर्मयोग की सरल और सहज विधि सिखाता है।

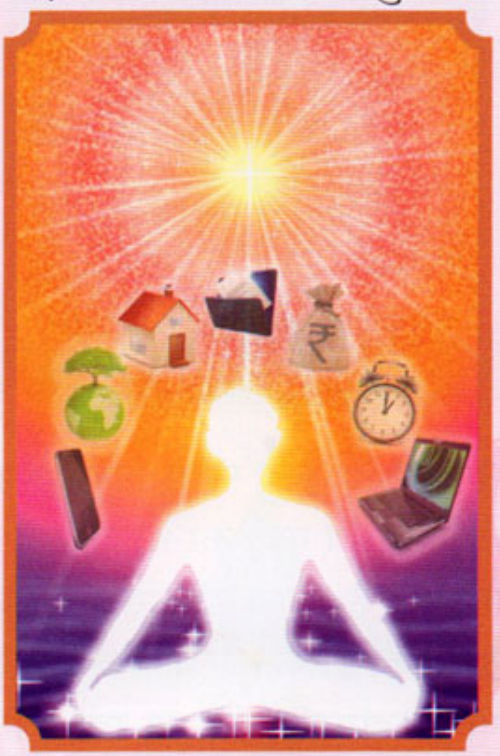

आध्यात्मिकता की आवश्यकता

आध्यात्मिकता की आवश्यकता को समझने के लिए यह उदाहरण उपयुक्त है कि जैसे किसी व्यक्ति को कोई शारीरिक कमज़ोरी होती है, तो मौसम बदलने का उसके शरीर पर प्रभाव पड़ता है और उसे शीघ्र ही सर्दी जुकाम या बुखार हो जाता है। अगर वह डॉक्टर के पास जाकर पूछे कि उसे बुखार क्यों हुआ? तो वह डॉक्टर यही कहेगा कि वायरल चल रहा है, और उसे भी यह वायरल हो गया है। मान लो वह डॉक्टर से पुछे कि यह वायरल उसे ही क्यों हुआ, परिवार के अन्य सदस्यों को क्यों नहीं हुआ तो डॉक्टर स्वाभाविक रीति से यही कहेगा की उसकी शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति कम है, इसलिए इस वायरस ने उसके शरीर को पाभावित किया है। फिर डॉक्टर उसे दो प्रकार की दवाई देता है, एक वायरस को खत्म करने के लिए एन्टीबायोटिक (antibiotic) और दूसरी ताकत के लिए मल्टी विटामिन (multi-vitamin)। फिर उसे कुछ परहेज बताएगा और शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने लिए निम्न लिखित तीन बातों का पूरा ध्यान रखने की सलाह देता है:-

एक, उसे पौष्टिक भोजन लेना होगा जिससे शरीर को ताकत मिले।

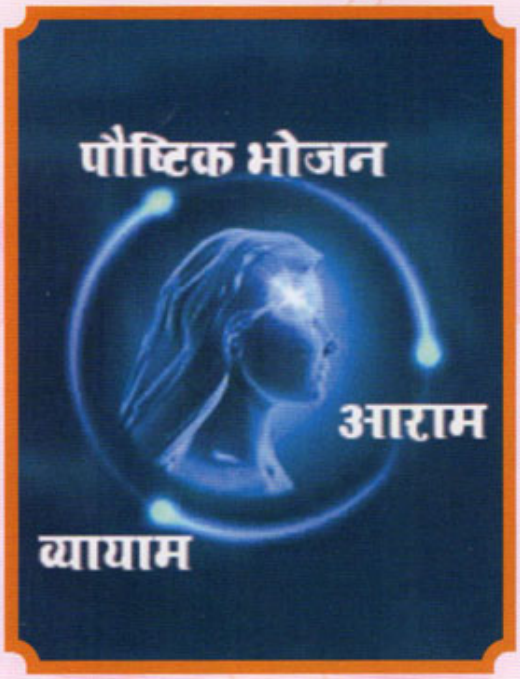

दूसरा, उसको ठीक से आराम करना होगा जिससे शरीर में ताज़गी का संचार हो और तीसरा, उसे प्रतिदिन व्यायाम करना होगा जिससे शरीर में स्फूर्ति आये।

इन तीन बातों पर ध्यान देने से उसकी शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति बढ़ेगी और वह पूर्णतया स्वस्थ हो जाएगा। इसलिए आज दुनिया में लोग स्वास्थ्य के प्रति बहुत ज्यादा जागरुक हो गए हैं। और प्रतिदिन पौष्टिक भोजन, आराम और व्यायाम पर ध्यान देने लगे हैं। इन बातों के महत्व को समझने के कारण इनके लिए समय निकालना आसान हो गया है। परन्तु फिर भी मानव अपने जीवन में कुछ अधूरापन महसूस करता है क्योंकि स्वास्थ्य के लिए सब कुछ करने पर भी तनाव और भय उसके जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रहा है। आज डॉक्टर्स भी कहने लगे हैं कि 70 प्रतिशत शारीरिक रोगों का कारण तनाव है। इसके कारण जीवन से खुशी ही गायब हो गई है। उसके परस्पर सम्बन्धों में गलतफहमियां बढ़ती जा रही हैं जिससे वह परिवार और समाज में होते हुए भी अपने को अकेला महसूस करता है। व्यवसायिक जीवन में स्पर्धा का युग होने के कारण वह हताशा और निराशा में डूबता जा रहा है। अनेक प्रकार के तनाव ने उसको भीतर से तोड़ दिया है। उसके जीवन से सुख-शांति, आनंद-प्रेम, शक्ति कोसों दूर चली गई हैं। तभी उसे लगने लगा है कि जीवन में अभी भी कोई कड़ी है जिसे जीवन में जोड़ दिया जाए तो जीवन जीने का आनंद और ही हो। वह खुटती कड़ी है आध्यात्मिकता। वास्तव में **व्यक्ति के जीवन के सभी पहलू उसकी आत्मिक शक्ति के साथ जुड़े हैं, इस आत्मिक शक्ति को विकसित करने का आधार आध्यात्मिकता का अनुशरण करना है।**

जिस तरह शारीरिक प्रतिरोधक

शक्ति कम होने से शरीरिक कमज़ोरी आ जाती है। उसी प्रकार जब व्यक्ति की मानसिक प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है तो जब जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन आता है या कोई परिस्थिति या समस्या सामने आने से व्यक्ति परेशान हो जाता या तनाव में आने से घबरा जाता है और चिड़चिड़ा हो जाता है। कई बार तो अनेक गलतफहमियों को पाल लेता है और फिर जीवन में हताशा, निराशा एवं उदासी का अनुभव करने लगता है। अब उसकी मानसिक प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने लिए कोई मल्टी विटामिन तो है नहीं। विवशतावश व्यक्ति यह स्वीकार कर लेता है कि यह तनाव भी जीवन का एक हिस्सा है। सोचने की बात है कि जब शारीरिक कमज़ोरी को स्वीकार करके व्यक्ति कभी बीमार नहीं रहना चाहता, वह तुरंत इलाज करा लेता है, तो फिर वह इस मानसिक कमज़ोरी को क्यों स्वीकार कर लेता है? उसके प्रति जागृति क्यों नहीं आती कि वह मानसिक रूप से भी सदा स्वस्थ रह सकता है। इसके लिए आत्मा को सशक्त करना बहुत आवश्यक है क्योंकि वर्तमान समय तनाव के कारण समस्याओं और विषम परिस्थितियों में लगातार वृद्धि होती जा रही है। आने वाले समय में इसमें और वृद्धि होगी। ऐसे समय पर अगर आत्मा सशक्त नहीं है और मन की प्रतिरोधक शक्ति भी कम है तो व्यक्ति उन परिस्थितियों का शिकार बन जाता है अर्थात् वह डिप्रैशन में चला जाता है।

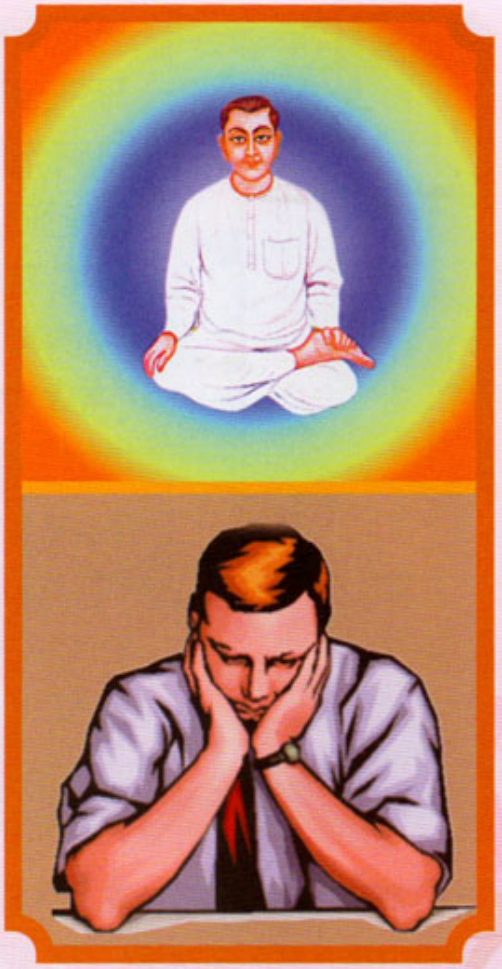

आत्मा को सशक्त एवं मन की प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने लिए निम्नलिखित तीन बातें आवश्यक हैं।

1. श्रेष्ठ एवं शुद्ध विचार हैं मन की खुराक

मन को श्रेष्ठ एवं शुद्ध विचारों की पौष्टिक खुराक देना आवश्यक है क्योंकि इससे ही व्यक्ति के मन को ताकत मिलती है। पौष्टिक खुराक वाले शुद्ध एवं श्रेष्ठ विचार सिर्फ आध्यात्मिक ज्ञान से ही प्राप्त होते हैं। यही आध्यात्मिकता वर्तमान समय की जीवन शैली की गुमशुदा कड़ी है। यह गुमशुदा कड़ी इसलिए बन गई है क्योंकि मनुष्य

आध्यात्मिकता के सूक्ष्म प्रभाव को जीवन में महसूस नहीं कर पाया और इसलिए उसने आध्यात्मिकता के लिए समय निकालने की आवश्यकता को नहीं समझा। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे उसकी आत्मिक शक्ति क्षीण होती गई और वह भीतर से कमज़ोर होता गया। आज मनुष्य का मन इतना कमज़ोर और नाजुक हो गया कि किसी की कहीं हुई छोटी सी बात को भी सहन नहीं कर पाता और वह आवेश में आकर कह देता है कि मेरे में एक ही कमज़ोरी है कि गुस्सा बहुत जल्दी आता है। यह कमज़ोरी शारीरिक नहीं अपितु मन की है। आध्यात्मिक ज्ञान मन का भोजन है, जो अंदर से व्यक्ति को शक्ति देता है, इसलिए ज्ञान को शक्ति कहा गया है। परन्तु उसके लिए व्यक्ति सोचता है कि समय बहुत कीमती है और ज्ञान श्रवण करने लिए उसके पास समय नहीं है। वास्तव में उसका समय कहां जाता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है:-

''एक अध्यापक क्लास में कांच की बड़ी बोतल लेकर आये और गोल्फ की बॉल साथ में लाए। फिर विद्यार्थियों को कहा कि वह उस बोतल में सारे गोल्फ बॉल भर दें। जैसे ही बच्चों ने भर दिया तो अध्यापक ने बच्चों से पुछा कि क्या इसमें कुछ ओर जायेगा तो बच्चों ने उत्तर दिया कि अब उसमें और कुछ नहीं जायेगा। अध्यापक जी ने कंचे निकाले और कहा कि अब यह डालकर देखो, तो जो बीच की जगह थी उसमें सारे कंचे चले गए। बच्चों ने कहा अब यह भर गया अब इसमें कुछ नहीं जायेगा। तो अध्यापक जी ने बालू निकाली और बच्चों को कहा कि यह डाल कर देखो कि उसमें समाता है। बच्चों ने बालू डाली और वह भी समा गई। उसके बाद बच्चों ने कहा अब इसमें कुछ भी नहीं जायेगा। अध्यापक जी ने पानी डालने लिए कहा तो वह भी उसमें समा गया।''

फिर उन्होंने बच्चों को समझाया कि देखो हमने भी अपने दिन के समय को बड़े-बड़े काम काज से भर दिया है और हम सोचते हैं हमारे पास समय नहीं है लेकिन बीच-बीच में छोटे काम आ जाते हैं तो वह भी समा जाते हैं। और कई बार उससे भी सूक्ष्म विचारों की

कारोबार के लिए भी समय निकल आता है। और अंत में दोस्तों के साथ चाय-पानी का भी समय निकल आता है। जैसे ही हम किसी बात की आवश्यकता और महत्व को समझते हैं वैसे ही उस बात के लिए समय अवश्य निकल आता है।

2. मन को आराम देने का अचूक साधन है राजयोग

इसी प्रकार मन को आराम देना भी जरूरी है। व्यक्ति रात को थक कर सो तो जाता है, लेकिन उसका मन सूक्ष्म स्तर पर कार्य करता रहता है चाहे स्वप्न के रूप में, चाहे विचारों के रूप में वह तो सारी रात कार्यरत रहता है। इसलिए व्यक्ति जब सुबह उठता है तब भी उसे ताज़गी का एहसास नहीं होता, लेकिन वह स्वयं थका हुआ महसूस करता है क्योंकि उसके मन को आराम नहीं मिला। काम करते समय भी मन थका होने कारण वह किसी कार्य पर एकाग्र नहीं हो सकता। न ही उसके मन में रचनात्मक विचार आते हैं। कई बार तो जैसे उसे कुछ सूझता ही नहीं है। समस्या और परिस्थिति आने पर भी उसे समय का बोध नहीं रहता इसलिए कई बार स्पर्धा के युग में वह सफल नहीं हो पाता। तब व्यक्ति अवसादग्रस्त एवं नाउम्मीद हो जाता है और उसका मनोबल टूटने लगता है। धीरे-धीरे उसके मन में नकारात्मक विचार पनपने लगते हैं और वह सोचता है कि वह किसी काम का नहीं, वह जीवन में कुछ नहीं कर सकता और इन्हीं विचारों के कारण उसे रात भर नींद नहीं आती। ये नकारात्मक विचार उसे डिप्रैशन का शिकार बना देते हैं और वह स्वयं को हारा हुआ महसूस करता है। कहा जाता है मन से हारे हार है और मन से जीते जीत है। जब उसकी ऐसी हालत हो जाती है, तब लोग उसे मनोचिक्तिसक के पास जाने की सलाह देते है। मनोचिक्तिसक शुरू में उसे दवाई नहीं देना चाहते और यही सलाह देते हैं कि अगर किसी प्रकार के मेडिटेशन द्वारा उसके मन को शांत किया जा सके तो अच्छा है। तब उसके परिवार के लोग उसे कहीं न कहीं मेडिटेशन सेन्टर पर ले जाने का प्रयत्न

करते हैं परन्तु ऐसी हालत में वह मेडिटेशन भी नहीं कर पाता। फिर उसे मन को शांत रखने वाली दवाईयों (tranquilizers) का सहारा लेना पड़ता है। जबकि राजयोग मन को आराम देने की ऐसी रामबाण औषधि है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने प्रयास द्वारा मन को शांत कर सकता है (Meditation is consciously relaxing the mind)। परन्तु जब व्यक्ति डिप्रैशन का शिकार होता है उस समय राजयोग का अभ्यास भी उसे मुश्किल लगता है। इसलिए इसका अभ्यास तो व्यक्ति को स्वस्थ रहने पर ही शुरु कर देना चाहिए। तब उसका मन सदा ताज़गी से भरा हुआ, रचनात्मक एवं प्रसन्नता से भरपूर अनुभव करेगा। दूसरे शब्दों में कहें तो उसको अपने मन को मित्र बना लेना होगा। हमारा यह कहने का अभिप्राय नहीं है कि डिप्रेशन वाला व्यक्ति कभी मेडिटेशन कर ही नहीं पायेगा परन्तु उसके लिए समय अधिक लगेगा। धैर्यता के साथ धीरे-धीरे अभ्यास करने पर वह उस स्थिति से बाहर आ सकता है। मेडिटेशन को पहले से ही जीवन शैली में शामिल कर लेने से सद्विवेक की शक्ति बहुत तेज़ हो जाती है।

3. मन का व्यायाम

जिस प्रकार शारीरिक तंदरुस्ती के लिए शारीरिक व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार मन को शक्तिशाली बनाने के लिए मन की एक्सरसाईज़ जरूरी है। मन के लिए एक्सरसाईज़ है सकारात्मक चिंतन। आज के युग में मानव का मन नकारात्मक दिशा में बहुत जल्दी और सहज मुड़ जाता है। सकारात्मक चिंतन करने लिए मेहनत लगती है। इसका कारण यह है कि मन को सकारात्मक चिंतन करने लिए शुद्ध और श्रेष्ठ विचारों की खुराक देना आवश्यक है। जबकि सारा दिन व्यक्ति का मन नकारात्मक बातों का ही सेवन करता रहता है, इसलिए मन को वैसा ही सोचने का अभ्यास हो जाता है। सकारात्मक चिंतन के लिए आध्यात्मिक ज्ञान की खुराक ही हमारे जीवन की गुमशुदा कड़ी है।

इस बात को रोगी और चिकित्सक के उदाहरण द्वारा समझते हैं:

''जिस प्रकार किसी व्यक्ति को जब दिल का दौरा पड़ता है तो डॉक्टर उसे कहता है कि देखो भाई, अब अगर तुम्हें जीना है तो हर रोज़ सुबह-शाम सैर करनी पड़ेगी। वह व्यक्ति सोचता है कि सुबह-सुबह तो सारा कारोबार शुरू होता है और शाम को भी देखेंगे, समय मिलेगा तो करेंगे। वह डॉक्टर से कहता है कि सुबह समय मिलना मुश्किल है और शाम को देखेंगे समय मिलेगा तो सैर करेंगे, तो डॉक्टर यही कहेगा कि फिर आप को कोई बचा नहीं सकता। अगर उस व्यक्ति को जीना है तो वह समय निकाल कर भी सैर करने अवश्य जाएगा। कारोबार कभी रुकता नहीं है। थोड़े दिन लोगों के फोन आते रहेंगे लेकिन जैसे ही लोगों को पता चलता है कि इस समय वह सैर करने गया होगा तो लोग उस हिसाब से ही पहले या बाद में फोन करेंगे। इस तरह कारोबार कभी रुकता नहीं है।''

इस तरह जैसे ही व्यक्ति को स्वास्थ्य की जागृति आती है, तो दिनचर्या में थोड़ा सा परिवर्तन कर लेता है और सब कुछ व्यवस्थित चलता है। इसी प्रकार जब व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य की जागृति आ जाती है तो दिनचर्या में थोड़ा सा परिवर्तन करना मुश्किल नहीं होता। जीवन में आध्यात्मिक ज्ञान की भूमिका को समझने से और उसको अपने जीवन में शामिल कर लेने से जब व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान का श्रवण करता है तो स्वतः ही उसका मन सकारात्मक दिशा की ओर आकर्षित होता है। आध्यात्मिक ज्ञान का श्रवण करने लिए व्यक्ति को न अपना कर्तव्य छोड़ना है और न अपनी ज़िम्मेवारियों को छोड़ना है। आत्मा को सकारात्मक चिंतन से सशक्त करने से जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है। बड़े से बड़ी परिस्थिति या समस्या आने पर भयभीत या घबराहट में आकर नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के बजाय, वह सशक्त और सन्तुलित मनःस्थिति से सकारात्मक दृष्टिकोण और चिंतन को अपनाकर, अपनी रचनात्मक सूझ-बूझ के साथ सब कुछ सहज ही पार कर सकता है।

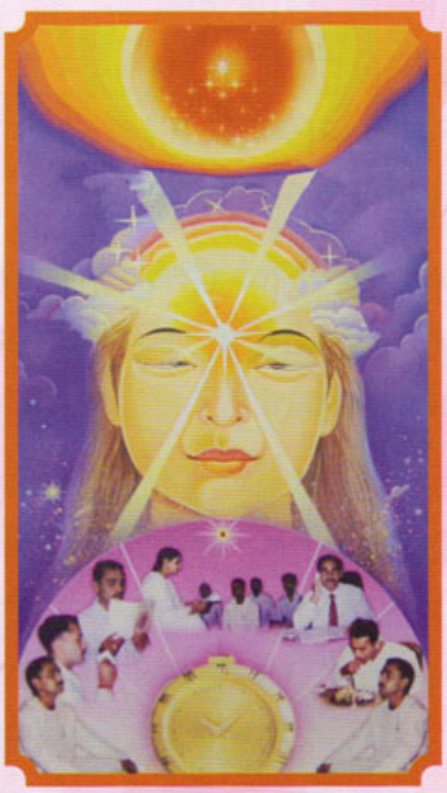

समय की पुकार

अब समय की यही पुकार है कि जैसे व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य को लेकर सचेत है वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य को लेकर इससे भी अधिक सचेत रहने की आवश्यकता है। पहले ज़माने में इतने साधन-सुविधायें नहीं होते थे, तो व्यक्ति की शारीरिक शक्ति का प्रयोग विशेष करना पड़ता था और इसलिए उसको शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने की ज्यादा आवश्यकता थी। परन्तु आज के आधुनिक युग में मनुष्य के पास इतने साधन-सुविधायें और भौतिक उपलब्धियां हैं कि अब जो भी परिस्थितियाँ, समस्यायें या चुनौतियाँ संसार में व्यक्ति के सामने आएँगी उनको सुलझाने के लिए उसे मन की शक्ति का प्रयोग अधिक करना पड़ता है। इसलिए उसे आत्मिक रूप से सशक्त रहने की आवश्यकता है। उसके लिए यह तीन बातें बहुत आवश्यक है – आध्यात्मिक ज्ञान की पौष्टिक खुराक द्वारा मन को शक्तिशाली बनाना, मडिटेशन या ध्यान के अभ्यास से मन के आराम से मन में ताज़गी का संचार करना और सकारात्मक चिंतन द्वारा मन के व्यायाम से मन में स्फुर्ति भरना।

कई बार मनुष्य सोचता है कि आज कल तो घरों में भी टी.वी. पर अनेक आध्यात्मिक प्रवचन आते हैं, फिर हमें कहीं प्रवचन सुनने खास सेन्टर पर जाने की क्या आवश्यकता है?

यह बात तो सही है की आजकल टी.वी. पर अनेक आध्यात्मिक प्रवचन चलते हैं। परन्तु जैसे एक छोटे बच्चे को हम घर में a-b-c-d सिखा सकते हैं फिर भी उसे स्कूल में भेजते हैं क्योंकि स्कूल में बच्चे को एकाग्रता से पढ़ने लिए वातावरण मिलता है, संग मिलता है, साधन मिलते है, वहां ध्यान देने वाले या व्यवस्थित पढ़ाने वाले शिक्षक होते हैं और समय प्रति समय उसकी सीखने की प्रक्रिया को तेज़ करने लिए परीक्षा होती है। इन सब बातों के कारण बच्चे की सीखने की या ग्रहण करने की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। इसलिए बच्चे को स्कूल भेजने की आवश्यकता होती है। घर में पढ़ाने बैठेंगे तो कभी कोई फोन आ जाता है या मेहमान आ जाते हैं या कारोबार से सम्बधित लोग आ जाते हैं। वह माहौल ही नहीं होता जिससे मन की एकाग्रता विकसित हो। इसी प्रकार घर में वैसा

माहौल नहीं बनता जो ज्ञान को ग्रहण करने के लिए वांछित है। इसलिए सैंटर पर जाने के लिए कहा जाता है। सैंटर को ही विद्यालय कहा जाता है। वहाँ आन वाले आध्यात्मिक पढ़ाई के लिए ही आते हैं। एक तो वहाँ माहौल बना होता है साथ ही संगठन मिलता है, वातावरण, साधन, स्थान सभी मन को एकाग्र करने में सहायक होते हैं और सब सहज उपलब्ध होते हैं। इससे आध्यात्मिक शिक्षा को ग्रहण करना आसान हो जाता है। दूसरी बात टी.वी पर जो व्यक्ति प्रवचन दे रहे होते हैं वह उसका अपना चिंतन होता है, उस चिंतन में त्रुटि हो सकती है, परन्तु उस चिंतन का स्त्रोत कौन और कहाँ है इसका पता नहीं होता जबकि सेन्टर पर हमें उस आध्यात्मिक चिंतन के स्त्रोत, परमपिता परमात्मा द्वारा ज्ञान रत्नों का खज़ाना प्राप्त होता है। ज्ञान सागर परमात्मा के अमृत वचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

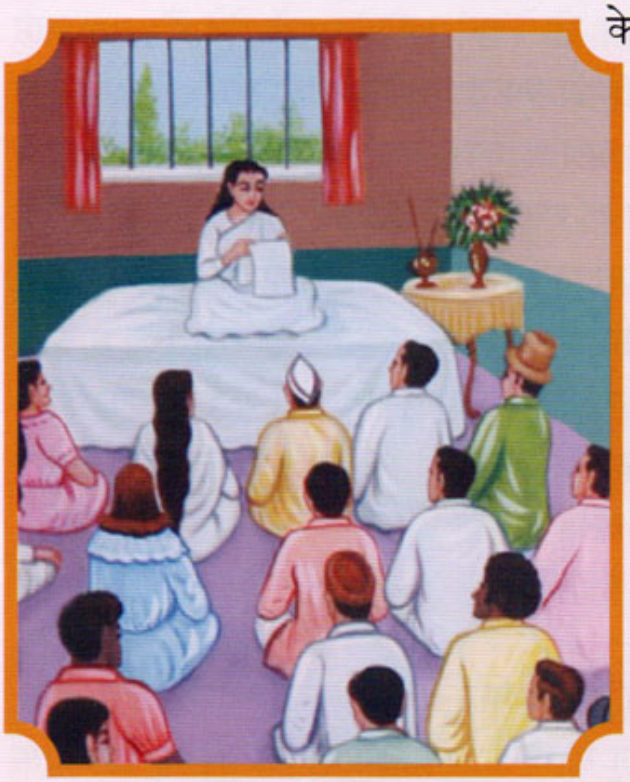

परमात्मा ज्ञान का आधार

इस संसार में जब घोर अधर्म का समय होता है, कलियुग अपनी चरम सीमा पर होता है, जब मनुष्य धर्म को समझते हुए उसमें प्रवृत नहीं हो सकते और अधर्म को जानते हुए उससे निवृत नहीं हो सकते, तब परमात्मा के श्रीमद्भगवद्गीता के वचन अनुसार कि वे अधर्म का नाश और सतधर्म की स्थापना करने इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। वे अति साधारण रूप में या बूढ़े ब्राह्मण के रुप में परकाया प्रवेश करते है, जिस कारण कोटों में कोई और कोई में भी कोई उसे जानकर, पहचानकर उसकी शरण में आ जाते है। माया ने जिनकी बुद्धि का अपहरण किया है ऐसे मूढ़मति मनुष्य परमात्मा को साधारण समझ कर दूर हो जाते हैं। परमपिता परमात्मा सतधर्म की स्थापना, विशुद्ध

आध्यात्मिक ज्ञान देकर ही करते हैं। प्रजापिता ब्रह्मा का साकार माध्यम लेकर वह मधुर महावाक्य उच्चरित करते हैं और अथाह ज्ञान रत्नों का खजाना हमें देते हैं। उन ज्ञान रत्नों को मुरली कहा जाता है। जैसे भक्ति में कहा जाता मधुबन में मुरली बाजे, वैसे ही आबू, अब्बा के धाम का नाम है – मधुबन अर्थात् जो अति मधुर है और वन यानि तपस्या करने का स्थान है। उस मधुर तपस्या के स्थान पर भगवान की मुरली बजती है मुरली माना मधुर स्वर। यह मधुर स्वर ही परमात्मा के महावाक्य हैं, जिसको मुरली कहा जाता है। इन्हीं मधुर महावाक्यों की खोज में आत्मायें कितने ही सतसंगों में गई, परन्तु हर जगह आत्माओं की ही वाणी सुनने को मिली। आबू पर्वत ही वह तपस्या स्थल है जहाँ पर परमात्म महावाक्यों के रूप में मुरली बजती है, जिसको सुनकर हर आत्मा रूपी गोपी मग्न हो जाती है।

ज्ञान मुरली का महत्व

यह परमात्म-महावाक्य प्रतिदिन परमात्मा का हम बच्चों के प्रति एक मधुर पत्र है। कहा जाता है कि जवाहार लाल नेहरु जी जब जेल में थे तो प्रतिदिन इंदिरा जी के नाम एक पत्र लिखते थे और उन पत्रों के माध्यम से उन्हें राजनीति के गुह्य रहस्य सिखाये थे, जिस कारण उन्हें बाद में लोगों ने 'The iron lady' का खिताब दिया था, उन्हें राजनीति के मामलों में कोई हरा नहीं सका। ऐसे ही यह ज्ञान मुरली भी हम आत्माओं के प्रति परमात्मा का एक प्यार भरा पत्र है, जिसमें भगवान भी हमें अनेक गुह्य रहस्य और श्रेष्ठ जीवन जीने की रीति बताते हैं, जो कभी कोई विकृति का शिकार न बने। यह ऐसा अनमोल खज़ाना है, जो आज मनुष्य के पास भल कितने भी खजाने हों लेकिन कितना भी धन खर्च करने पर भी यह खज़ाना प्राप्त नहीं कर सकता। यह परमात्म-महावाक्य सर्व अगम-निगम का भेद खोलने वाले और बिगड़ी तकदीर को बनाने वाला ज्ञान अंजन है, जो मनुष्यों के ज्ञान का तीसरा नेत्र खोल कर उन्हें तीनों कालों का दर्शन कराते हुए, त्रिनेत्री बना देता। साथ-साथ यह ऐसा दर्पण है जिसमें व्यक्ति अपने आदि,

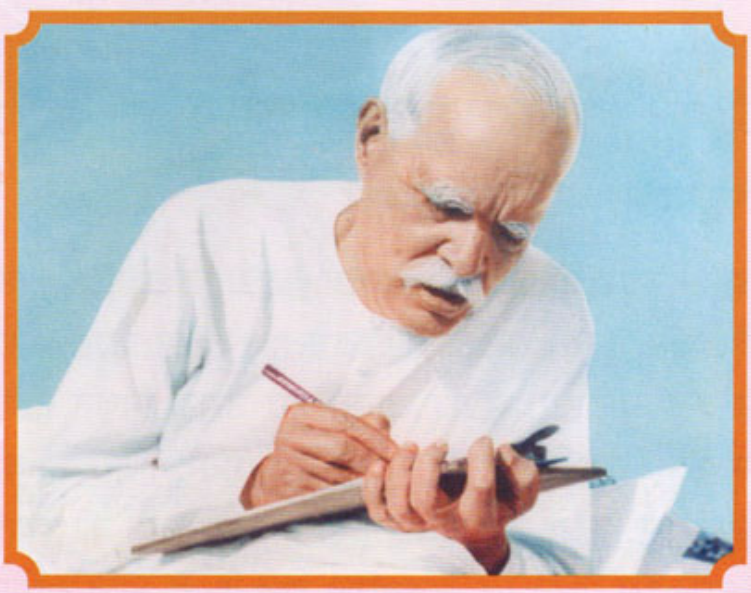

मध्य अंत को देख सकता है और त्रिकालदर्शी बनकर हर कर्म सोच-समझकर करता है। यह ज्ञान मुरली सर्व बिमारियों की दवाई - अमृतधारा है तथा सर्व शक्ति प्रदान करने वाली श्रेष्ठ टॉनिक है। यह एक ऐसी संजीवनी बूटी है, जो मनुष्यों को बुराई की बेहोशी से जागृत करती है और नया जीवन दान देती है। इस ज्ञान मुरली के एक-एक

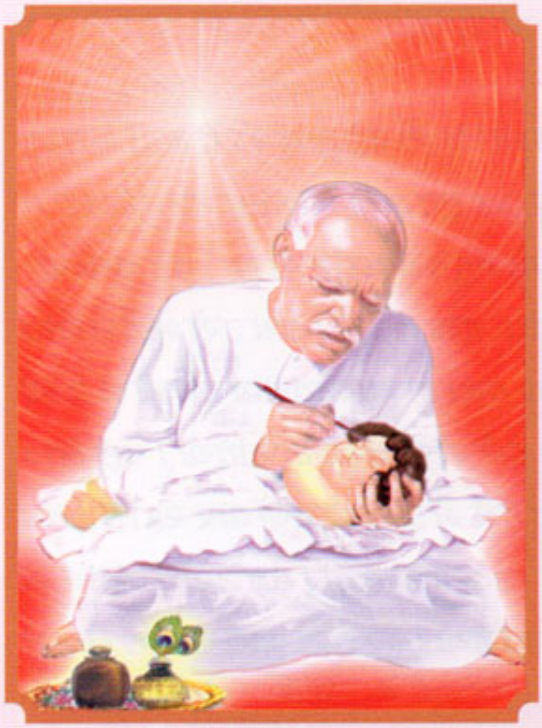

रत्न को जब व्यक्ति आत्मसात करके आचरण में लाता है तो उसका दिव्य श्रृंगार हो जाता है। परमात्म- महावक्य सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है क्योंकि उसमें सर्व शास्त्रों का निचोड़ समाया हुआ होता है। यह ऐसा शस्त्र है जो व्यक्ति के जीवन से अज्ञान एवं बुराईयों को समाप्त कर देता है, और आने वाले 21 जन्मों तक उसका नामों-निशान नहीं रहता। यह भी अनुभव है कि मनुष्यों के मन में जब भी कोई प्रश्न उत्पन्न होता है तो दूसरे दिन ही उसका उत्तर इन्हीं महावाक्यों में प्राप्त हो जाता है, या कभी कोई परिस्थिति के कारण मन में उल्झन होती है तो ऐसा मार्गदर्शन मिलता है कि बड़े से बड़ी बात भी सुलझ जाती है या यह महसूस होता है कि यह विचार पहले क्यों नहीं आया। कहने का भाव है कि जीवन सरल और सहज हो जाता है। यह महसूस होता है जैसे हमारे मन की हर बात परमात्मा पिता सुनता है और उसका जवाब देता है। दिल यही गाता है कि 'वाह मेरे बाबा, वाह', कितना प्यार आप हमसे करते हो कि छोटी-छोटी बातों में भी आप ही सहारा बन जाते हो। तो जहाँ इतना परमात्म प्यार और सर्व श्रेष्ठ सहारा मिलता हो तो उसके लिए थोड़ा सा समय खुद के लिए निकालना मुश्किल नहीं लगना चाहिए।

कई बार लोगों के मन में यह गलतफहमी होती है कि पता नहीं वहां जायेंगे तो अपना सब कुछ छुड़ा देंगे। वास्तव में मनुष्य कुछ भी छोड़ नहीं सकता, तो क्या छुड़ायेंगे। एक छोटा सा उदाहरण कि आज हर कोई जानता है कि क्रोध करना बुरा है उससे कितना नुकसान होता है। अपने शरीर पर, अपने सम्बन्धों पर, कार्य पर, उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। फिर भी व्यक्ति उसे छोड़ नहीं सकता। क्यों नहीं छोड़ सकता, क्योंकि उसका कोई स्त्रोत नहीं है। जैसे एक कमरे में अंधेरा हो और कोई आकर कहे इस अंधेरे को निकालो तो अंधेरे को नहीं निकाला जा सकता। क्योंकि उसका कोई स्त्रोत नहीं। प्रकाश का आभाव ही अंधेरा है। दीपक

जलाओ तो अंधेरा समाप्त। इसी तरह आज जो कमज़ोरियां मनुष्य जीवन में आ गई हैं उसका कारण है शक्ति का आभाव। जब ज्ञान की शक्ति को अपनायेंगे तो कमज़ोरी रूपी अंधकार जीवन से भाग जाएगा। इसलिए छोड़ना नहीं बल्कि ग्रहण करना है। इस बात को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है -

''एक बनिया था। वह बहुत ही कंजूस था कभी किसी को कुछ भी दे नहीं सकता था। एक बार वह पैदल नदी के पुल से गुजर रहा था तो पुल टूट गया और वह बनिया नदी में गिर गया। कोई सहारा पकड़ लिया परन्तु नदी का बहाव बहुत तीव्र वेग से था। वह बचाओ-बचाओ पुकार रहा था। एक भले आदमी ने देखा तो सोचा बचा लेते हैं। अब उस भले व्यक्ति ने किनारे पर खड़े होकर उस बनिये से कहा कि अपना हाथ दो। परन्तु उस बनिये ने कभी किसी को कुछ दिया ही नहीं था तो उसने अपना हाथ देने से इन्कार कर दिया। वह भला व्यक्ति आश्चर्यचकित हो गया कि डूब रहा है और हाथ देने से इन्कार क्यों कर रहा है। तब उसे याद आया कि यह तो कंजूस बनिया है देना तो वह जानता ही नहीं। तब उसने बनिये से कहा अच्छा मेरा हाथ लो तब उस बनिये ने हाथ पकड़ लिया और इस भले व्यक्ति ने उसे खींच लिया और बचा लिया।''

इसी प्रकार आज हर इन्सान संसार सागर में डूब रहा है। भगवान के मंदिर में जाकर पुकारता भी है कि हे प्रभू हमें इस संसार सागर से पार लगा दो। अब जब परमात्मा बच्चों की पुकार सुनकर आये हैं और कहते हैं कि बच्चे अपना हाथ दो तो मनुष्य सोचता है कि हम हाथ क्यों दें, क्योंकि देना तो मनुष्य जानता ही नहीं वह तो लेना ही समझता है। तब परमात्मा कहते अच्छा मेरा हाथ तो पकड़ लो यानि ज्ञान को जीवन में पकड़ लो। इतना तो कर सकते हो, तो देखिये भाईयो और बहनो यहां छोड़ना कुछ भी नहीं लेकिन ज्ञान को अपनाने से कमज़ोरियां कहां छूट जाती हैं पता भी नहीं पड़ता। ज्ञान की बातों को जीवन में अपनाने से, जीवन धन्य हो जाता है।

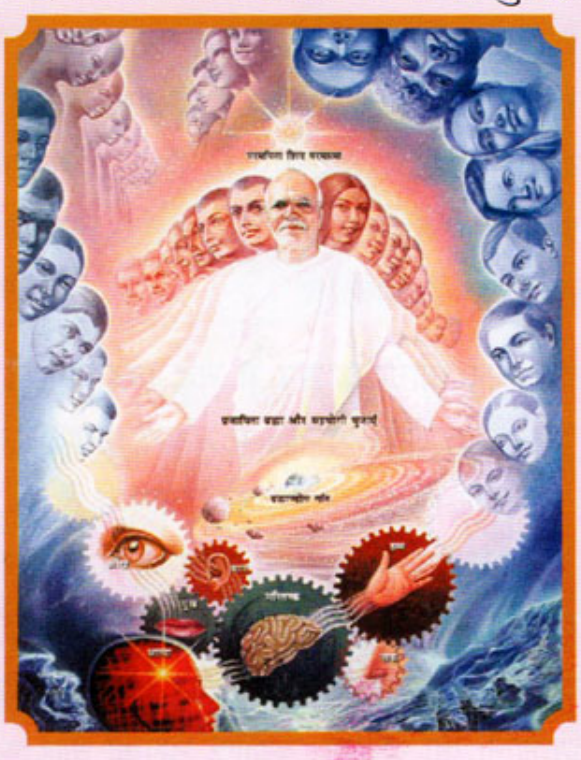

इस पुस्तक में आप ने उस ज्ञान सागर परमात्मा

की एक बूंद को पाया है। अभी तो पूरा सागर अनुभव करना बाकी है। इसलिए हम आशा करते हैं कि आप अपने अमूल्य समय में से कुछ वक्त आप अपनी उन्नति एवं प्रगति के लिए अवश्य निकालेंगे और विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान का रसपान करेंगे साथ ही मेडीटेशन के द्वारा आप अपने मन को शांति की अनुभूति के लिए प्रेरित करेंगे और सकारात्मक चिंतन से अपनी जीवन शैली को सकारात्मक दिशा अवश्य देंगे। ओम् शांति, शांति, शांति।

दादी प्रकाशमणि ट्रेनिंग सेंटर, शांतिवन

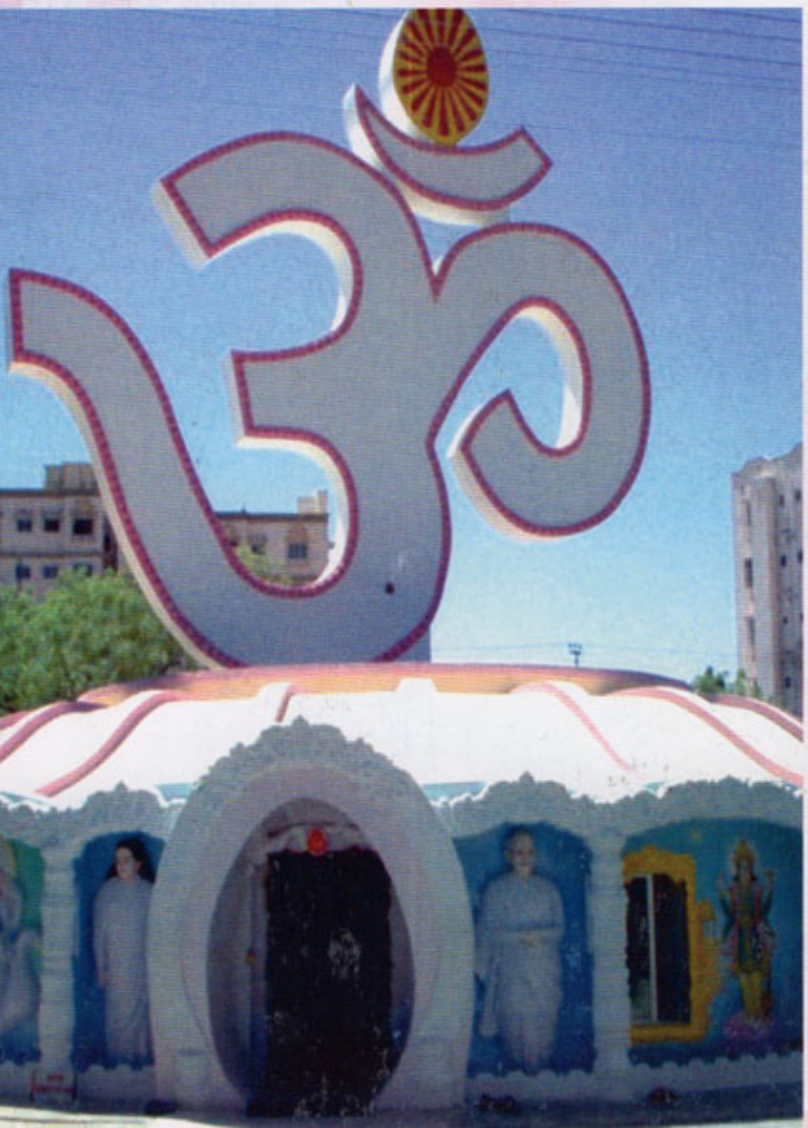

सोलर थर्मल पावर प्लांट, शांतिवन

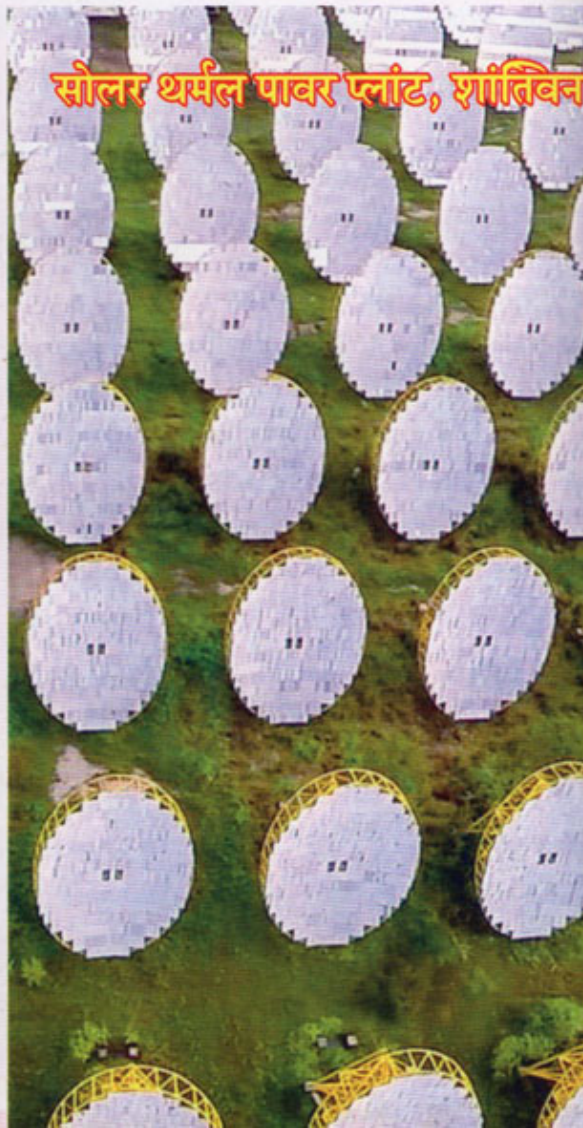

शिव भोलेनाथ भण्डारा, शान्तिवन

कॉन्फ्रेन्स हॉल, शान्तिवन

मनमोहिनीवन परिसर, शांतिवन

तपस्याधाम, शान्तिवन

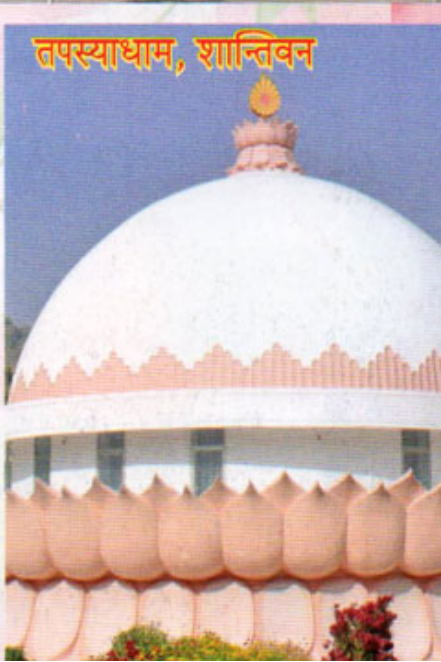

VISIONS OF A BETTER WORLD
The Million Minutes of Peace Appeal
7 BILLION ACTS OF GOODNESS
"Chain Reaction of Goodness and Happiness"
Pledge for Peace
His Story...
75
Platinum Jubilee Celebrations
BRAHMA KUMARIS
ONE GOD
ONE WORLD FAMILY
Billion Minutes
Good Wishes Bank
PEACE
IS IN OUR HANDS
Platinum
4th to 8th November, 2011
peace is in our hands

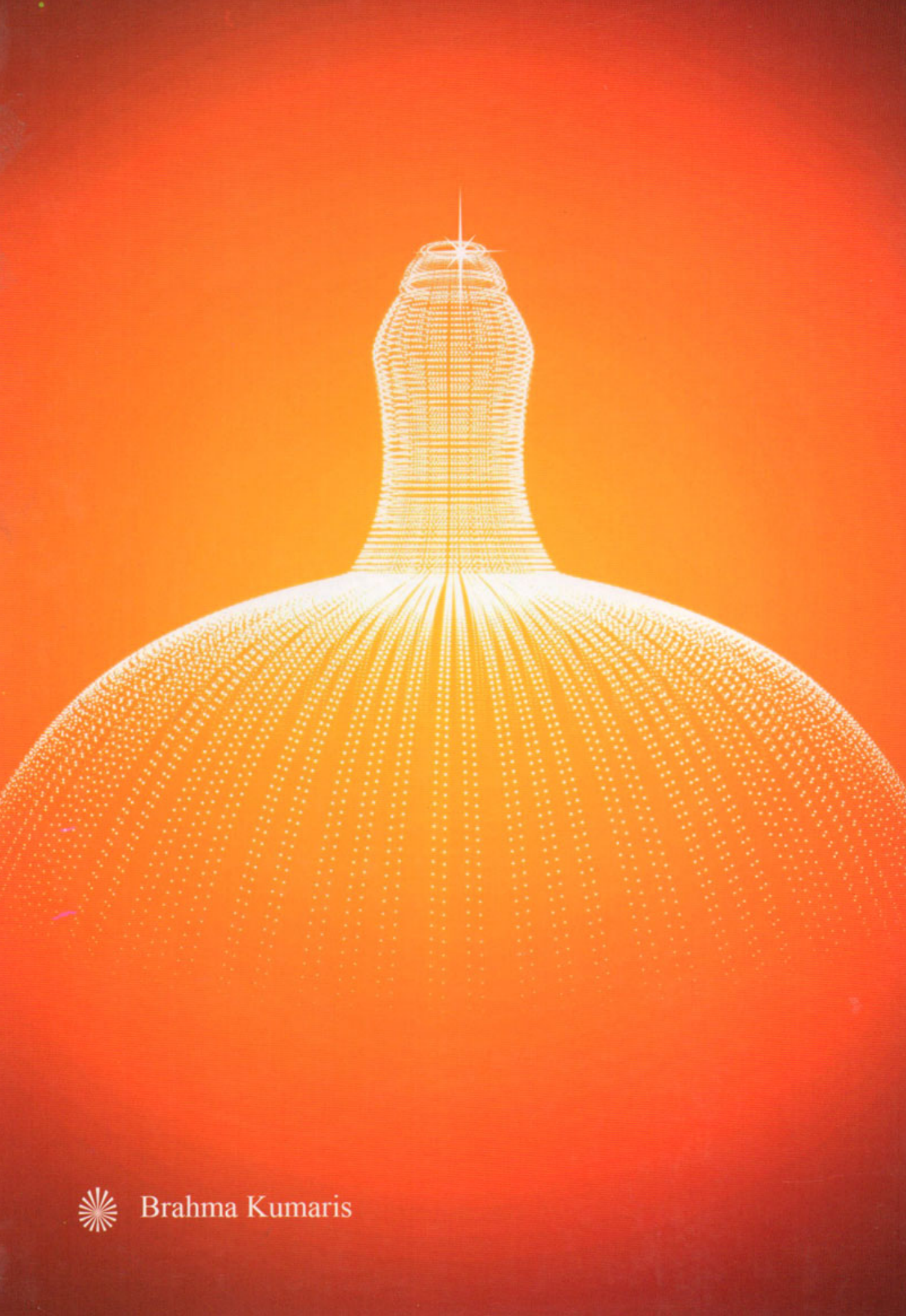
Brahma Kumaris